

हिज हाइनेस महाराजाधिराज महाराज महीमहेन्द्र महाराव राजा
कर्नल सर उम्मेदसिंहजी साहिब बहादुर जी० सी० एस० आई०,
जी० सी० आई० ई०, जी० बी० ई०, एलएल० डी०

# कोटा राज्य का इतिहास

## प्रथम भाग

लेखक

मथुरालाल शर्मा

एम० ए०, डी० लिट्०

प्रथमबार ५०० ]

[ मूल्य 10)

मुद्रक
दी कोटा प्रिंटिंग प्रेस, कोटा

# भूमिका

क्षत्रियों में चौहान वंश बहुत प्रसिद्ध है। पृथ्वीराज चौहान भारत का सम्राट् था। विशालदेव चौहान ने हिमाचल से विन्ध्याचल तक राज्य किया था। हमीरदेव चौहान ने अलाउद्दीन खिलजी से अप्रतिम वीरता के साथ युद्ध किया था। एक समय राजपूताने में सवा लाख ग्रामों पर चौहान वंश का शासन था। राज्यविस्तार, वीरता, नीतिपरायणता, कलाप्रेम और विद्याभिरुचि की दृष्टि से कितने ही चौहान नरेश भारतीय इतिहास के पृष्ठों के अलंकार हैं।

कोटे का राजवंश चौहानवंश की प्रसिद्ध शाखा है जो हाड़ा राजपूतों के नाम से विख्यात है और कोटा राज्य इस समय सब से बड़ा चौहान राज्य है। इस राजवंश के इतिहास का भारतीय इतिहास में क्या स्थान है, मुगलों के वैभव और विनाश काल में, मराठों की विजय बाढ़ में, तथा अँग्रेजों के शासन विस्तार में इस राजवंश ने क्या पराक्रम किये, किस नीति से काम लिया तथा क्या उन्नति की और देश की तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का इस पर क्या प्रभाव पड़ा– यह अगले पृष्ठों को पढ़ने से पाठकों को मालूम होगा।

भारतीय इतिहास की दृष्टि से इस पुस्तक का क्या महत्त्व है इसका निर्णय तो विद्वान पाठक ही करेंगे। मेरी तुच्छ सम्मति में हमारे इतिहास के कुछ अँधेरे कोने इससे अवश्य प्रकाशित होंगे।

घटनाओं का उल्लेख प्रामाणिक ग्रन्थ और सरकारी कागजों के आधार पर किया गया है और यथास्थान उनका हवाला दे दिया गया है। स्थितियों और व्यक्तियों पर जो सम्मति प्रकट की गई है वह भी अध्ययन के आधार पर की गई है परन्तु उनके लिये केवल मैं ही जिम्मेवर हूँ। इस पुस्तक को सरकार ने लिखवाया है और सरकारी दफ्तरों से सामग्रीसंग्रह में सहायता दीगई है परन्तु यत्र तत्र जो सम्मति प्रकट कीगई है वह लेखक की सम्मति है। सरकार की सम्मति सरकार की नीति पर निर्भर है।

लिखते समय नरेशों के नाम के आगे भी 'जी' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया था। पुस्तक के छपते छपते विशेष व्यक्तियों के नाम के आगे यह आदर सूचक शब्द लिखा गया है परन्तु भाषा के प्रवाह में कई नामों के आगे यह कहीं लिखने से और कहीं छपने से छूट गया है परन्तु क्रियायें बहुवचनान्त करदी गई हैं जो सम्मान सूचक हैं।

सरकारी दफ्तरों के देखने में वयोवृद्ध बाबू चुन्नीलाल शुक्ल से मुझे बड़ी सहायता मिली है। पं० बद्रीलाल साहित्यरत्न, लाला किशनलाल और लाला प्रभुलाल की सहायता के लिये भी मैं आभारी हूँ।

अनन्त चतुर्दशी
सम्वत् १९९६

मथुरालाल शर्मा

बहिन,
मनीषा, वागीसा
को
सस्नेह भेंट

ओम प्रकाश शर्मा
बारां
मो. 9462969661

# विषय सूची

## इतिहास के साधन

### छः विभाग

## राव जगतसिंहजी

## राव किशोरसिंहजी



## राव रामसिंहजी

## महाराव भीमसिंहजी



## भीमसिंहजी और मुगल दरबार

## महाराव दुर्जनशालजी



## मुगलों से सम्बन्ध विच्छेद

# कोटा राज्य का इतिहास

## इतिहास के साधन

**छः विभाग**—कोटा राज्य के इतिहास के साधनों को छः श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। ( १ ) पुराने दफ्तर—कोटा राज्य का पुराना दफ्तर, इन्दौर, ग्वालियर, ठिकाना सारोला, ठिकाना कोटड़ी और जयपुर राज्य के पुराने दफ्तर, ( २ ) पुरातत्त्व—शिलालेख, शाही फरमान, पट्टे परवाने, ताम्रपत्र, प्राचीन मन्दिर तथा दुर्ग, प्रतिमायें और सिक्के, ( ३ ) अप्रकाशित इतिहास आदि—बड़वे और भाटों की वंशावलियां, राज्य द्वारा लिखाये हुये अप्रकाशित इतिहास, स्वतन्त्र रूप से लिखे हुये कोटा राज्य के इतिहास, बूँदी राज्य का इतिहास और अन्य राजपूत राज्यों के इतिहास, ( ४ ) मुगल काल में लिखे हुये फ़ारसी के इतिहास, ( ५ ) पेशवाओं का दफ्तर और तत्कालीन अन्य मराठा राज्यों के इतिहास, ( ६ ) अंग्रेजी भाषा में लिखे हुये कोटा राज्य के आधुनिक इतिहास।

### ( १ ) पुराने दफ्तर

**( क ) कोटा राज्य का दफ्तर**—सब से अधिक विश्वसनीय सामग्री कोटा राज्य के दफ्तर हिसाब के पुराने कागजों में मिलती है। यहाँ कई भण्डार हिसाबी कागजों से भरे हुये हैं जो विषय और सम्वत् के अनुसार व्यवस्थित किये हुये हैं। इतिहास की दृष्टि से सर्वाधिक उपयोगी कागज सीगा मुतफर्रिकात के हैं। ये कागज सम्वत् १६९२ से सम्वत् १९३० तक के हैं, जो लगभग १२५ बस्तों में सम्वत् क्रम से बँधे हुये हैं। इन कागजों में माल, जकात, सेना, पुण्यर्थ, कमठान

यात्रा, विवाह, मृत्यु, आतिथ्य, पालतू, दण्ड, बख्शिश और प्रबन्ध आदि अनेक विषयों का उल्लेख है। ये उल्लेख केवल प्रासङ्गिक हैं, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं। दैनिक हिसाबी कागजों में समाविष्ट होने के कारण इनकी सत्यता निर्विवाद है। अन्य सीगों के कागजात विशेष महत्त्व के नहीं हैं। माल, जंगलात, रीत-करत्यावर आदि विषयक कागजात यदि अध्ययन किये जावें तो इतिहास पर कुछ अधिक प्रभाव पड़ सकता है, परन्तु इन से इतिहास का स्वरूप नहीं बदल सकता।

(ख) **मुन्शीखाना, कोटा**—इस दफ्तर में पुराने कागजों का संग्रह है, परन्तु व्यवस्थित नहीं है। मोड़ी मराठी लिपि के कुछ मराठा कालीन पत्र इतिहास के लिये उपयोगी हैं। इनमें प्रायः वार्षिक खंडणी के लेखे हैं। इस दफ्तर के संग्रह में लार्ड एलनबरा का अफगान युद्ध सम्बन्धी एक अत्यन्त रोचक पत्र है। राव रतन और राव माधोसिंहजी की जन्म कुंडलियों की नकलें बड़ी उपयोगी हैं।

(ग) **महक्मा खास, कोटा**—इस दफ्तर में सम्वत् १९३३ से १९५१ तक के कागज इतिहास के लिये अच्छी सामग्री है। इन में अधिकांश कागज उर्दू में हैं और सीगावार छटे हुये हैं। कौन्सिल कालीन इतिहास के लिये ये अत्यन्त उपयोगी है।

(घ) **इन्दौर राज्य का दफ्तर**—मिस्टर विभूते ने इन्दौर राज्य के पुराने कागजात का अध्ययन और व्यवस्था करके नौ पुस्तकें तैयार की हैं जो अभी अप्रकाशित हैं और होल्कर सरकार के 'फॉरेन डिपार्टमेन्ट' के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। होल्कर सरकार के प्रधान मन्त्री वजीर-उद्दोला सर सिरेमल बापना की कृपा से लेखक को इन दुष्प्राप्य ग्रन्थों से आवश्यक सामग्री के संग्रह करने का अवसर मिला है। इस संग्रह में जालिमसिंह की ओर से अहिल्याबाई होल्कर और जसवन्तराव होल्कर को लिखे

हुये कई पत्र सुरक्षित हैं। पिन्डारी युद्ध और सन् १८०३–४ तथा १८१८ के मराठा युद्धों में जो कोटा और बूँदी राज्य की ओर से अँग्रेज सरकार को मदद पहुँचाई गई थी उससे सम्बन्ध रखने वाले भी कितने ही कागजात हैं। समयाभाव-वश लेखक ने इनका पूरा उपयोग नहीं किया है परन्तु आवश्यक और महत्त्वपूर्ण सामग्री का संग्रह कर लिया गया है।

(ङ) **ठिकाना सारोला का पुराना दफ़्तर**—यह दफ्तर कोटा राज्य के इतिहास के लिये अत्यन्त उपयोगी है। इस ठिकाने के दफ्तर के समान व्यवस्थित और सुरक्षित दफ्तर कोटा राज्य में अन्यत्र नहीं है। इस ठिकाने के संस्थापक बालाजी यशवन्त सन् १७३८ के लग भग सेंधिया की आज्ञा से पेशवा के वकील बनकर कोटा नगर में रहने लगे थे। बालाजी यशवन्त के पश्चात् उनके पुत्र लालाजी बल्लाल वकील के पद पर नियत हुये। उस समय कोटा राज्य पाँच मरहठा सरदारों को कर देने लगगया था। इन सरदारों के साथ जो पत्र व्यवहार होता था वह सब वकील के द्वारा हुआ करता था। अतः ठिकाना सारोला के दफ्तर में वे सब पत्र सुरक्षित हैं जो इन सरदारों ने कोटा राज्य के विषय में अपने वकीलों को या झाला जालिमसिंह को या स्वयम् कोटा नरेशों को लिखे थे। इनमें से कुछ पत्र तिथि क्रम पूर्वक 'शिंदेशाही इतिहासाची साधनें' नाम से श्रीयुत आनन्द राव भाऊ फालके ने दो भागों में सम्पादित करके प्रकाशित कर दिये हैं। इन वकीलों के द्वारा ही कोटा राज्य की ओर से मरहठा सरदारों के नाम पत्र भेजे गये होंगे परन्तु खेद है कि उनकी प्रतिलिपियाँ दफ्तर में नहीं रक्खी गईं। कुछ पत्र इन्दौर राज्य के 'फॉरेन डिपार्टमेन्ट' के पुस्तकालय से मिल सके हैं।

**(च) ठिकाना कोटड़ी का दफ़्तर**—इस दफ्तर में कोटा राज्य का एक उपयोगी हस्तलिखित इतिहास और कितने ही उपयोगी पत्र मिले हैं। ग्वालियर और जयपुर राज्यों के दफ्तरों में भी अवश्य उपयोगी सामग्री होगी, परन्तु लेखक उससे लाभ नहीं उठा सका।

## (२) पुरातत्त्व

**(क) शिलालेख आदि**—शिलालेख इस राज्य के प्रायः प्रत्येक ग्राम में मिलते हैं। अधिकांश शिलालेख सतियों और वीरों के स्मारक हैं। इनमें से किसी २ पर शासक का नाम भी होता है। इस प्रकार के शिलालेख इतिहास के लिए विशेष महत्त्व के नहीं हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे शिलालेख भी सैकड़ों पाये जाते हैं जिनसे उस समय की राजनैतिक, समाजिक और धार्मिक स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता हो। सबसे प्राचीन शिलालेख अन्ते के पास बड़वा गाँव में मिले हैं जो विक्रम सम्वत् २९५ के मालूम होते हैं। इससे पीछे पाँचवीं, छठी, आठवीं, नवीं, ग्याहरवीं और बारहवीं शताब्दियों के कुछ महत्त्वपूर्ण शिलालेख और तदुपरान्त प्रत्येक शताब्दी के सैकड़ों शिलालेख ऐसे हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जासकती। दूसरी से चौदहवीं शताब्दी तक के लेखों का सम्बन्ध मौखरी, मोर्य, गुप्त, नाग, परमार, भेद आदि राजपूत वंशों से है। पन्द्रहवीं से सोल्हवीं शताब्दी तक के कुछ शिलालेख खींची और गौड़ राजपूतों के भी मिले हैं परन्तु ये विशेष उपयोगी नहीं हैं। सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ से अब तक के शिलालेखों का सम्बन्ध बूँदी और कोटा के नरेशों से तथा झाला जालिम सिंह से है और यह शिलालेख कोटा राज्य के इतिहास के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं।

**(ख) प्राचीन मन्दिर और इमारतें**—रामगढ़, कृष्णविलास, अटरू, बिचालस, भीमगढ़, दरा, चारचौमा, मऊ, बूड़ादीत, और कनवास में

कई पुराने मन्दिर और किले हैं जो पाँचवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक की सभ्यता, संस्कृति और कला के द्योतक हैं। चौदहवीं शताब्दी के पश्चात् जो इमारतें बनी हैं वे विशेष उल्लेख के योग्य नहीं हैं। जालिमसिंह के बनाये हुए किले अठारहवीं शताब्दी की कला के परिचायक हैं और तत्कालीन राजनैतिक अशान्ति को प्रकट करते हैं। रामगढ़, विलास, शाहाबाद, बाराँ, अटरू, चारचौमा आदि स्थानों पर कितनी ही प्रतिमायें मिली हैं जो मध्यकालीन हिन्दू इतिहास के लिये धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से बड़े महत्त्व की हैं। कुछ देव प्रतिमाओं पर उपयोगी लेख भी हैं।

(ग) **सिक्के**—अब तक इस राज्य में गुप्त कालीन और हूण कालीन तथा मध्य कालीन कितने ही सिक्के उपलब्ध हो चुके हैं। माँडू के सुल्तानों और दिल्ली के पठान बादशाहों के भी सिक्के मिलते हैं। सोने और चाँदी के अकबर के सिक्के कई लोगों के पास सुरक्षित हैं।

(घ) **ताम्रपत्र और पट्टे परवाने आदि**—कोटा राज्य में ताम्रपत्र बहुत मिलते हैं और पट्टे परवानों की संख्या इनसे भी अधिक है। इनसे तत्कालीन शासन शैली और राजनीति पर बहुत प्रकाश पड़ता है परन्तु कितने ही ताम्रपत्र जाली होते हैं। अतः इनका उपयोग करते समय सावधानी करनी पड़ती है। इस इतिहास के निर्माण में लगभग आठ सौ ताम्रपत्र और पट्टों का अध्ययन किया गया है। लाला भँवरलाल कारकुन और शहर काजी के पास कई शाही फरमान मिले हैं। लाला भँवरलाल के पास कोटे की चौधराई और कानूगोई का जाहाँगीरी फरमान है। शहर काजी के पास कज़ात तथा अन्य विषयों से सम्बन्ध रखने वाले कुछ शाही फरमान हैं। दफ्तर हिसाब के पुराने कागजात में एक फरमान बादशाह फ़र्रुखसियर का महाराव भीमसिंहजी के नाम है।

## (३) भाटों की पुस्तकें और हस्त लिखित अप्रकाशित इतिहास

**(क) ख्यातें**—साधारणतया बड़वों और भाटों की पुस्तकें इतिहास के लिये बहुत उपयोगी हो सकती हैं परन्तु इस राज्य में इन लोगों की जो पुस्तकें मिली हैं वे इतिहास के लिये विशेष उपयोगी नहीं हैं। इन पुस्तकों में या तो दन्तकथायें हैं या किसी नरेश के पराक्रम की स्तुतियाँ मात्र। इनमें जो सत्य घटनायें हैं उनका उल्लेख अन्यत्र भी मिलता है। इन्हीं पुस्तकों के आधार पर उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में किसी ने कोटे की भाषा और लिपि में इस राज्य का एक अत्यन्त संक्षिप्त और अपूर्ण इतिहास लिखा था जो गढ़ के पुराने दफ्तर में अभी विद्यमान् है। सम्भव है यह इतिहास राजद्वारा लिखायागया हो परन्तु यह इतिहास की केवल विडम्बना है। इसलिये इसका उपयोग नहीं किया गया है।

**(ख) ठाकुर लच्मणदान का इतिहास**—अतरालिया के ठाकुर लक्ष्मणदान ने महाराव शत्रुसालजी के शासन काल में एक इतिहास लिखा था जो प्रकाशित नहीं हुआ। उसकी एक हस्तलिखित प्रति लेखक को कोटड़ी के विद्वान् जागीरदार कविराजा दुर्गादानजी के दफ्तर से प्राप्त हुई है। ठाकुर लक्ष्मणदान ने इस ग्रन्थ के आरम्भ में लिखा है कि "श्रीजी हुजूर की आज्ञानुसार कई तवारीखों, प्राचीन ग्रन्थों व पुराने दफ्तरों से खूब तहकीकात करके तवारीख तूल होने के सबब से बहुत सूक्ष्म मुफस्सिल हाल वर्णन किया है"। यह पुस्तक विशेषकर बूँदी निवासी सूरजमल मिश्रण के वंशभास्कर के आधार पर लिखा गया है परन्तु कुछ अंश लेखक ने निज शोध से भी लिखे हैं। इस इतिहास से जो सामग्री मिली है उसको यथास्थान स्वीकार किया गया है।

**( ग ) रामकरण का इतिहास**—रामकरण नामक किसी पण्डित ने सम्भवतः उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में कोटा राज्य के गाँव और कस्बों का एक रोचक ऐतिहासिक वर्णन लिखा था। मूल किस भाषा में लिखा गया था इसका पता नहीं चला। इसका उर्दू अनुवाद लेखक को प्राप्त हुआ है और यह बहुत उपयोगी है। पण्डित रामकरण ने कोटा राज्य के दक्षिणी भाग और कुछ पूर्वीय भाग में दौरा किया था और प्रत्येक गाँव में शिलालेख आदि की तलाश की थी। जो शिलालेख उससे पढ़े गये उनका अनुवाद उसने अपनी पुस्तक में दिया है। इस पुस्तक में किंवदन्तियों और लोकश्रुतियों का भी समावेश कर दिया गया है जिससे इसका महत्त्व कम होगया है, परन्तु फिर भी इस में कोटा राज्य के इतिहास की उपयोगी सामग्री है।

**( घ ) टॉड राजस्थान**—कोटा राज्य का सर्व प्रथम प्रकाशित इतिहास कर्नल जेम्स टॉड कृत 'एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान' में है। कर्नल टॉड ने राजस्थान में बहुत भ्रमण किया था और अँग्रेज सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत से उसने सब नरेशों से और सैकड़ों जागीरदारों से मुलाकात की थी। झाला जालिमसिंह से वह खूब परिचित था और बूँदी के बालक राव राजा रामसिंहजी की विधवा माता का वह राखीबन्द भाई था। इतिहास लिखने के लिये उसको अनेक साधन प्राप्त थे, परन्तु समय की कमी के कारण वह कोटा राज्य के इतिहास के लिये कोई विशेष शोध नहीं कर सका। सन् १८१८ की सन्धि के पूर्व का इतिहास जो उसने लिखा है वह सब बड़वों की पुस्तकों के आधार पर लिखा गया है अतः वह अनेक भूलों से भरा हुआ है और उसके कई स्थल विश्वसनीय नहीं हैं। टॉड ने जालिमसिंह के शासन की नीति, विधि और गति का रोचक और विस्तृत वर्णन किया है। जालिमसिंह

और महाराव किशोरसिंहजी की लड़ाई कर्नल टॉड ने अपनी आँखों से देखी थी और कई बार समझौता करवाने का उसने प्रयत्न किया था। अतः सन् १८१८ के बाद का जितना इतिहास उसने लिखा है वह अधिकांश विश्वसनीय और प्रामाणिक है।

(ङ) **वंशभास्कर**—सम्वत् १८९७ में सूरजमल मिश्रण ने वंशभास्कर नामक बूँदी राज्य का काव्यमय विस्तृत इतिहास लिखा जिसमें प्रसंगवश कोटे के कई नरेशों का उल्लेख है। यह ग्रन्थ चार भागों में विभक्त है और इसमें कुल ४०४३ पृष्ठ हैं। ऐतिहासिक शोध की दृष्टि से इसके प्रथम दो भाग तो विशेष महत्त्व के नहीं हैं, परन्तु तृतीय और चतुर्थ भाग बूँदी, कोटा अथवा राजपूताने के इतिहास के लिये ही नहीं किन्तु भारतवर्ष के इतिहास के लिये भी उपयोगी सामग्री से भरे हुये हैं। कोटा राज्य के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले इस ग्रन्थ के अधिकांश स्थल विश्वसनीय और प्रामाणिक हैं।

(च) **स्टेटन का इतिहास**—सन् १९०२ में मेजर डब्ल्यू स्ट्रेटन ने 'ए शोर्ट हिस्ट्री ऑफ कोटा स्टेट' नामक ३८ पृष्ठ की छोटी सी पुस्तिका अधिकांश कर्नल टॉड के ग्रन्थ के आधार पर लिखी थी। इस पुस्तक में अन्त के केवल १० पृष्ठ मौलिक हैं जिसमें लेखक ने नवाब फैजअलीखां, कर्नल पौलेट और कर्नल बेली के प्रबन्ध का तथा वर्तमान नरेश के शासनकाल के प्रारम्भिक बारह वर्ष का अत्यन्त संक्षिप्त और स्थूल वर्णन किया है।

(छ) **मुन्शी मूलचन्द का इतिहास**—सम्वत् १९७५ (सन् १९१८) में कोटा राज्य के नाजिम मुंशी मूलचन्द का "तवारीख राज्य कोटा हिस्सा अव्वल" प्रकाशित हुआ जिसमें "महाराजा माधवसिंह बानी रियासत से महाराजा दुर्जनशाल तक आठ महाराजगान के अहद हुकूमत

के हालात यानी सम्वत् १६७४ विक्रम से १८१३ विक्रम तक के तारीखी वाक़ात दर्ज हैं"। मुन्शी मूलचन्द ने वाक़ए राजपूताना, तवारीख फरिश्ता, अकबरनामा, इक़बालनामा जहांगीरी, बादशाहनामा, आलमगीरनामा, सियर-उल-मुताख़रीन, वाक़ए नियामतखां आली और जंगनामा नियामतखां आली आदि ग्रन्थों के आधार पर अपनी पुस्तक की रचना की है। यह दुःख की बात है कि वह इस उपयोगी पुस्तक का दूसरा भाग प्रकाशित नहीं कर सका। दफ्तर हिसाब के कागजात और शिलालेखों से मीलान करने पर इस पुस्तक में कुछ भूलें मिलती हैं परन्तु लेखक के समय और साधन को देखते हुये यह इतिहास प्रशंसनीय है और ऐतिहासिक सामग्री की दृष्टि से बहुत उपयोगी है।

(ज) **चरित्र रत्नावली**—मुंशी मूलचन्द ने अपनी पुस्तक में चरित्र रत्नावली नामक ग्रन्थ का ज़िक्र किया है और लिखा है कि इसमें बून्दी के नरेशों की जीवनियां लिखी हुई हैं और कोटा राज्य के संस्थापक महाराव माधवसिंहजी के आरम्भिक जीवन और बुरहानपुर के घेरे में उनकी वीरता का वर्णन है। इस पुस्तक के आधार पर उसने माधवसिंहजी की जन्म तिथि दी है। यह जन्म तिथि तो जन्म पत्रिका के आधार पर निश्चित हो चुकी है, परन्तु यदि चरित्र रत्नावली नामक पुस्तक मिल सकती तो उपयोगी और ज्ञातव्य बातों का पता लगने की सम्भावना थी। खेद है कि बहुत प्रयत्न करने पर भी इस ग्रन्थ का पता नहीं चला।

(झ) **वंश प्रकाश**—यह ग्रन्थ पंडित गंगा सहाय ने वंशभास्कर के आधार पर लिखा है और इस में बूँदी का संक्षिप्त इतिहास है। इस में कोटा राज्य के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली कई घटनाओं का उल्लेख है, परन्तु इस ग्रन्थ में वंशभास्कर से अधिक सामग्री नहीं मिलती।

इसकी उपयोगिता केवल इतनी ही है कि यह गद्य ग्रन्थ है और वंशभास्कर की अलंकारिता से मुक्त है।

(ञ) **उदयपुर का इतिहास**—उदयपुर के इतिहास में कोटा राज्य के लिये बहुत सामग्री मिलती है। इन दोनों राज घरानों में कई पीढ़ियों से परस्पर पारिवारिक सम्बन्ध चला आया है, इस लिये उदयपुर के इतिहास में कोटे का उल्लेख होना ही चाहिए। उदयपुर राज्य के अनेक इतिहास हैं, परन्तु प्रामाणिक इतिहास अब तक केवल तीन हैं:—कर्नल जेम्स टॉड के राजस्थान की प्रथम जिल्द, कविराजा श्यामल दास-कृत वीर विनोद, और राय बहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत उदयपुर का इतिहास। लेखक ने वीरविनोद का पूरा उपयोग किया है। टॉड कृत राजस्थान, जिल्द प्रथम और रायबहादुर पंडित गौरीशंकर ओझा का उदयपुर का इतिहास ये दोनों ग्रन्थ बड़े उपयोगी हैं। कोटा राज्य के इतिहास के लिए-विशेषकर अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण के लिये ये ग्रन्थ बहुत उपयोगी हैं।

## (४) मुगल काल में लिखे हुये फ़ारसी के इतिहास

मुगल काल के ऐसे अनेक विश्वसनीय इतिहास हैं जो तत्कालीन विद्वानों ने सरकार की आज्ञा से अथवा आत्मप्रेरणा से लिखे थे। कोटा राज्य जहाँगीर के शासन काल में स्थापित हुआ था और फर्रुख-सियर के समय तक यह मुगलों के अधीन था। अतः इस समय के फ़ारसी के इतिहास बड़े उपयोगी हैं। कोटा राज्य के इतिहास के लिये इन तवारीखों में से निम्न लिखित विशेष उपयोगी हैं:—

**इकबालनामा जहांगीरी**—इसका लेखक मुअतमद खाँ है। मेजर डबल्यू. एन. लीज के निरीक्षण में मौलवी अब्दुल है और अहमद अली ने इस ग्रन्थ का सम्पादन किया है और एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता ने बिबलियोथिका इण्डिका नामक अपनी पुस्तकमाला में इसको प्रकाशित किया है। बुरहानपुर के घेरे में रावरतन की वीरता का इस पुस्तक में वर्णन है। राव माधवसिंह जी के जीवन चरित्र के लिये भी यह उपयोगी है।

**तुजुके जहाँगीरी**—यह जहाँगीर की आत्म कहानी है और सन् १८६३ में सैयद अहमद ने इसका सम्पादन किया था। राजर्स और बिवोरीज़ ने इसका अँग्रेजी में अनुवाद किया है। इस पुस्तक में सर बुलन्द राय अर्थात् रावरतन का कई जगह प्रशंसात्मक उल्लेख है।

**बादशाहनामा**—यह पुस्तक अब्दुल हमीद लाहौरी ने सम्राट शाहजहाँ के आदेश से लिखी थी। इसको बिबलियोथिका इण्डिका पुस्तक माला में एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, कलकत्ता ने प्रकाशित किया है। यह पुस्तक कोटा राज्य के संस्थापक राव माधवसिंहजी के जीवन चरित्र के लिये बहुत उपयोगी है। बुन्देलखण्ड के युद्ध में, कन्धार के घेरे में तथा बल्ख और बदख्शाँ के युद्ध में जो राव माधवसिंहजी ने अपूर्व वीरता का परिचय दिया था, उसका इस पुस्तक में वर्णन है। धर्मत के युद्ध में राव मुकन्दसिंहजी और उनके चारों भाइयों की रोमाञ्चकारी शूरता का भी इस लेखक ने उल्लेख किया है।

**अमले सालेह**—इसका लेखक मुहम्मद सालेह काम्बोह है और सम्पादक गुलाम मजकानी। एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, कलकत्ता द्वारा बिबलियोथिका इण्डिका पुस्तक माला में यह पुस्तक प्रकाशित हुई है। राज प्राप्ति के लिए शाहजहां के पुत्रों की परस्पर लड़ाई का

इसमें विस्तृत वर्णन है और राव मुकन्दसिंहजी तथा उनके भाई मोहनसिंहजी की वीरता का विशेष उल्लेख है ।

**आलमगीर नामा**—इसका रचयिता मिर्जा निज़ाम मुहम्मद काजमी है और एशियाटिक सोसायटी बंगाल, कलकत्ता द्वारा बिबलियोथिका इण्डिका पुस्तकमाला में यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है । औरंगजेब और शुजा में जो खजवा का युद्ध हुआ था, उसमें राव जगतसिंहजी की वीरता का, और हैदराबाद के घेरे में राव किशोरसिंहजी की वीरता का इसमें उल्लेख है ।

**नुस्खए-दिलकश**—यह इतिहास भीमसेन कायस्थ ने लिखा था जो दक्षिण के युद्ध में तथा जाजव में शाही सेना के साथ था । इस पुस्तक की एक हस्त लिखित प्रति खुदाबख्श लायब्रेरी पटना में है। हैदराबाद की लड़ाई में राव जगतसिंहजी की और जाजब की लड़ाई में राव रामसिंहजी की मृत्यु का इसमें वर्णन है ।

**मुन्तखब-उल-लुबाब**—यह इतिहास मुहम्मद हाशिम खाफीखाँ ने बड़े परिश्रम से लिखा था। एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, कलकत्ता द्वारा बिबलियोथिका इण्डिका पुस्तकमाला में यह प्रकाशित हुआ है। हैदराबाद के घेरे में राव जगतसिंहजी की वीरता, फर्रुखसियर के महलों में महाराव भीमसिंहजी का प्रवेश, बुधसिंहजी के साथ महाराव भीमसिंहजी की लड़ाई, बूँदी राज्य की प्राप्ति के लिये महाराव भीमसिंहजी के युद्ध और उनकी मृत्यु का इसमें वर्णन है ।

**मआसिरे- आलमगीरी**—मुहम्मद साफी मुस्तैदखाँ कृत और एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, कलकत्ता द्वारा बिबलियोथिका इण्डिका पुस्तकमाला में प्रकाशित इस पुस्तक में किशोरसिंहजी की उस वीरता का वर्णन है, जो उन्होंने गद्दी पर बैठने से पूर्व बीजापुर के घेरे में प्रदर्शित की थी।

**इबरतनामा**—कामराज कृत। जाजव के युद्ध में अपूर्व वीरता के साथ लड़ते हुये महाराव रामसिंहजी की मृत्यु का इसमें वर्णन है।

**तज़किरा या इबरतनामा**—मिर्जा मुहम्मद कृत। इसमें महाराव भीमसिंहजी और तत्कालीन मुग़ल दरबार के सरबुलन्दखाँ नामक एक शक्तिशाली मुग़ल सरदार की दो मुलाकातों का उल्लेख है।

**तज़किरात उस्सलातीन चुग़ताइया**—कामदारखाँ कृत। महाराव भीमसिंहजी और दिलावरखाँ द्वारा बूँदी विजय का इसमें वर्णन है।

**सिवानेह खिज़री**—मुहम्मद उमर कृत। इसमें लिखा है कि बादशाह के हुक्म से दिलावरखाँ ने कोटा और बूँदी में लूटमार की थी।

**इबरतनामा**—मुहम्मद कासिम लाहौरी कृत। महाराव भीमसिंहजी ने निजाम-उल-मुल्क के साथ जो युद्ध किया था, उसका इसमें उल्लेख है।

**अहवाल-उल-खवाक़ीन**—मुहम्मद कासिम औरंगाबादी कृत। इसमें भी उपरोक्त युद्ध का उल्लेख है।

**मिरआत उस्सफ़ा**—इसके लेखक का पता नहीं है। कोटा के महाराव दुर्जनशालजी और मल्हारराव होल्कर में भोपाल के पास जो युद्ध हुआ था, उसका इसमें वर्णन है।

**मआसिर-उल-उमरा**—इसका लेखक है नवाब शमशुद्दौला शाहनवाज खाँ। यह महाराव दुर्जनशालजी का समकालीन था। इस पुस्तक का सम्पादन मौलवी मिर्जा अशरफ़ अली ने किया और प्रकाशन एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल ने। इस ग्रन्थ में माधोसिंह जी से दुर्जनशालजी तक प्रसिद्ध कोटा नरेशों के संक्षिप्त जीवन वृत्त दिये हुये हैं। यह पुस्तक शाही इतिहासों के आधार पर लिखी हुई है।

## (८) पेशवाओं का दफ्तर, मराठा राज्यों के इतिहास

**(क) इन्दौर और ग्वालियर के इतिहास**—ये कोटा राज्य के इतिहास के लिये उपयोगी हैं। इन्दौर राज्य के कई इतिहास हैं; और मल्हारराव होल्कर, अहिल्या बाई होल्कर तथा जसवन्तराव होल्कर के कई जीवन चरित्र हैं, परन्तु सर्वाधिक उपयोगी हैं मिस्टर विभूते की हस्त लिखित नौ पुस्तकें।

**(ख) Selections from the Peshwa Daftar**- श्रीयुत जी. एस. सरदेसाई ने पेशवाओं के दफ्तर के कितने ही कागजात ४५ भागों में सम्पादित किये हैं जिनको बम्बई सरकार ने प्रकाशित करवाया है। इनमें से कई भाग कोटा और बून्दी राज्य के इतिहास के लिये बहुत उपयोगी हैं। विशेषकर भटवाड़े की लड़ाई, महाजन की लड़ाई और बून्दी के महाराव उम्मेदसिंहजी के राज्य प्राप्त्यर्थ प्रयत्नों पर इन कागजात से अच्छा प्रकाश पड़ता है।

**(ग) 'मराठा च्या इतिहासाचीं साधने'** नामक पुस्तकमाला भी उपयोगी है। इस माला में २१ पुस्तकें हैं जिनको श्रीयुत बी. के. राजवाड़े ने अन्य कई विद्वानों के सहयोग से सम्पादित किया है। इन पुस्तकों से राजपूत रियासतों के प्रति मरहठा सरदारों की नीति का अच्छा पता चलता है। इनमें कहीं २ कोटा और बूँदी का भी उल्लेख है।

## (९) अंग्रेजी भाषा में लिखे हुये आधुनिक इतिहास

अँग्रेजी भाषा की अनेक पुस्तकों से सामग्री एकत्रित की गई है। इन सबके नाम आधार ग्रन्थों की सूची में दिये हुए हैं। मुख्य पुस्तकें निम्न लिखित हैं :—

**ए हिस्ट्री ऑफ मराठाज**—जे. जी. डफ कृत । इस ग्रन्थ में उन युद्धों का वर्णन है जिनमें मुगलों की ओर से कोटा राज्य की सेनायें और एक बार स्वयम् कोटा नरेश लड़े थे । कोटा राज्य ने किस प्रकार मुगलों को छोड़ कर मराठों की अधीनता स्वीकार की इसका भी पता चलता है ।

**हिस्ट्री ऑफ इण्डिया**—सर एच. इलियट कृत जिल्द ५,६, ७,८ । इसमें फारसी तवारीखों के विशेष अंशों का अँग्रेजी अनुवाद है ।

**हिस्ट्री ऑफ औरंगज़ेब**—सर जादूनाथ सरकार कृत । इसमें राव माधवसिंहजी, राव मुकन्दसिंहजी, राव किशोरसिंहजी और राव रामसिंहजी से सम्बन्ध रखने वाली उन घटनाओं का संक्षिप्त उल्लेख है जिनका उपरोक्त फारसी तवारीखों में विस्तृत वर्णन दिया हुआ है ।

**जहाँगीर**—बेणीप्रसाद कृत । इस पुस्तक में इकबालनामा और तुजुके जहाँगीरी के आधार पर कोटा और बून्दी राज्य के विषय में कुछ पंक्तियाँ प्रसंगवश कहीं २ लिखी हुई हैं, परन्तु उनसे कोटा राज्य के इतिहास पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता ।

**लेटर मुग़ल्स**—विलियम इरविन कृत । यह ग्रन्थ सन् १७०७ से १७३९ तक का इतिहास है । इस पुस्तक में राव रामसिंहजी और महाराव भीमसिंहजी के विषय में जो संक्षिप्त उल्लेख हैं वे प्रमाणिक एवम विश्वसनीय हैं, परन्तु इसके लेखक को कोटा तथा बूँदी के विषय में बहुत कम ज्ञान था । यहाँ तक कि महाराव भीमसिंहजी को विलियम इरविन बूँदी का राजा समझता है । परन्तु इतने पर भी इस ग्रन्थ की उपयोगिता कम नहीं होती ।

**फ़ॉल ऑफ दी मुग़ल एम्पायर**—सर जादूनाथ सरकार कृत। इन दो जिल्दों में सन् १७३९ से १७७१ तक का इतिहास है।

यशस्वी लेखक ने राजपूताने में मराठों के प्रवेश का, कोटा और जयपुर के वैमनस्य का, तथा भटवाड़े की लड़ाई का सप्रमाण वर्णन किया है।

**ए हिस्ट्री ऑफ दी इण्डियन म्यूटिनी**—जी. डबल्यू फॉरेस्ट कृत। इस पुस्तक में अँग्रेजी दृष्टिकोण से सन् १८५७ के गदर का वर्णन है। अँग्रेजी सेना ने कोटा नगर को किस प्रकार विद्रोहियों से बचाया इसका फारेस्ट ने विस्तृत वर्णन किया है।

उपरोक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य कई ग्रन्थों में कोटा राज्य के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है, परन्तु वे प्रामाणिक और मौलिक नहीं हैं। इन सबके नाम आधार ग्रन्थों की सूची में दिये गये हैं।

---

# कोटा राज्य का भौगोलिक वर्णन

**स्थिति**—कोटा राज्य राजपूताना प्रान्त की दक्षिण-पूर्व दिशा में २४°,७′ और २५°,५१′ उत्तर तथा ७५°,३७′ और ७७°,२६′ पूर्व रेखाओं के मध्य में स्थित है। इस समय इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ५,६८४ वर्गमील है। इसके उत्तर में जयपुर राज्य और टोंक राज्य का अलीगढ़ परगना है। पश्चिम में बूँदी और उदयपुर के राज्य हैं। दक्षिण-पश्चिम में इन्दौर राज्य का रामपुरा भानपुरा परगना, झालावाड़ राज्य और ग्वालियर राज्य की आगर तहसील है। इसके दक्षिण में खिलचीपुर और राजगढ़ के राज्य हैं। पूर्व में ग्वालियर राज्य और टोंक राज्य का छबड़ा परगना है। उत्तर से दक्षिण तक इस राज्य की लम्बाई लगभग ११५ मील है और पूर्व से पश्चिम चौड़ाई लगभग ११० मील। इस देश का आकार चतुष्पथ के समान है। यह मालवा प्रान्त का एक भाग कहा जा सकता है, जो मालवे की उपत्यका से उत्तर की ओर शनैः शनैः ढलकाऊ होता जाता है।

**प्राकृतिक भाग**—प्राकृतिक रूप से कोटा राज्य तीन भागों में विभक्त है— पहाड़ी, जंगली और उपजाऊ। पहाड़ी भाग कोटा नगर के दक्षिण से आरम्भ होकर निजामत मनोहरथाने की पूर्वी सीमा तक पहुँच गया है। यह दक्षिणी भाग मालवे की उपत्यका का उत्तरी भाग है। इसमें उपजाऊ भूमि भी है, परन्तु पर्वत श्रेणियाँ और छोटी छोटी पहाड़ियाँ बहुत फैली हुई हैं। बोलचाल में इसको मालवी इलाका कहते हैं। यह भाग दरे की पर्वत श्रेणी के दक्षिण में है और इसका क्षेत्रफल सम्पूर्ण राज्य के लगभग चतुर्थांश के बराबर है। इस भाग में

इस समय छीपाबड़ौद, मनोहरथाना, अकलेरा, बकानी, चेचट और असनावर की निजामतें हैं और पर्वत, नाले और राड़ियों के सिलसिले फैले हुए हैं। यहां मक्का, तिल्ली, कपास और अफीम पैदा होती है, और लोग पशु अधिक पालते हैं। पहाड़ और नदी नालों के कारण तथा वर्षा अच्छी होने से यहां घास और पानी की कमी नहीं है। इसके अतिरिक्त यहां कुँए भी बहुत हैं, इन कारणों से इस भाग में दुर्भिक्ष कम होता है।

**जंगली भाग**—यह हिस्सा पार्वती नदी से पूर्व की ओर है। इसकी भूमि कृषि के योग्य कम है। अतः यहां के निवासी प्रायः पशु-पालन द्वारा अपना निर्वाह करते हैं। यही कारण है कि यहां की आबादी केवल ४८ मनुष्य प्रति वर्ग मील है। घास, लकड़ी, महुवा, गोंद, शहद, मोम, आदि जंगल की पैदावार द्वारा यहां के निवासी अपना जीवन निर्वाह करते हैं। जंगल में इतनी अच्छी लकड़ी नहीं मिलती जो अभ्युदय का साधन बन सके। कुछ हिस्से का जलवायु इतना दूषित है कि वहां पर कृषि के योग्य भूमि और पीने के लिये तथा खेती को सींचने के लिए पानी होते हुए भी वह आबाद नहीं होता। इसका पश्चिमी हिस्सा जो उपजाऊ भाग से मिला हुआ है, अच्छा आबाद है।

**उपजाऊ भाग**—यह हिस्सा चम्बल, पार्वती, और अँडेरी नदी तथा दरे की पर्वत श्रेणियों और कोटरियात के मध्य में स्थित है। इस समय इस में बाराँ, अन्ता, मांगरौल, इटावा, बड़ौद, दीगोद, लाड़पुरा, कनवास, सांगोद, खानपुर और कुन्जेड़ की निजामतें हैं। यह हिस्सा अधिकांश मैदान है और बहुत उपजाऊ है। इसकी आबादी १३१ मनुष्य प्रति वर्गमील है। यहां पर सब प्रकार की खेती होती है और इसका जलवायु भी उत्तम है।

**पर्वत**—इस राज्य का मुख्य पर्वत दरा या मुकन्दरा है। यह १,४०० से १,६०० फीट तक ऊँचा है और राज्य के दक्षिणी भाग में उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व को फैला हुआ है, और इसकी लम्बाई लगभग ९० मील है। इसकी प्राकृतिक रचना विचित्र है। यह दो समानान्तर पर्वत श्रेणियों के रूप में है जिनका मध्य भाग कहीं कहीं लगभग ३ मील चौड़ा है। इन दोनों श्रेणियों के बीच में सघन और सुन्दर बन है और कहीं कहीं कृषि योग्य भूमि है। पर्वत मालायें छोटे छोटे वृक्षों से और झाड़ियों से ढकी रहती हैं। उत्तर की ओर इन्द्रगढ़ में कुछ पहाड़ियां हैं जिनकी ऊँचाई १,५०० फीट से अधिक है, परन्तु सब से ऊँची पहाड़ी इस राज्य के पूर्व में शाहाबाद के इलाके में है जो मामूनी की पहाड़ी कहलाती है और १,८०० फीट ऊँची है। बारहपाटी नामक पहाड़ सांगोद, कुन्जेड़ और खानपुर की निजामतों के बीच में स्थित है। रामगढ़ का पर्वत किशनगंज निजामत में कूल नदी के तट पर है और इसकी रचना बड़ी सुन्दर है। हार की भाँति गोलाकार श्रेणी कितने ही वर्गमील सुन्दर जंगल को घेरे हुए है जिसमें प्रवेश करने के लिये केवल एक छोटा सा मार्ग है। छोटे २ पहाड़ों के सिलसिले राज्य के दक्षिणी भाग में छीपाबड़ौद, मनोहरथाना, बकानी, असनावर और अकलेरा की निजामतों में फैले हुये हैं।

**नदियाँ**—इस राज्य की मुख्य नदियाँ चम्बल, कालीसिन्ध, आऊ, नेवज, परवन, पार्वती, अँडेरी, और कूनो है। ये सब नदियाँ मालवे की उपत्यका से निकल कर कोटा राज्य के दक्षिणी भाग से निकलने वाली अनेक छोटी २ सहायक नदियों के जल का संग्रह करती हुई अन्त में सब चम्बल का रूप धारण करके कोटा राज्य को छोड़ देती हैं। चम्बल नदी भैंसरोड़ के निकट कोटा राज्य में पश्चिम से

प्रवेश करती है और पहिले बूँदी राज्य को पश्चिम की ओर, और फिर जयपुर राज्य को उत्तर की ओर कोटे से अलग करती हुई बहती है। कोटा नगर के नीचे यह खूब गहरी और चौड़ी है। मध्यकालीन और वर्त्तमान् भारतवर्ष के इतिहास में यह नदी कई बार विकट संघर्ष और घोर रक्तपात की रंगभूमि बनचुकी है। कालीसिन्ध कोटा राज्य में दक्षिण से प्रवेश करती है और लगभग ३५ मील तक कोटा राज्य को ग्वालियर, इन्दौर, झालावाड़ राज्य से अलग करती हुई बहती है। आहू नदी से मिल कर यह दरे पहाड़ को काटती हुई ठीक उत्तर दिशा में बहकर पीपल्दा गाँव के पास चम्बल से मिलती है। पार्वती चम्बल की सहायक नदी है। लगभग ४८ मील तक यह कोटा राज्य को ग्वालियर राज्य से और टोंक राज्य के छबड़ा परगने से अलग करती है, और फिर लगभग ४० मील तक कोटा राज्य में बहती है। अटरू के पास इसमें अँडेरी नदी मिलती है। वहाँ पर इस पर बाँध बाँधा गया है और उसमें से नहर निकाली गई है जिससे लगभग ४० गाँवों की भूमि को सींचा जाता है। परवन और उजाड़ दोनों नदियाँ कालीसिन्ध में मिलती हैं। कूनो शाहाबाद इलाके की एक छोटी सी नदी है।

**जलवायु**—कोटा राज्य का जलवायु उग्र है। गर्मी के दिनों में यहाँ भीषण गर्मी पड़ती है और ताप कभी कभी ११९ डिग्री तक पहुँच चुका है। शरत्काल में बहुत ठण्ड पड़ती है। कई भागों में मलेरिया का प्रकोप रहता है। जंगली भाग जलवायु की दृष्टि से इतना हेय है कि पानी और उपजाऊ भूमि होते हुए भी वहाँ बहुत कम लोग बसते हैं। यहाँ की औसत वर्षा ३३ इँच के लगभग है। सन् १९१६ में शाहाबाद में ७१ इँच वर्षा हुई थी।

**जनसंख्या**—कोटा राज्य में आर्य और सीथियन जातियों के वंशज निवास करते हैं। सदियों की रक्त-संकरता के कारण इस समय यह कहना कठिन है कि कौन आर्यों के शुद्ध वंशज हैं और कौन सीथियनों के। गूजर, मीणे, कराड़, आदि सीथियन लोगों के या गुर्जर और हूणों के वंशज प्रतीत होते हैं। क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्यों में आर्य रक्त शायद अधिक है। भील, चमार, बोले आदि जातियाँ द्रविड़ मालूम होती हैं। मुखमुद्रा और भाषा की दृष्टि से इस राज्य के निवासियों को आर्य, सीथियन, हूण, गुर्जर, और द्रविड़ जातियों में विभक्त किया जासकता है; परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक जाति में किसी दूसरी जाति के रक्त का संक्रमण नहीं हुआ।

जनसंख्या सामाजिक दृष्टि से अनेक जातियों में विभक्त है। जिनको स्थूल रूप से चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और कृषक या श्रमजीवी तथा मुसलमान। कृषक श्रेणी में मीणे, धाकड़, कराड़, माली, लोधा, भील, बोला और चमार आदि सम्मिलित हैं। इन लोगों की सभ्यता और संस्कृति अन्य लोगों से बहुत भिन्न है और इनके धार्मिक विचार तथा व्यवहार प्रायः अनार्य हैं। यह अवश्य है कि अब शिक्षा-प्रचार और अन्य आधुनिक सुविधाओं के कारण यह भेद शनैः शनैः मिटता जाता है। लोहार, नाई, दर्जी, मोची और खाती, आदि जातियों की सभ्यता उच्च जातियों से मिलती जुलती है।

सन् १९०१ में इस राज्य की जन-संख्या ५,४४,८७९ थी, सन् १९११ में ६,३९,०८९, सन् १९२१ में ६,३०,०६० और सन् १९३१ में ६,८५,८०४। १९२१ में हिन्दू ५,७८,९७९ थे और मुसलमान ४३,६२६। सन् १९३१ में हिन्दू ६,३४,६१० थे और

मुसल्मान ४७,०६८। अस्वास्थ्यकर जलवायु, वाणिज्य की कमी और जंगली तथा पहाड़ी इलाकों के कारण यहाँ की जनसंख्या में विशेष वृद्धि नहीं होती। कुछ अरसे से नौकरी, ठेकेदारी और व्यापार करने के लिये अन्य प्रान्तों के लोग इस राज्य में आ बसे हैं, परन्तु इनकी संख्या अत्यन्त अल्प है।

**भाषा**—कोटा राज्य की भाषा उच्चारण और व्याकरण की दृष्टि से गुजराती से मिल्ती जुलती है। यहाँ की भाषा में संस्कृत और प्राकृत शब्दों का बाहुल्य है। कुछ उर्दू के शब्द भी हैं जो मुसल्मानों के शासन काल में सम्मिलित हुए हैं। उच्चारण शैली में कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जिनका सम्बन्ध न संस्कृत भाषा से है और न फारसी से। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनका किसी आर्य या सेमेटिक भाषा से सम्बन्ध स्थिर नहीं किया जासकता। इससे अनुमान किया जासकता है कि कोटा राज्य की भाषा में शायद हूण, गुर्जर, या किसी अन्य विदेशी जाति की भाषा की सांकरता हो।

---

# कोटा राज्य का पुरातत्त्व

पुरातत्त्व की दृष्टि से कोटा राज्य एक महत्त्वपूर्ण प्रदेश है। यहाँ तृतीय शताब्दी से सतरहवीं शताब्दी तक के शिलालेख, मन्दिर, और नगरों के खँडहर विद्यमान् हैं, जिनसे तत्कालीन इतिहास के सांस्कृतिक पहलू पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इन खँडहरों का अभी पर्याप्त निरीक्षण और अध्ययन नहीं किया गया है। भारतीय सरकार के कुछ पुरातत्त्व वेत्ताओं ने दौरा करके कोई कोई सुगम स्थान देखे हैं, और उसी प्रकार लेखक ने केवल प्रसिद्ध स्थानों को देखा है। सौभाग्य से उसको कुछ ऐसे स्थानों का पता चल गया है जिनका महत्त्व और वैभव विस्मृति के गर्भ में तिरोहित था। जो कुछ स्थान देखे गये हैं उनका पूरा वर्णन स्थानाभाव और विस्तारभय से यहाँ नहीं किया जा सकता। इसके लिये एक पृथक् पुस्तक लिखी जा सकती है। अतः इस प्रकरण में मुख्य २ स्थानों का वर्णन करके पुरातत्त्व का दिग्दर्शन मात्र करवाया गया है।

**बल मौखरी के चार यूप**—अन्ता निजामत में बड़वा नामक गाँव से पूर्व की ओर लगभग ३ फर्लांग के अन्तर पर एक स्थल है जो थाम-तोरण के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्थान पर पत्थर के तीन यूप हैं, जिनमें से दो खड़े हैं और एक गिर गया है। इसी स्थान पर एक चतुर्थ यूप भी था जो किसी समय यहां से हटा दिया गया और जिसका निम्न भाग इस स्थान के और गांव के मध्य में पड़ा हुआ है। इस पर पीछे से किसी ने सती की प्रतिमा बनादी है। ये चारों यूप एक चतुष्कोण के चारों कोनों पर स्थित किये गये थे। प्रत्येक यूप १६

फीट लम्बा है। नीचे का भाग चतुष्कोण है और ६ फीट से ऊपर अष्टकोण। ऊपर का भाग पुनः चौकोर होकर मुड़ा हुआ है। प्राचीन काल में यूप इसी प्रकार के बनते थे[1]। प्रत्येक यूप पर कुशन कालीन ब्राह्मी लिपि में प्राकृत मिश्रित संस्कृत भाषा का लेख उत्कीर्ण है[2], जिससे पता चलता है कि ये चारों यूप विक्रम सम्वत् २९५ में मौखरी वंशोद्भव महासेनापति राजा बल के चार पुत्रों ने त्रिरात्र यज्ञ करके स्थापित किये थे। राजा बल के तीन पुत्र थे—बलसिंह, बलवर्द्धन और सोमदेव। चतुर्थ पुत्र के नाम का पता नहीं चल सका। प्रत्येक पुत्र ने यज्ञ समाप्ति पर एक सहस्र गायें ब्राह्मणों को दान दी थीं। राजा बल मालवे के शक क्षत्रप विजयदामन ( २३८–२५० ई० ) का सामन्त और माण्डलिक राजा होगा। विजयदामन का राज्य नन्दसा ( मेवाड़ ) तक फैला हुआ था, जो बड़वे से लगभग १४० मील दूर है। इस प्रकार के यज्ञ-यूप बिसापुर, विजयगढ़, और नगर में भी पहिले मिल चुके हैं। इनमें से कोई भी स्थान बड़वे से १४० मील से अधिक दूर नहीं है। इससे प्रकट होता है कि शक क्षत्रपों के काल में इस प्रदेश में वैदिक धर्म और संस्कृति की पुनर्जागृति हुई होगी। यह भी अधिक सम्भव है कि बड़वा उस समय बल की राजधानी हो, और शायद उसी ने बसाया हो। उस समय यह छोटा सा सम्पन्न नगर होगा, तथा मौखरी वंश ने वर्तमान हाड़ोती प्रान्त पर तीसरी शताब्दी में अर्से तक राज्य किया होगा।

**गुप्त कालीन मन्दिर**—चारचौमा का शिवमन्दिर कोटा राज्य में सब से प्राचीन देवालय है। समय समय पर इसका जीर्णोद्धार

(१) शतपथ ब्राह्मण ३–७–१.
(२) लेख के लिये देखो परिशिष्ट सं० १

होते रहने के कारण इसका इतना रूपान्तर होगया है कि इस समय बाहर से यह मध्यकालीन मन्दिर प्रतीत होता है। ध्यानपूर्वक अवलोकन करने से पता चलता है कि इसके चार स्तम्भ, दो चौखटें और दीवारों के निम्न भाग असली रूप में ज्यों के त्यों स्थित हैं। अन्दर के एक स्तम्भ पर और बाहर के दरवाजे के बाईं ओर दीवार के पत्थर पर संस्कृत भाषा में और गुप्त कालीन लिपि में लेख उत्कीर्ण हैं[1]। इस शिवमन्दिर का निर्माण किसी राजा ने करवाया था, परन्तु उसका नाम अभी पढ़ने में नहीं आया। मन्दिर के अन्दर चतुर्मुख शिवलिंग है, जो इसी प्रकार की गुप्त कालीन प्रतिमाओं से बहुत मिलता जुलता है। गुप्त कालीन दो मन्दिरों के खँडहर दरे की नाल में भी विद्यमान हैं। इन मन्दिरों के स्तम्भ बड़े अनोखे हैं और छतें बड़े बड़े शिलाखण्डों की बनी हुई हैं, जिनके अन्तर्भाग कलामय उत्कीर्ण फूल पत्तों से अलंकृत हैं। एक स्तम्भ पर उत्तर गुप्त कालीन लिपि में ध्रुव स्वामी का नाम खुदा हुआ है। यह ध्रुव स्वामी हूणों की लड़ाई में मारा गया था, और गुप्तों के समय में एक प्रसिद्ध योद्धा था। ये मन्दिर गुप्तकालीन वास्तु-कला के सुन्दर उदाहरण हैं, और भीम-चौरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। ऐसी जनश्रुति प्रचलित है कि भीम पाण्डव ने किसी देवी से विवाह करने के लिये मण्डप बनवाना आरम्भ किया था और वह चाहता था कि रात भर में ही वह पूरा होजावे, परन्तु मण्डप पूरा होने को ही था कि प्रातः काल हो आया। अतः भीम उसको अधूरा ही छोड़ कर चला गया। यह जनश्रुति निराधार और निरर्थक मालूम होती है। ये मन्दिर अधूरे बने हुए नहीं हैं, बल्कि कालान्तर में गिर गए हैं

(१) परिशिष्ट सं० २.

या सम्भवत: मुसल्मानों ने गिराये हैं। नष्ट और भग्न अंशों के अनेक खण्ड इस समय भी इधर उधर बिखरे हुए पड़े हैं।

**मध्यकालीन मन्दिर**—सारथल से लगभग दो मील के अन्तर पर परवण नदी के बायें तट पर एक लुप्तप्राय प्राचीन दुर्ग के खँडहर हैं, और तीन मन्दिर जीर्ण शीर्ण अवस्था में खड़े हुए हैं। इनके सामने नदी के दूसरे तट पर एक गणेश मन्दिर, एक विष्णु मन्दिर और एक शिव-लिंग है। दुर्ग और उसके पास के तीन जीर्ण देवालय आठवीं शताब्दी से बहुत पूर्व के प्रतीत होते हैं। दो मन्दिरों के एक एक स्तम्भ पर श्री भीमदेव का नाम उत्कीर्ण है। इन अक्षरों की रचना आठवीं शताब्दी के आस पास की हो सकती है। ये तीनों मन्दिर और दुर्ग श्रीभीमदेव के ही बनाये हुए मालूम होते हैं। इसीलिये इस नगर का नाम भीमगढ़ है। इन मन्दिरों के गर्भगृह और मण्डप अन्य हिन्दू मन्दिरों से निराले हैं। गर्भगृह सम चतुर्भुजाकार है और उससे लगा हुआ उपासनागार तथा मण्डप दोनों आयताकार; जिनकी लम्बाई गर्भगृह के दाहिनी और बाईं ओर है। बायें किनारे पर गणेश मन्दिर में खड़े हुए गणपति की प्रतिमा है, जो दशवीं शताब्दी से पूर्व की होनी चाहिये। विष्णु मन्दिर सुन्दर और ललित कला का मनोहर नमूना है।

**विशाल शिवलिंग**—एक नष्ट मन्दिर के खँडहरों के मध्य में यह शिवलिंग चतुष्कोण विशाल योनिपट्ट में स्थित है। यह योनिपट्ट तीन विशाल पत्थरों का बना हुआ है, जो एक दूसरे के ऊपर स्थित हैं और तीनों की ऊँचाई लगभग छः फीट है। तीनों पत्थरों के आस पास चारों पार्श्वों पर सुन्दर बेल बूँटे खुदे हुए हैं। योनिपट्ट का निम्न भाग गर्भगृह की सतह से लगभग छः फीट नीचा है, और उसके चतुर्दिक् परिक्रमा के लिये स्थान है। बृहत् शिवलिंग पर छोटे छोटे सैंकड़ों लिंग

खुदे हुए हैं। वास्तव में यह सहस्र लिंग शिवपिण्ड है। शिव मन्दिर बिल्कुल नष्ट होचुका है, और उसके पत्थरों के ढेर चारों ओर पड़े हुए हैं। कालदेव ने इतनी दया की है कि शिवलिंग को नहीं ढका। भीमगढ़ में इधर उधर विष्णु, शिव, लक्ष्मी, आदि की कई प्रतिमायें पड़ी हुई हैं, जो दशवीं शताब्दी से पूर्व की होनी चाहियें।

**कोषवर्धन में नागवंशी राजा का शिलालेख**—शेरगढ़ सातवीं शताब्दी से भी पुराना नगर है। इसका आदि नाम कोषवर्धन था। बरखेड़ी दरवाजे के बाईं ओर सीढ़ियों के नीचे एक ताक में देवदत्त नामक बौद्ध मतानुयायी नागवंशी राजा का विक्रम सम्वत् ८७० माघ सुदी ६ का शिलालेख लगा हुआ है। यह शुद्ध संस्कृत भाषा और सुन्दर लिपि में लिखा हुआ है, और इसमें एक बौद्ध विहार के निर्माण का उल्लेख है [१]।

**पँवार राजा का शिलालेख**—शेरगढ़ में लक्ष्मीनारायण के मन्दिर पर विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के दो शिलालेख हैं। इनमें से एक में धार के परमार राजाओं की वाक्पतिदेव से महाराज उदयादित्य देव तक वंशावली दी हुई है [२]।

**शेरगढ़ का किला**—शेरगढ़ का किला मुसलमानों के समय का है। सम्भवतः शेरशाह का बनवाया हुआ हो, क्योंकि उसने ही कोषवर्धन को जीत कर उसका नाम शेरगढ़ रक्खा था। इस समय किले की तीन दीवारें प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं। सबसे बाहर की दीवार और नगर प्राचीर दोनों साथ ही साथ झाला जालिमसिंह ने बनवाई थीं [३]। दुर्ग

(१) परिशिष्ट संख्या ३.
(२) परिशिष्ट संख्या ४.
(३) परिशिष्ट संख्या ५.

की मध्य दीवार शेरशाह की बनवाई हुई मालूम होती है। इसमें एक पत्थर लगा हुआ है जिस पर ग्यारहवीं शताब्दी की लिपि में वाक्यांश है। इससे स्पष्ट ही है कि यह पत्थर अन्य स्थान से उखाड़ कर लगाया गया है, और यह दीवार ग्यारहवीं शताब्दी के बाद की बनी हुई है। इसके भी अन्दर की दीवार जिसके कुछ भग्नावशेष अभी विद्यमान हैं, मिट्टी की बनी हुई थी जिसमें पीछे से कुछ पत्थर लगाये गये थे। यह सम्भवतः परमार काल की हो।

**तीन जैन प्रतिमायें**—शेरगढ़ में ग्यारहवीं शताब्दी की तीन खण्डित जैन प्रतिमायें भी हैं, जो एक राजपूत सरदार की बनवाई हुई हैं। इन पर उत्कीर्ण लेख से प्रकट होता है कि ग्यारहवीं शताब्दी तक यह नगर कोषवर्धन कहलाता था।

**जयसिंह परमार का शिलालेख**—अटरू में विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ का एक शिलालेख है जिसमें परमार वंशोद्भव महाराजा जयसिंह द्वारा एक कवि-चक्रवर्ती पण्डित को भेंसड़ा नामक गाँव के दान का उल्लेख है। जिस मन्दिर के स्तम्भ पर यह लेख उत्कीर्ण है, उसके अब केवल चार स्तम्भ खड़े हैं और शेष भाग गिरगया है। इन गिरे हुए पत्थरों से और यहाँ से हटा कर गणेशगञ्ज में एकत्र की हुई प्रतिमाओं से अनुमान हो सकता है कि यह मन्दिर दशवीं शताब्दी के आसपास का बना हुआ है।

**गणेशगञ्ज की प्रतिमायें**—गणेशगञ्ज में अटरू के नष्ट मन्दिरों की प्रतिमाओं का संग्रह है, जिनमें अधिकांश हिन्दू प्रतिमायें हैं और कुछ जैन मूर्तियाँ। हिन्दू प्रतिमायें शिव, विष्णु, सरस्वती, ब्रह्म आदि देव और देवियों की हैं। इनमें अधिकतर ऐसी प्रतिमायें हैं जो मन्दिर की दीवार, स्तम्भ आदि भागों की शोभा के लिए बनाई गई

थीं, पूजा के लिये नहीं। एक छोटी सी मूर्त्ति लगभग डेढ़ फुट ऊँची और लगभग ढाई फुट लम्बी वाराह भगवान् की है जिस पर ऋषियों की अनेक छोटी छोटी प्रतिमायें उत्कीर्ण हैं। जैन प्रतिमायें महावीर, शान्तिनाथ और नेमीनाथ तीर्थंकरों की हैं। हिन्दू प्रतिमाओं में कितनी ही यक्ष और यक्षिणियों की भी हैं। ये सब प्रतिमायें कला की दृष्टि से बहुत सुन्दर हैं, और दशवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दी में बनी हुई जान पड़ती हैं।

**एक भूगर्भित स्थान**—अटरू के दो और मन्दिर भी इसी समय के बने मालूम होते हैं, और गडगच के मन्दिर कहलाते हैं। एक स्थान ऐसा है जो अन्दर से पोला मालूम होता है। इस समय उस पर एक रास्ता है, और प्रत्यक्ष में केवल मैदान मालूम होता है; परन्तु उस पर कुछ चोट मारने से जो स्पष्ट ध्वनि होती है उससे प्रकट होता है कि नीचे कोई मकान है। इस समय अटरू में दशवीं शताब्दी से अधिक पुराने कोई चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं होते; परन्तु अनुमान होता है कि अधिक ऐतिहासिक शोध से तथा खँडहरों की खुदाई से यह गाँव बहुत पुराना सिद्ध होगा।

**कृष्ण विलास**—पारवती नदी की सहायक नदी विलासी के बायें तट पर एक राजधानी के खँडहर हैं। इनको कृष्ण विलास कहते हैं। यहाँ पर एक दुर्ग, कई जैन और हिन्दू मन्दिर तथा एक छोटे से नगर के भग्नावशेष हैं। दुर्ग की दीवारों के केवल निम्न भाग शेष रह गये हैं। इसके मुख्य दरवाजे के सामने एक हिन्दू मन्दिर के पत्थर पड़े हुये हैं। इसी के पास एक विशाल वाराह भगवान् की प्रतिमा है। सम्भव है यह नष्ट मन्दिर वाराह का हो।

**विशाल वाराह प्रतिमा**—यह प्रतिमा अटरू वाली प्रतिमा से मिलती जुलती है परन्तु इसका आकार बहुत बड़ा है। इस प्रकार की विशाल और सुन्दर वाराह प्रतिमा भारतवर्ष में अन्यत्र शायद कहीं नहीं है। एक नष्टप्राय हिन्दू मन्दिर किले के अन्दर विद्यमान है। अब इस मन्दिर का केवल रत्नगृह शेष रह गया है, जिसकी छत एक ही शिला-खण्ड की बनी हुई है और उसके अन्दर के हिस्से में सुन्दर बेल बूँटे खुदे हुए हैं। इसको छीपों की चाँदनी कहते हैं। यह पता नहीं चला कि इसका यह नामकरण कैसे हुआ।

**हिन्दू और जैन मन्दिर**—शहर के खँडहरों में एक जैन मन्दिर और एक हिन्दू मन्दिर उल्लेखनीय हैं। हिन्दू मन्दिर इतना नष्ट होगया है कि इसके असली स्वरूप का केवल गिरे हुए पत्थरों से, दीवारों के कुछ अवशिष्ट अंशों से और रत्नगृह के स्तम्भों से ही अनुमान किया जा सकता है। यह भी पता नहीं लगता कि यह शैव मन्दिर था या वैष्णव। इसके गिरे हुए आलंकारिक विशाल पत्थर इसकी निर्माण कला को द्योतित करते हैं। जैन मन्दिर अपेक्षाकृत अच्छी दशा में है। इस मन्दिर की विशेषता यह है कि इसमें अनेक तीर्थंकरों की प्रतिमाओं के लिये गर्भगृह बने हुए हैं। दरवाजे में घुसने के बाद एक चौकोर आँगन है जिसके चारों ओर इन गर्भगृहों की पंक्तियां हैं। प्रत्येक गर्भगृह लगभग आठ फीट लम्बा और आठ फीट चौड़ा है। इनमें छतें सब की नष्ट होचुकी हैं परन्तु अधिकांश की दीवारें अभी खड़ी हैं। इस समय पाँच गर्भगृह स्पष्ट दिखाई देते हैं परन्तु मन्दिर का आकार देखते हुए स्पष्ट अनुमान होता है कि पहिले बाहर रत्नगृह होंगे, और प्रत्येक में एक तीर्थंकर की प्रतिमा होगी। तत्कालीन हिन्दू मन्दिरों की भाँति इस जैन मन्दिर में अलंकार और शोभा के लिये अश्लील मूर्तियाँ कहीं भी

खुदी हुई नहीं हैं। बाजार के मार्ग में एक विशाल जैन प्रतिमा है जो लोकनाथ तीर्थंकर की मालूम होती है। वर्तमान विलास गांव से थोड़ी ही दूर एक हिन्दू मन्दिर के खँडहर हैं। पत्थरों के ऊँचे ढेर में मण्डप के चार स्तम्भ खड़े हैं जिन पर पत्थरों की चौखटें भी स्थित हैं। इन स्तम्भों की ऊँचाई, खुदाई, कला और स्थिति तथा चारों ओर पड़े हुये पत्थरों के आकार, परिमाण और अलंकरण से इस मन्दिर की विलीन कला और सौन्दर्य का अनुमान किया जा सकता है।

**दशवीं शताब्दी की सुन्दर प्रतिमायें**—विलास गाँव में एक खुले हुए अहाते के अन्दर इन भग्न हिन्दू मन्दिरों की प्रतिमायें एकत्र की हुई हैं। ये सब प्रतिमायें अलंकारिक प्रतिमायें हैं। शिव, विष्णु, देवी, सरस्वती, ब्रह्मा, नृसिंह आदि देवों की प्रतिमाओं के अतिरिक्त यक्ष, यक्षिणी, द्वारपाल, नर्तकी, नायिका, पशु, विचित्र पक्षी आदि की भी अनेक प्रतिमायें हैं। कला की दृष्टि से ये सब प्रतिमायें उच्च कोटि की हैं। विलास में अब तक कोई शिलालेख तो नहीं मिला परन्तु दुर्ग और नगर तथा मन्दिर के खँडहरों से तथा प्रतिमाओं के निर्माण से प्रतीत होता है कि विलास नगर दशवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में नष्ट हुआ होगा।

**रामगढ़**—वर्तमान रामगढ़ का पुराना नाम श्रीनगर बतलाया जाता है। इस पहाड़ी पर जो एक जीर्ण शीर्ण दुर्ग है, वह लगभग चार सौ या पाँच सौ वर्ष का पुराना प्रतीत होता है परन्तु पहाड़ी से घिरे हुए जंगल के बीच जो भण्डदेवरा नामक एक शैवमन्दिर जीर्णावस्था में अब तक खड़ा है उससे पता चलता है कि श्रीनगर दशवीं शताब्दी के आस पास एक समृद्ध नगर होगा।

**भण्डदेवरा**—यह शिवालय रामगढ़ की पर्वत श्रेणी से घिरे हुये जंगल के मध्य में स्थित है। विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में एक मेद वंशीय क्षत्रिय राजा ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था[१]। अतः इससे काफी समय पूर्व इसका निर्माण होगया होगा। इस मंदिर के पास लगभग दशवीं शताब्दी की लिपि में लिखे हुए संस्कृत शिलालेख का एक खण्ड मिला है[२], जिससे ऐसा जान पड़ता है कि मलय वर्मा नामक राजा ने किसी शत्रु पर विजय प्राप्ति के उपलक्ष में अपने इष्टदेव के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये इस मंदिर का निर्माण करवाया होगा। यह मंदिर प्रौढ़ हिन्दू कला का सुन्दर उदाहरण है। शिखरबन्ध मंदिरों में यह उत्तम कोटि का मंदिर है। इसके शिखर, मण्डप, तोरण, स्तम्भ सब उत्तम कला के द्योतक हैं। शिखर का लगभग आधा भाग गिर गया है परन्तु अवशिष्ट भाग विलीन सुन्दरता, शैली और आकृति के वैभव का सकरुण स्मरण दिलाता है। इसके पीछे इसी नमूने का एक छोटा सा मंदिर और है। मंदिर के निकट जो शिखर और मण्डप के पत्थर गिरे हुये हैं उनसे ढका हुआ दाहिनी ओर एक नान्दी और शिवलिंग है। मण्डप के स्तम्भों पर अनेक प्रकार के अश्लील चित्र बने हुए हैं, जो ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी की कला तथा संस्कृति की विशेषता को दर्शाते हैं।

**मौर्यवंश की स्मृति**—कनसुवाँ का शैवमन्दिर भी आठवीं शताब्दी का है। इस मन्दिर के बाईं ओर परिक्रमा की दीवार में संस्कृत भाषा और आठवीं शताब्दी की कुटिला लिपि में महाराज शिवगण मौर्य का शिलालेख है जिसमें इस मन्दिर के निर्माण का

(१) परिशिष्ट संख्या ६

(२) परिशिष्ट संख्या ७

सविस्तर उल्लेख है। इस मन्दिर का अधिकांश भाग आठवीं शताब्दी का ही बना हुआ प्रतीत होता है। कुछ अंशों का जीर्णोद्धार पीछे करवाया गया है परन्तु इससे मंदिर के असली स्वरूप का रूपान्तर नहीं हुआ है।

**अन्य स्थान**—देहलनपुर और आमेठा, निजामत अकलेरा में भी ग्यारहवीं शताब्दी के मंदिर हैं। विचालस का मंदिर भी इतना ही पुराना है। मऊ के ऊजड़ महल मध्यकालीन हैं।

**भीलों के नष्ट नगर**—नाहरगढ़ से पाँच मील उत्तर की ओर वर्णी नदी के बायें तट पर किसी समय आसलपुर नामक एक छोटी सी नगरी थी, जिसके अब केवल भग्नावशेष मात्र दृष्टिगोचर होते हैं। इसके खँडहरों से अनुमान होता है कि विलास की भाँति यह भी कभी समृद्ध नगरी होगी। कोटा नगर से दक्षिण की ओर चम्बल नदी के दाहिने तट पर दो दुर्गों के खँडहर हैं। इन दोनों को अकेलगढ़ कहा जाता है। इनमें एक पुराना किला है, और दूसरा उससे पीछे का। अकेलगढ़ और आसलपुर केवल किंवदन्ती के अनुसार भीलों के स्थान हैं। ऐसा मालूम होता है कि नदी के पानी तक आसानी से पहुँचने के लिये अकेलगढ़ को छोड़ कर कोटिया भील ने कोटा नगर बसाया होगा। कोटा नगर बूँदी के राजकुमार जीतसिंह ने कोटिया को मारकर अपने अधीन किया था, और आसलपुर के लिये भी जनश्रुति है कि भोजा नामक भील राजा को मारकर रावरतन ने उस नगरी को नष्ट किया था।

**जैत्रसिंह और हम्मीर की प्रशस्ति**—ठिकाना बल्वन में कँवाल जी महादेव के मन्दिर पर महाराजा हम्मीर की प्रशस्ति है, जिसमें हम्मीर और उसके पिता के पराक्रम तथा विजय का वर्णन है।

# चौहाणों की उत्पत्ति

चौहाण क्षत्रियों की उत्पत्ति के विषय में आधुनिक विद्वानों में बड़ा मतभेद है। अधिकांश विद्वानों का कहना है कि चौहाण हूण जाति के वंशज हैं, और कुछ विद्वानों ने सिद्ध किया है कि ये रघुवंशी क्षत्रिय हैं।

**बीसलदेव का शिलालेख**—चौहाणों की उत्पत्ति के विषय में सबसे प्राचीन उल्लेख अजमेर के एक शिलालेख में मिलता है जो ढाई दिन के झोंपड़े के पास पत्थर के ढेरों में प्राप्त हुआ है। ढाई दिन का झोंपड़ा वास्तव में विग्रहराज या बीसलदेव चतुर्थ का बनाया हुआ सरस्वती मंदिर है जिसमें इस राजा ने अपने रचे हुये हरकेलि नाटक को तथा राजकवि सोमेश्वर रचित ललित विग्रह राज नाटक को शिला-खण्डों पर खुदवा कर दीवारों में लगवाया था। इस मंदिर के पास बहुत बड़े पत्थर पर खुदा हुआ किसी कवि द्वारा रचित चौहाण इतिहास सम्बन्धी एक काव्य का अंश मिला है। बीसलदेव पृथ्वीराज से पहिले बारहवीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ है अतः शिला पर उत्कीर्ण किया हुआ यह काव्य खण्ड भी उसी समय का होगा। इस शिलालेख में प्रथम सूर्य की स्तुति की गई है, और फिर सूर्य वंश की महिमा का वर्णन है। इसी शिलालेख में लिखा है कि सूर्य वंशी राजाओं के राज्य में किसी प्रकार की आधि तथा व्याधि प्रजा को सन्तप्त नहीं कर सकती थी और कोई प्राणि दुर्गति को प्राप्त नहीं होता था और इस वंश के इक्ष्वाकु

और राम आदि राजाओं ने सप्तद्वीपों पर राज्य किया है। तदनन्तर लिखा है कि चाहमान या चौहाण वीर इसी कुल में उत्पन्न हुआ था[१]।

**पृथ्वीराज विजय काव्य**—पृथ्वीराज के कुछ समय बाद 'पृथ्वीराज विजय' नामक एक काव्य लिखा गया था जिसमें चौहाणों की उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि रघुवंश काकुत्स्थ, इक्ष्वाकु, और रघु इन तीन महापुरुषों से अलंकृत हो चुका है।यह कलिकाल में चाहमान के जन्म से अधिक प्रसिद्ध हुआ और पृथ्वीराज ने इस सूर्य वंश की उन्नति की[२]।

**हम्मीर महाकाव्य**—सन् १३९३ के लगभग नयचन्द्र सूरी ने हम्मीर महाकाव्य नामक चौहाणों का संक्षिप्त इतिहास लिखा था जिसमें चाहमान को सूर्यवंशी बतलाया है। कवि लिखता है कि ब्रह्मा से साम्राज्य प्राप्त करके चाहमान ने अन्य राजाओं पर उसी प्रकार शासन किया जैसे उसका प्रधान पूर्वज सूर्य पर्वतों पर राज्य करता है[३]।

---

(१) रा० ब० गौरीशंकर ओझा— राजपूताने का इतिहास, पहला खण्ड, पृष्ठ ६४।

(२) काकुत्स्थमिक्ष्वाकु रघू च यद्दधत्पुराभवत्रिप्रवरं रघोः कुलम्। कलावपि प्राप्य स-चाह मानतां प्ररूढ़-तुर्य-प्रवरं बभूवतत्॥ ............भानोः प्रतापोन्नर्तिं। तन्वन्गोत्र गुरोर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुतो जन्मना॥ सुतोप्य पर-गाङ्गेयो निन्येस्य रवि सूनुना। उन्नतिं रवि वंशस्य पृथ्वीराजेन पश्यता॥ 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य'

(३) पपात यत्पुष्करमत्रपाणेः ख्यातं ततः पुष्करतीर्थमेतत्। यच्चाप मागादथ चाहमानः पुमानतोऽख्यापि स चाहमान। ततश्चतुर्वक्त्रभवत्प्रसादात् साम्राज्यमासाद्य स चाहमानः चक्रेऽर्कवन्नूभृत आशुपादा क्रांतान् गुरुनप्ययमस्य वंशः।

हम्मीर महाकाव्य, प्रथम सर्ग श्लोक १७, १८।

**पृथ्वीराज रासो**—चन्दबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' में चौहाणों की उत्पत्ति का वर्णन निम्न लिखित रूप से किया गया है:—आबू को अचल देख दर वसिष्ठ मुनि प्रसन्न हुए और अन्य ऋषियों को वहां यज्ञ के लिये बुलवाया। अग्नि कुण्ड बनाकर जब ऋषि लोग यज्ञ करने लगे तो दैत्यों ने यज्ञ में विघ्न करना आरम्भ किया। इससे सन्तप्त होकर सब ऋषि वसिष्ठ की शरण में गये। वसिष्ठ ने यज्ञ-रक्षा के लिये प्रतिहार, चालुक्य, और परमार इन तीन क्षत्री योद्धाओं को यज्ञ बेदी से उत्पन्न किया। इस पर भी राक्षसों का उपद्रव शमन न हुआ। तब वसिष्ठ स्वयम् यज्ञ करने के लिये बैठे और बहुत विचार किया कि असुरों का संहार किस प्रकार किया जावे। अन्त में अग्नि-कुण्ड के पास आसन लगाकर वसिष्ठजी ने ब्रह्मा की स्तुति की और वेद मन्त्रों का उच्चारण करके आहुति दी। उसी समय क्षत्रिय योद्धा चहुआण उत्पन्न हुआ[1]।

---

(१) तब सुरिष्य वाचिष्ट। कुंड रोचन रचि तामह।
धरिय ध्यान जनि होम। मध्य वेदी सुर मामह॥
तब्र प्रगट्या प्रतिहार। राज तिन ठौर सुधारिय।
पुनि प्रगट्यो चालुक्क। ब्रह्मचारी व्रत धारिय॥
पावांर प्रगट्यो वीरवर। कहयो रिष्यए परमार धन।
चय पुरुप जुद्ध कीनो अतुल। मह रष्पस षुदंत तन॥
क० ॥ २५० ॥ रू० ॥ १२७ ॥

तव चिंतिय वाचिष्ट। एह आसुर अविचारिय।
जग्य जीह उच्चिष्ट। करैं कातर क्रत हारिय॥
सुरन अंस संग्रहे। हवै नह हवा हुआ वह।
सो उपाव संचियै। जो याहि संवरै असुर सह॥
न्निम्यो सु सूर संग्राम भर। अरि अलंघषंडन सु षल।
सम धरहि जग्य कारन सकल। बिमल सिष्ट सोभै सबल॥
क० ॥ २५३ ॥ रू० ॥ १३० ॥

विद्वानों का मत है कि पृथ्वीराज रासो न पृथ्वीराज का समकालीन ग्रन्थ है, और न ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमाणिक। इसका कुछ अंश सम्भवतः उस समय लिखा गया हो परन्तु अधिकांश भाग बहुत पीछे का है। यह बात इस ग्रन्थ की अनेक ऐतिहासिक भूलों और काव्य-कल्पनाओं से स्पष्ट सिद्ध है।

**वंशभास्कर**—सूर्यमल कृत वंशभास्कर में भी चौहानों की उत्पत्ति का वर्णन उपरोक्त प्रकार से किया गया है। जब दैत्यराज बाण के पुत्र धुन्धकेतु और जम्भ ने अर्बुदगिरि (आबू) पर वसिष्ठ के यज्ञ में विघ्न किया तो वसिष्ठ ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्रादि अन्य देवताओं को उस पर्वत पर आमंत्रित किया और उनसे रक्षा के लिये प्रार्थना की। तब ब्रह्मा ने विघ्नकारी दैत्यों का नाश करने के लिये जलते हुये अग्नि कुण्ड से प्रतिहार, चालुक्य, प्रमार, और चौहाण इन चार क्षत्रिय वीरों को उत्पन्न किया। चौहाण वीर को ब्रह्मा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अति क्रूर आहुति डाल कर उत्पन्न किया था[1]।

---

अनल कुण्ड किय अनल। सज्जि उपगार स[illegible]र सुर॥
कमलासन आसनह। मंडि जग्योपवीत जुरि॥
चतुरानन स्तुति सद्द। मंत्र उच्चार सा[illegible] किय॥
सुकरि कमण्डल वारि। जुजित आह्वान था[illegible] दिय॥
जा जन्नि पानि श्रव अहुति जजि। भजि सु दुष्ट आह्वान करि॥
उप्पज्यौ अनल चहुहान तब। चव सु बाहु[illegible] असि नाह धरि॥
छ०॥ २[illegible]५५॥ रू०॥ १३३॥

पृथ्वीराज रासो, आदि पर्व[illegible], पृष्ट ४६ से ५१ तक

(१) i प्रार्थितने ततो धात्रा मृत्यु मुद्दिश्य दैत्ययौः।
उदपादि ज्वल्द्वह्नेः कुण्डलात्क्षत्र चतुष्टयम ॥३४॥
प्रतिहार इति ख्यातो नाम्ना सौम्यान्तरिन्द्रियः ॥३५॥
,,, ,,, ,,, द्वितीय क्षत्रियोत्तम [illegible]थ।

**नवीन विश्वास**—चन्दबरदाई और सूरजमल मिश्रण की उपरोक्त कथाएँ रजपूतों में बहुत प्रचलित हैं। इनके आधार पर चौहाण, चालुक्य, परमार और प्रतिहार अपने को अग्निवंशी कहने लग गये हैं। वे दोनों ग्रन्थ भाट और चारणों की रचनायें हैं और लोक भाषा में लिखे गये हैं। इसलिये राजपूतों में इनका बहुत आदर है और ये प्रामाणिक इतिहास माने जाते हैं। अतः यद्यपि पहिले चारों राजपूत कुल अपने आपको सूर्यवंशी कहते थे परन्तु रासो की रचना के बाद ये सब अपने आपको अग्निवंशी मानने लगे और सूर्य्यमल के वंशभास्कर से यह विश्वास और भी पुष्ट होगया।

**सूर्यवंशी और अग्निवंशी एक ही बात है**—इन चारों क्षत्रिय वंशों की अग्निकुण्ड से उत्पत्ति का वर्णन करने के पश्चात् उपरोक्त दोनों ग्रन्थों में यह भी लिखा है कि ये कुल सूर्य से उत्पन्न हुए हैं। चन्द-बरदाई चारों अग्निकुलों की उत्पत्ति का वर्णन करके क्षत्रियों के छत्तीस वंशों की नामावलि देते हुए लिखता है कि सब राजपूत या तो सूर्य-वंशी हैं या चन्द्रवंशी या यादववंशी[1]। सूरजमल मिश्रण को यह मालूम

---

ii चालुक्यश्च [illegible]लुको नाम्ना चुलुक्यश्चौलुकस्तथा ॥४३॥
प्रमारः प[illegible]रमारोपं प्रामारश्च समाख्यया।
वशिष्ट ग[illegible]त्र सम्पन्नो यजुर्वेदो रणोत्सुकः ॥४९॥
ततोऽति[illegible]क्रूरयाहुत्या हव्यं प्रक्षिप्य पावके।
उदपादि [illegible]चतुर्भोऽयं वीरः कुद्ममनावली ॥५३॥
चह्वाणश्चहु[illegible]वाणोऽसो चुहाणश्च चतुर्भुजः।
चौहाणश्चा[illegible]पि चण्डासिः प्रोक्तः सर्वैरभिख्यया ॥५७॥

वंशभास्कर पृष्ठ ६१ से ६४ तक।

(१) रवि ससि [illegible]ादव वंश। ककुस्थ परमार सदावर॥
चाहुवान च[illegible]लुक्क। छन्द सिलार आभीयर॥
दोय मत्त [illegible]कबॉन। गरुअ गोहिल गोहिल पुत॥

था कि रासो से अधिक प्राचीन ग्रन्थों में चौहाणों को सूर्यवंशी या रघुवंशी माना है, इसलिये उसने भी लिखा है कि अग्निवंशी क्षत्रियों को कोई विद्वान् सूर्यवंशी भी कहते हैं, परन्तु सूर्य और अग्नि एक ही बात है, अतः इसमें कोई विरोध नहीं मानना चाहिये[1]।

**उत्पत्ति स्थान आबू पर्वत या पुष्कर तीर्थ**—अग्नि कुण्ड से कुछ क्षत्रियों के उत्पन्न होने की कहानी पृथ्वीराज रासो से पहिले ही प्रचलित थी। कालिन्दिका प्रकाश नामक ग्रन्थ में लिखा है कि कलयुग में एक सहस्र वर्ष समाप्त होने पर यवनगण प्रजा को सताने

---

चापोत्कत परिहार । राव राठौर रोस सुत ॥
देवरा टांक सैंधव अनिग । योतिक प्रतिहार दधिषट ॥
कारद्वपाल कोटपाल हुल । हरि तट गोर कमाष मट ॥

छं० ॥ २७७ ॥ रू० ॥ १३५ ॥
पृथ्वीराज रासो पृष्ठ ५४ आदि पर्व।

उपरोक्त छन्द का श्री विनायकराय चिन्तामणि वैद्य ने विस्तृत विवेचन करके योग्यतापूर्वक सिद्ध किया है कि रवि, शशि और जादव छत्तीस वंशों की गिनती में सम्मिलित नहीं करने चाहियें। ये तीनों शब्द सम्पूर्ण क्षत्रियों की उत्पत्ति के सूचक हैं।

सी० बी० वैद्य-हिस्ट्री ऑफ़ मिडिवियल हिन्दू इण्डिया,
जिल्द २ पृष्ठ २२ से २६ तक।

रासो के सम्पादक मोहनलाल विश्वलाल पंडया, राधाकृष्ण दास और बाबू श्यामसुन्दर दास ने रवि शशि और जादव की गणना छत्तीस वंशों में ही की है, जो लेखक की सम्मति में प्रमाणिक नहीं।

पृथ्वीराज रासो पृष्ठ ५४ आदिपर्व।

(१) अनल अन्व वापहिं किते, वरनत सौर बखानि।
तेज तत्त्व एकत्व करि, नाहिं विरोध तहँ जानि॥

वंशभास्कर प्रथम भाग पृष्ठ ८७।

लगेंगे, तब यज्ञ कुण्ड से उत्पन्न होने वाले क्षत्रिय वीर लोग रक्षा करेंगे[1]। यह भी किंवदन्ती प्रसिद्ध थी कि क्षत्रियों के प्रसिद्ध चारकुल वसिष्ठ ऋषि के यज्ञकुण्ड से उत्पन्न हुए हैं[2]। परन्तु चन्द बरदाई ने वसिष्ठ के यज्ञ का स्थान आबू लिखा है[3]। ये जनश्रुतियाँ शायद इसलिये प्रचलित होगई हों कि प्रतिहार राजाओं की आदि राजधानी आबू पर्वत से ५० मील उत्तर पश्चिम दिशा में भीनमाल नामक एक नगरी थी[4]। इसके पास ही पूर्व दिशा में लगभग ४० मील के अन्तर पर गुहिलोत राजपूतों ने पहिले नागदे में और फिर चित्तौड़ में अपनी राजधानी

---

(१) दूषयिष्यन्ति यवनाः, सहस्राब्दे गते कलौ।
तदा रक्षां करिष्यन्ति, याज्ञिका क्षत्रियर्षभाः ॥

कालिन्दिका प्रकाश, पृथ्वीराज रासो आदि पर्व पृष्ठ ५१ पर उद्धृत।

(२) पपात यत्पुष्कर मत्रपाणेः ख्यातं ततः पुष्करतीर्थमेतत्।
यच्चायमागदथ चाहमानः, पुमानतोऽख्यायि सचाहमानः॥

श्री हम्मीर महाकाव्य, प्रथम सर्ग, १७ श्लोक।

(३) बाना रभंति बारानसिय, आबू अर्बुद उदरिय।

पृथ्वीराज रासो, आदिपर्व, पृष्ठ ४६।

(४) (क) Gwalior Inscription—Nach rd. K. Gesedlsch. D. Win, Gottingen 1905, 'Epigr notes' No. 17.

(ख) Archæological survey Annual Report 1903—04 page 277.

(ग) A. M. T. Jackson—'Bhinmal,' Bombay Gazetteer 1896, Vol. I Part I App.

(घ) Watters—On Ywan Chwang ii, 250.

(ङ) D. R. Bhandarkar—A. S. W. I. Bog. Report 1907-1908 pt. 36—41.

(च) J. Wilson—Indian Caste 1877, Vol. I p. 109.

स्थापित की थी [१]। चौहाणों की राजधानी आबू से उत्तर पूर्व की ओर साँभर नगरी थी और उनके राज्य की सीमा आबू से लगभग १५० मील ही दूर थी[२]।

**अग्निवंशी शुद्ध किये हुए विदेशी हैं**—प्रायः चन्दवरदाई और सूरजमल की इन उत्पत्ति कथाओं के आधार पर कर्नल जेम्स टॉड ने यह मत प्रकट किया था कि अग्निवंशी क्षत्रिय शुद्ध किये हुये क्षत्रिय हैं। उसका कथन है कि इन चार जातियों की उत्पत्ति-विषयक आलंकारिक कथाओं का बिल्कुल स्पष्ट अर्थ यही हो सकता है कि अपनी रक्षा के लिये ब्राह्मणों ने युद्ध-प्रिय विदेशी जातियों को शुद्ध करके आर्य धर्म में सम्मिलित किया हो[3]। कर्नल टॉड का मत है कि अश्वमेध, अश्वपूजन, शस्त्रार्चन, प्रातः स्नान, युद्धविधि, वसन्त आदि त्यौहार, भैंसों का बध, शूकर भक्षण, चारण-गाथायें, स्त्रियों का आदर, शकुन प्रणाली, मद्यपान, मृतसंस्कार, शस्त्रशिक्षा आदि राजपूतों के रिवाज सीथियन लोगों से बहुत मिलते जुलते हैं[४]। इससे कर्नल टॉड अपने इस मत को पुष्ट करता है कि अग्निवंशी राजपूत विदेशी सीथियन लोगों के वंशज हैं। विन्सेन्ट स्मिथ अग्निवंशियों को हूण और गुर्जर लोगों के वंशज मानता है[५]। गुर्जर प्रतिहारों के लिये जेम्स केम्बेल और

---

(१) C. V. Vaidya—History of Medieval Hindu India Vol. II pp. 72—73.

(२) उपरोक्त पृष्ट ९२.

(३) That these races, the sons of Agni were but regenerated and converted by the Brahmanas to fight their battles, the chearest interpretation of their allegorical history will disclose. Tod-Annals and Antiquities of Rajasthan Vol. I page 76.

(४) टॉड—राजस्थान, प्रथम भाग पृष्ठ ४८–६७.

(५) विन्सेन्ट ए० स्मिथ—दी अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ ४२६।

डाक्टर देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर की धारणा है कि ये लोग बाहर से आई हुई खजर जाति के हैं जो भारत में प्रवेश करने के बाद गूजर कहलाने लगे[१]। जब चार अग्निवंशी जातियों में से एक जाति को विद्वानों ने इस प्रकार विदेशी गूजर सिद्ध कर दिया तो शेष तीन जातियों को भी गूजर मानने में इतिहास वेत्ताओं को कोई आपत्ति नहीं रही। इस शोध की पुष्टि में यह भी कहा जाता है कि भाटों की ख्यातों[२] में हूणों की गणना राजपूत वंशों में की गई है, राजपूतों के उच्चवंशों में हूण कुमारियों के विवाह हुये हैं, और हूण लोग शैव धर्म को मानते थे।

**हूण और राजपूत**—मेवाड़ के गुहिल वंशी राजा अल्लट (सन् ९५३) की रानी हरियदेवी हूण वंश की थी[3] और चेदि के कल्चुरि या हैहय वंशी राजा गाङ्गेयदेव के पुत्र कर्ण का विवाह हूण कुमारी आवल्लदेवी के साथ हुआ था[४]। भारतवर्ष में प्रवेश करने के

(१) (i) D. R. Bhandarkar—Gurjars (J. Bo. Br. R. A. S. Vol. XX.
(ii) Epigraphic notes (Ibid. Vol XXI.
(iii) ... ... No. 17.
(iv) Hiranand-Gwalior Inscription, Archælogical survey India, Annual Report 1903-04 p. 277.
(v) J. M. Campbell—Hindus of Gujrat, Bom. Gaz. App. B.

(२) ओझा—राजपूताने का इतिहास, प्रथम जिल्द, पृष्ठ ५५। कुमारपाल प्रबन्ध।

(३) अभूद्यस्यामेवत्तस्यां तनयः श्रीमदल्लटः।
स भूपतिः [ प्रिया ] यस्य हूण क्षोणीश वंशजाः॥
हरियदेवी यशो यस्या भातिहर्षपुराह्वयम्॥ ई० ऐं० जि० ३९ पृष्ट १९१

(४) पुत्रोऽस्य खड्ग दलि [ तारि ] करीन्द्र कुम्भ मुक्ताफलैः स्म ककुभोर्च्चति
कर्ण्ण देवः ... ... ... ... ... ॥
अजनि कल चुरीणां स्वामिना तेन हूणान्वयजलनिधिलक्ष्यां श्रीमदा-
वल्लदेव्यां ॥ ई० ऐं० जि० २ पृष्ट ४॥

बाद हूण राजाओं ने शैव मत ग्रहण कर लिया था और वे हिन्दू माने जाने लगे थे। हूण राजा मिहिर-कुल के विषय में मालवे के महाराज यशोधर्मन् ने मन्दसौर के पास अपने जयस्तम्भ पर शिलालेख खुदवाया था कि अपने इष्टदेव शिव के अतिरिक्त किसी अन्य के आगे मस्तक न झुकाने वाले राजा मिहिर-कुल ने उसके ( यशोधर्मन ) के चरणों की सेवा की[1]। मिहिर-कुल के चाँदी के सिक्कों पर त्रिशूल, नन्दी और छत्र के चिह्न हैं तथा उन पर 'जयतु वृषध्वजः' लिखा हुआ है[2]।

मेवाड़ राजयान्तर्गत भैंसरोड़ के ठिकाने में बाड़ोली के भव्य शैवमन्दिर हूणों के बनाये हुये बतलाये जाते हैं। परम्परा से इनको हूण राजा की चौरी कहा जाता है[3]।

**विदेशी होने के चार प्रमाण**—इन चार क्षत्रिय कुलों की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों की यह धारणा कि ये विदेशी हैं; केवल चार प्रमाणों पर स्थित है ( १ ) यज्ञकुण्ड से उत्पत्ति की कथा, ( २ ) भीनमाल और कन्नौज के प्रतिहारों की गूजरों से उत्पत्ति, ( ३ ) पुराणों की वंशावली, ( ४ ) राजपूतों का प्रकाश काल। यह मत डा० देवकृष्ण भण्डारकर, डा० विन्सेन्ट स्मिथ और सर जेम्ज केम्बेल जैसे दिग्गज

---

( १ ) स्थाणोरन्यत्र येन प्रणति कृपणतां
प्रापितं नोत्तयमाङ्गम्।
यस्याश्लिष्टो भुजाभ्यां वहति
हिमगिरिर्दुर्गशब्दाभिधानम्।
नीचैस्तेनापि यस्य, पणति।
भुजबलावर्ज्जनक्लिष्टमूर्ध्ना॥
चूड़ापुष्पोपहारैर्म्मिहिरकुलनृपेणार्चितं पाद युग्गम्।
फ्ली० गु० इ० पृष्ट १४६–४७

( २ ) कनिंगहाम—कॉइन्स ऑफ दी लेटर इन्डो सीथियन्स पृष्ठ ७५।

( ३ ) टॉड—राजस्थान, जिल्द २, परसनल नेरेटिव।

विद्वानों ने स्थिर किया है, परन्तु लेखक को खेद है कि वह निम्न-लिखित कारणों से उनसे सहमत नहीं है:—

(१) यज्ञकुण्ड से उत्पत्ति की कहानी पृथ्वीराज रासो, कालिन्दिका प्रकाश और वंशभास्कर में मिलती है। वंशभास्कर में यह कहानी रासो की छायामात्र है और रासो तथा कालिन्दिका प्रकाश दोनों प्राचीन ग्रन्थ नहीं हैं। रासो का मूलभाग चन्द का लिखा हुआ होगा परन्तु इसका अधिकांश भाग सतरहवीं शताब्दी में लिखा हुआ माना जाता है[1]। कालिन्दिका प्रकाश मुसलमानों के आगमन से पहिले का ग्रन्थ नहीं है। चन्दवरदाई यज्ञकुण्ड की कहानी कहते हुये भी क्षत्रियों को रघुवंशी, चन्द्रवंशी और यादववंशी मानता है, और यह परम्परा उससे पहिले ही प्रचलित थी। रत्नकोष नामक संस्कृत ग्रन्थ के टीकाकार ने भी लिखा है कि क्षत्रियों के छत्तीस वंशों का मूल पुरुष मनु है। इस प्रकार की परम्परा के होते हुये भी अग्निकुण्ड से क्षत्रियों की उत्पत्ति की कहानी सम्भवतः इस उद्देश्य से लिखी गई होगी कि देश की रक्षा के लिये मुसलमानों से लड़ना क्षत्रिय लोग अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य समझते रहें।

(२) कन्नौज के प्रतिहारों को गूजर अर्थात् गुर्जर माना-जाता है और गुर्जरों को कनिंगहाम यूची अर्थात् कुशन जाति के मानता है[2]। वि. ए. स्मिथ इनकी गणना हूणों में करता है[3], और सर जेम्स केम्बेल गुर्जरों को खजर जाति के मानता है; खजर लोग छठी

---

(१) सी. वी. वैद्य—हिस्ट्री ऑफ मिडीवियल हिन्दू इण्डिया, जिल्द २-पृष्ठ १९।

(२) कनिंगहाम—आर्क्यालॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, जिल्द २ पृष्ठ ७९।

(३) स्मिथ—अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया पृष्ठ ४११।

शताब्दी में भारतवर्ष में आये थे[१]। प्रोफेसर देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर केम्बेल के मत को स्वीकार करता है[२], परन्तु गुर्जर जाति को यूची, हूण, खजर या अन्य कोई विदेशी जाति मानने में अनेक आपत्तियाँ हैं[३]। उपरोक्त विद्वानों की दलीलें खोज से भरी हुई होते हुये भी निर्विवाद नहीं हैं। रायबहादुर गौरीशंकर ओझा तो यहाँ तक लिखते हैं कि 'खजर से गुर्जर या गूजर जाति की उत्पत्ति मानना वैसी ही कपोल कल्पना है जैसे कि कोई यह कहे कि सकसेने कायस्थ यूरोप की सैक्सन जाति से उत्पन्न हुये हैं[४]'। परन्तु यदि मान भी लिया जावे कि प्रतिहार क्षत्रिय किसी विदेशी जाति के वंशज हैं तो भी चौहाणों की उत्पत्ति-विषयक समस्या हल नहीं होती। प्रतिहारों को विदेशी सिद्ध करने पर भी चौहाण विदेशी सिद्ध नहीं होते।

(३) पुराणों में लिखा है कि महापद्म शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न होगा और सम्पूर्ण क्षत्रियों का अन्त कर देगा। इसके पश्चात् सब राजा शूद्र होंगे[५]। ऐतिहासिक दृष्टि से पुराणों के इस कथन को कुछ भी

---

(१) इं० एं० जिल्द ४० पृष्ठ २०।

(२) उपरोक्त तथा पृष्ठ २२।

(३) ओझा—राजपूताने का इतिहास, जिल्द १; पृष्ठ १३४ फुट नोट नं० २।

(४) ओझा—राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृष्ट १३५।

(५) महानन्द सुतश्चापि शूद्रायां कलिकांशजः।
उत्पस्येत महापद्मः सर्व क्षत्रान्तको नृपः॥
ततः प्रभृति राजानो भविष्याः शूद्र योनयः।

मत्स्य पुराण अध्याय २७२ श्लोक १७–२२। वायु पुराण अध्याय ९९ श्लोक ३२६–३१। ब्रह्माण्ड पुराण ३–७४–१३९–४३।

महानन्दिसुतः शूद्रागर्भोद्भवोऽति लुब्धो— महापद्मोनन्दः परशुराम इवापरोऽखिल क्षत्रान्तकारी भविता। ततः प्रभृति शूद्रा भूमिपाला भविष्यन्ति।

विष्णु पुराण, अंश ४ अध्याय २४। ऐसे ही श्री मद्भागवत, स्कन्ध १२ अध्याय १ श्लोक ८–१३।

महत्त्व नहीं दिया जासकता। पुराणों में दी हुई राज वंशावलियाँ ईसा की चतुर्थ शताब्दी से इधर नहीं चलतीं। इससे स्पष्ट ही है कि पुराण तीसरी या चौथी शताब्दी में यदि प्रथमवार नहीं लिखे गये तो सम्पादित अवश्य किये गये हैं। पुराण कर्ताओं की यह उक्ति कि "भविष्य में सब राजा शूद्र होंगे" रोष और नैराश्य की उक्ति है, क्योंकि बौद्ध धर्म के प्रचार के कारण उस समय ब्राह्मणों का महत्त्व बहुत कम होगया था।

(४) विन्सेन्ट ए० स्थिम ने लिखा है कि राजपूत राज्यों का उदय एक दम आठवीं या नवीं शताब्दियों में हुआ है। उस समय क्षत्रियों की प्राचीन परम्पराएँ नष्ट हो चुकी थीं और नई राजपूत जातियों की नई कहानियाँ बनने लगी थीं[1]। परन्तु वर्त्तमान ऐतिहासिक शोध को ध्यान में रखते हुए यह मत स्वीकार नहीं किया जासकता। महापद्म के पश्चात् निरन्तर क्षत्रिय राजा राज्य करते रहे हैं। यह बात अवश्य है कि चौथी शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक प्राधान्य अन्य जातियों का रहा, परन्तु इस अर्से में क्षत्रिय निःशेष नहीं हुये, और उनके हाथ में शक्ति और शासन भी माण्डलिक राज्यों के स्वरूप में बना रहा। महापद्म के पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य जो भारतवर्ष में महाप्रतापी और चक्रवर्त्ती राजा हुआ है, वह सूर्यवंशी क्षत्रिय था[2]। मौर्य साम्राज्य के नष्ट होने पर भी मौर्य वंश के छोटे छोटे राजा भारतवर्ष में कई जगह राज्य करते रहे। इनमें से एक शाखा बप्पारावल से पहिले चित्तौड़ में राज्य करती थी। उस वंश के क्षत्रियों को कुमारपाल प्रबन्ध

---

(१) विन्सेन्ट ए० स्मिथ—अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पृष्ट ४२३—२४।
(२) मेक् क्रिण्डिल—इनवेजन ऑफ इण्डिया बाइ एलेग्जेण्डर दी ग्रेट पृष्ट ४०८।

महावंश की टीका

कर्न—मेन्युअल ऑफ इण्डियन बुधिजम पृष्ट ४६।

का लेखक रघुवंशी मानता है[१]। विक्रम सम्वत् पूर्व की दूसरी शताब्दी के राजा खारवेल[२] के लेख में, विक्रम सम्वत् की दूसरी शताब्दी के उषव दात[३] के लेख में और जग्य पेट[४] के शिलालेख में क्षत्रिय राजाओं का उल्लेख है। अन्तिम शिलालेख में इक्ष्वाकु वंशियों का भी जिक्र है। गुप्त-काल[५] में और हर्ष के समय में क्षत्रियों के राज्य थे, इसके निर्विवाद प्रमाण हैं।

**रघुवंशियों का निरन्तर राज्य**—रघुवंशी क्षत्रिय अत्यन्त प्राचीन काल से अब तक निरन्तर शासन करते आये हैं। यह अवश्य है कि समय समय पर एक छत्र राज्य दूसरी जातियों के हाथ में रहा है। जैसे मौर्यों के बाद सुंग और कण्व ब्राह्मण वंशों का, भारशिवों के बाद गुप्तवंशीय जाटों का, चौहाणों के बाद पठानों का और अठारहवीं शताब्दी में मराठों का और तदनन्तर ब्राह्मणों का राज्य रहा है। फिर भी क्षत्रियों के शासन की परम्परा निरन्तर बनी हुई है। अतः पुराणों का यह कथन निरर्थक है कि महापद्मनन्द के बाद सब राजा शूद्र होंगे।

---

(१) राम मुनि राह पुरा रवोवंशे चित्रांगदी राजा अभिनवैः फलैः। कुमारपाल प्रबन्ध।

(२) कुसंबानं खतियं च सहा य वता शतं मसिक नगरं।

काशीप्रसाद जायसवाल—जे० बी० ओ० रिसर्च सोसायटी जिल्द ३ दिसम्बर १६१७ पृष्ठ ४२५–८५।

(३) उत्तम भद्रकानं च क्षत्रियानं सर्वे परिगृहा कृता ततोस्मि गतो पोक्षराणि।
ए० इं० जि० ८, पृष्ठ ७८।

(४) सिधं। रजे (जो) माटरिपुतस इखाकुना (णं) सिरिविरपुरिस दतस संवछर २०। भारतीय प्राचीन लिपि माला पृष्ठ ५८, लिपिपत्र १२।

(५) समुद्रगुप्त ने योद्धेयों को पराजित किया था जो क्षत्रिय थे।

फ्लीट— गुप्ता इन्सक्रिपशन्स, इलाहाबाद का लेख। रुद्रदामन का गिरनार का शिलालेख।

ए० इ० जिल्द ८ पृष्ठ ४४ और ४७

शक और हूण भारतवर्ष में आकर हिन्दू अवश्य हुये। शक क्षत्रपों की राजकुमारियों के विवाह आर्य क्षत्रियों के साथ हुये[1] और हूण कन्यायें भी प्रसिद्ध क्षत्रिय वंशों के राजकुमारों ने ग्रहण कीं[2]। परन्तु इतनी सी बात राजपूतों को सीथियन या हूण जाति के वंशज कहलाने के लिये पर्याप्त नहीं है।

**रघुवंशी प्राचीन क्षत्री हैं**—उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि रघुवंशी क्षत्रिय भारतवर्ष के आदि क्षत्रिय हैं, और कभी कभी इन्होंने बाहर से आई हुई उन शासक जातियों की राजकुमारियों का पाणिग्रहण कर लिया है, जिन्होंने आर्य धर्म स्वीकार कर लिया था। यह भी कई प्रमाणों से स्पष्ट कर दिया गया है कि चौहाण रघुवंशी या सूर्यवंशी हैं। सूर्य या रघु इनके आदि पुरुष का नाम प्रतीत होता है। सम्भव है रघु वही हो जिसकी चौथी पीढ़ी में श्रीरामचन्द्र हुये थे। क्षत्रियों में अब तक किसी प्रसिद्ध पूर्वज के नाम पर वंश का नामकरण हुआ करता है और जब भविष्य में कोई अधिक प्रतापी पुरुष उत्पन्न होता है तो पूर्व पुरुष का नाम छोड़ कर अगला वंश द्वितीय महापुरुष का नाम धारण कर लेता है। अतः ऐसा जान पड़ता है कि रघुवंश में चाहमान या चौहाण नामक कभी कोई महापुरुष उत्पन्न हुआ होगा, जिसके बाद

---

(१) राजा वशिष्ठ पुत्र श्री पुलुमाई ने उज्जैन के शक क्षत्रप रुद्रदामन की कन्या से विवाह किया था। रुद्रदामन विदेशी शक था, जिसने आर्य-धर्म ग्रहण कर लिया था, और राजा वशिष्ठ पुत्र श्री पुलुमाई अन्ध्रवंशी क्षत्रिय थे। डी० आर० भण्डारकर-- इं० ऐं० जिल्द ४७, १९१८ (सतवाहन काल में दक्षिण)

ऐतरेय ब्राह्मण ७–१८।

डी० आर० भण्डारकर--इं० ऐं० जि० ४७, १९१९ पृष्ठ ७०।

(२) इं० ऐं० जिल्द ३९ पृष्ठ १९१। ए० इं० जि० २ पृष्ठ ४।

उसके वंशज अपने अत्यन्त प्राचीन और धूमिल तथा विस्मृतप्राय पूर्व-पुरुष रघु या सूर्य का नाम छोड़ कर चौहाण कहलाने लगे। चौहाण वंश की एक शाखा में हरराज या हाडोराज नामक एक वीर राजा हुआ। उसके बाद उसके वंशज हाड़ा कहलाने लगे और उसी पद्धति के अनुकूल फिर हाड़ा राजपूतों की भी अनेक शाखायें होगईं।

---

# चौहाणों का संक्षिप्त वृत्त

**चौहाणों का प्रारम्भिक इतिहास अन्धकार में है**—चौहाणों का प्रारम्भिक इतिहास अब तक अन्धकार में है। इस जाति के पूर्व पुरुष चहमान और उसके पीछे के छत्तीस राजाओं की गणना जो वंशभास्कर में सूर्यमल ने की है[1], प्रमाण पुष्ट नहीं है। चन्दबरदाई ने पृथ्वीराज रासो में[2] चहमान से विशाल देव तक जो छत्तीस राजाओं की नामावली दी है, वह भी कपोल कल्पित कही जा सकती है। चौहाणों का सब से प्राचीन शिलालेख ईस्वी सम्वत् ९७२ का है[3]। इससे लगभग २०० वर्ष बाद का शिलालेख बिजोलिया में मिला है[4]। इनके बाद के कई और भी शिलालेख मिले हैं, परन्तु फिर भी चौहाणों का प्रारम्भिक इतिहास अभी प्रकाश में नहीं आया है। हर्ष और बिजोलिया के शिलालेखों में उन आठ राजाओं की नामावली दी है, जो अहिछत्र अर्थात् नागोर में राज्य करते थे। इनके राज्य में सवालाख ग्राम सम्मिलित थे और अजमेर उसके अन्तर्गत था[5]। इस प्रदेश को पौराणिक काल में सपादलक्ष कहते थे[6]। फिर यह साँभर या साकम्बरी कहलाने लगा।

---

(१) वंशभास्कर, भाग २, पृष्ठ ५१८–२२, ७२७–३०, ७३७–४५, ७६५, १०१३–४०, ११८६–१२००।

(२) पृथ्वीराज रासो आदि पर्व पृष्ठ ५५–११७।

(३) ए० इं० जिल्द २ पृष्ठ ११९; सी० वी० वैद्य–हिस्ट्री ऑफ मिडिवियल हिन्दू इण्डिया जिल्द २ पृष्ठ ९१।

(४) ए० एस० जे० बी० जिल्द ५५ पृष्ठ ४१।

(५) स्कन्द पुराण, कुमार खण्ड, अध्याय ३९,

(६) सी० वी० वैद्य—हिस्ट्री ऑफ मिडिवियल हिन्दू इण्डिया जिल्द २ पृष्ठ ९२,

साँभर प्रदेश की राजधानी अहिछत्र नामक नगरी थी,[1] जो वर्तमान नागोर है।

**सांभर के चौहाणों का आरम्भ**—( संवत् ७७५ ) साँभर में चौहाणों का राज्य किसने स्थापित किया इसका अब तक निश्चय नहीं हो पाया है। हर्ष का शिलालेख इनकी वंशावली गुवक से आरम्भ करता है और बिजोलिया में इनके आदि पुरुष का नाम सामन्तदेव दिया हुआ है। सामन्तदेव से गुवक तक इस शिलालेख में छः राजाओं के नाम दिये हुये हैं। गुवक से आगे दुर्लभ राज तक आठ राजाओं की नामावली दोनों शिलालेखों में समान है। गुवक से सातवें राजा विग्रहराज का देहान्त सम्वत् १०३० ( ९७३ ई० सन् ) में हुआ है। अतः इतिहास के सिद्धान्त से प्रत्येक पीढ़ी का काल १५ वर्ष माना जावे तो गुवक सम्वत् ९२५ ( ८६८ ई० ) में राज्य करता होगा। गुवक से पहिले छः राजा इस वंश में और होचुके थे। यदि इनमें से भी प्रत्येक ने १५ वर्ष राज्य किया हो तो सामन्तदेव का समय अनुमानतः ईस्वीय आठवीं शताब्दी के आरम्भ में पड़ता है। इस अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि चौहाणों ने नागोर में अपना राज्य सम्वत् ७७५ ( ७१८ ई० सन् ) के लगभग स्थापित किया होगा।

**संक्षिप्त वृत्त**—गुवक से पूर्व के ६ राजाओं के विषय में हमको नाम के अतिरिक्त कुछ भी मालूम नहीं है। गुवक प्रथम शिव का भक्त था, उसने हर्ष पर्वत पर हर्षदेव का मन्दिर बनवाया था और उसके वंशजों का परम्परागत इष्ट देव हर्षदेव बना रहा[2]। गुवक से

(१) सी० वी० वैद्य—हिस्ट्री ऑफ मिडिवियल हिन्दू इण्डिया, जिल्द २ पृष्ठ ९२।

(२) श्री हर्षः कुलदेवोस्यतस्मादिग्यः कुलक्रमः।
हर्ष शिलालेख ए० इं० जिल्द २ पृष्ठ ११९॥

पीछे चन्द्रराज राजसिंहासन पर बैठा और उसके बाद उसका पुत्र गुवक द्वितीयराजा हुआ। गुवक द्वितीय के पुत्र चन्दन के शासन काल में अर्थात् दशवीं शताब्दी के आरम्भ में चौहाणों में और तोमर राजपूतों में युद्ध होने आरम्भ हुये जिसमें चन्दन ने रुद्रेण नामक तोमर राजा को पराजित करके यशप्राप्ति की[१]। चन्दन का पुत्र महाराज वाक्पति साँभर के चौहाणों में सबसे अधिक प्रतापी हुआ है। उसने विन्ध्याचल तक अपना राज्य बढ़ा लिया था। इसलिये वह विन्ध्यनृपति भी कहलाने लगा था[२]। इसके छोटे भाई लक्ष्मण ने सम्वत् १००० (सन् ९४३) के लगभग एक अलग राज्य स्थापित करके नाडोल ( मारवाड़ ) में अपनी राजधानी स्थापित की[३]। वाक्पति का पुत्र सिंहराज साँभर के राजसिंहासन पर बैठा, जिसको अपने विपुल दान और पुण्य के कारण लोग महाराज हरिश्चन्द्र के समान समझने लगे। उसने श्रीहर्ष के मन्दिर की छत पर सोना चढ़वाया, तोमरों के राजा को हराया, और प्रत्येक दिशा में विजय प्राप्त की[४]। सिंहराज का पुत्र विग्रह राज अपने पिता के समान दानी और प्रतापी हुआ। उसने हर्षदेव के मंदिर को दो ग्राम

---

(१) श्री चन्दनोभूत् क्षितिपतिः भयदस्तोमरेशं सदर्पं हत्वा रूद्रेणभूपं समरभुवि।
हर्ष शिलालेख ए० इं० जिल्द २ पृष्ठ १२१ ॥

(२) बिजोलिया शिलालेख जे० आर० ए० एस० बी० ५५ पृष्ठ ४१।

(३) सी० वी० वैद्य—हिस्ट्री ऑफ मिडिवियल हिन्दू इण्डिया,
जिल्द २, पृष्ठ ९६।

(४) लोकैर्योतिमहीतले ननु हरिश्चन्द्रोपमोगीयते ॥
हैममारोपितं येन शिवस्य भुवनोपरि ॥
तोमरनायकं सलवणं सैन्याधिपत्योद्धतम् ॥
युद्धे येन नरेश्वराः प्रतिदिशं निर्न्ना ( ण्णा ) सिताजिष्णुना ॥
हर्ष शिलालेख ए० इं० जिल्द २, पृष्ठ १२१।

दान दिये, और उसी के शासन काल में इस मंदिर पर शिलालेख लगवाया गया। विग्रहराज के भाई दुर्लभराज ने सम्वत् १०५७ ( ई० सन् १००० ) के लगभग साँभर में राज्य किया। इसका पोता वाक्पति महमूद गजनी का समकालीन था। वाक्पति से पाँचवीं पीढ़ी में पृथ्वीराज प्रथम सम्वत् ११३५ ( १०७८ ई० ) में हुआ, जिसने रणथम्भौर के एक जैन-मंदिर पर स्वर्ण कलश चढ़ाया[1]।

**साँभर से अजमेर**—पृथ्वीराज प्रथम के पुत्र अजयदेव ने साँभर को छोड़कर अपनी राजधानी अजमेर में बनाई। यह राजा अवश्य प्रतापी हुआ होगा क्योंकि इसके नाम के सिक्के भी मिले हैं जिन में उसकी रानी सोमला देवी का भी नाम है[2]। अजयदेव के पुत्र अरुण राज या आना ने आनासागर बनवाया और सम्वत् १२०२ ( ११४५ ई० ) में, तथा सम्वत् १२०७ ( ११५० ई० ) में उस पर गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल ने चढ़ाई की[3]। पहली चढ़ाई में कुमारपाल हार गया, परन्तु दूसरी चढ़ाई में उसको विजय प्राप्त हुई[4]। कुमारपाल की वहिन का विवाह आना से हुआ था। आना ने इस देवी का

---

( १ ) सी० वी० वैद्य—हिस्ट्री ऑफ मिडिवियल हिन्दू इण्डिया जिल्द ३ पृष्ठ १४८।
विजोलिया का शिलालेख—जे० आर० ए० एस० बी० ५५, तथा ए० ई० जिल्द ८, और ओझा—टॉड राजस्थान, पृष्ठ ३९४।

( २ ) ई० ए० १९१२।

( ३ ) हरविलास शारदा—अजमेर पृष्ठ ३३-३६।
सी० वी० वैद्य—हिस्ट्री ऑफ मिडिवियल हिन्दू इण्डिया जिल्द ३, पृष्ट १४८
ओझा—राजपूताने का इतिहास जिल्द १ पृष्ट २१९।

( ४ ) व्याप्याश्रय काव्य सर्ग १६, श्लोक ३३-३४।
कुमार पाल प्रवन्ध।
ई० ऐं० जिल्द ४१ पृष्ट १९५-९६

अपमान किया था जिससे रुष्ट होकर ही कुमारपाल ने आना पर चढ़ाइयाँ की थीं[१]।

**प्रबल प्रतापी बीसलदेव**—अजमेर के चौहाणों में आना का पुत्र विग्रहराज चतुर्थ या विशालदेव या बीसलदेव बहुत प्रतापी हुआ। उसने दिल्ली के लोहे के स्तम्भ पर एक लेख खुदवाया था, जिसमें लिखा है कि "विन्ध्याचल से हिमालय तक यात्रा करते हुये बीसलदेव ने उन तमाम राजाओं को पराजित किया जिन्होंने उसका सामना किया और जिनने उसको नमस्कार किया, उन पर कृपा की। मुसलमानों का संहार करके शाकम्भरीन्द्र बीसलदेव ने आर्यावर्त्त को पुनः वास्तविक आर्यावर्त्त बनाया। हिमालय से विन्ध्याचल तक सम्पूर्ण देश उसने अधिकृत किया[२]"। विशालदेव के समय में पंजाब को विजय करने के पश्चात् मुसलमान लोग मध्यभारत में कई आक्रमण कर चुके थे और कई जगह बस गये थे। उक्त शिलालेख से विदित होता है कि ऐसे सब मुसलमानों को बीसलदेव ने भारतवर्ष से निकाल दिया था। यह

---

(१) सी० वी० वैद्य—हिस्ट्री ऑफ मिडिवियल हिन्दू इण्डिया
जिल्द ३, पृष्ट १४८।

(२) आविन्ध्यादाहिमाद्रे र्विरचितविजयस्तीर्थयात्राप्रसङ्गात् ।
उग्रीवेषु प्रहर्ता नृपतिषु विनमत्कन्धरेषु प्रसन्नः ॥
आर्यावर्त्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान् म्लेच्छविच्छेदनाभिः ।
देव शाकम्भरीन्द्रो जगति विजयते वीसलो क्षोणिपालः ॥
ब्रूते सम्प्रति चाहमानतिलको शाकम्भरीभूपतिः ।
श्रीमद्विग्रहराज एष विजयी सन्तानजानात्मजान् ॥
अस्माभिः करदं व्यधायि हिमवद्विन्ध्यान्तरालं भुवः ।
शेष स्वीकरणाय मास्तु भवतामुद्योगशून्यं मनः ॥
ई० ए० जि० १९ पृष्ठ २१८।

बात बिजोल्या के शिलालेख से भी सिद्ध होती है[1]। बीसल्देव केवल वीर विजेता ही नहीं था, वह धार के यशस्वी परमार राजा भोज की भाँति स्वयम विद्वान् था और विद्वानों का आश्रयदाता था। उसने स्वयम् हरकेलिनाटक नामक ग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ ईस्वी सन् ११५३ के लग भग समाप्त हुआ था। उसके राजकवि सोमदेव ने ललित विग्रहराज नामक नाटक लिखा था, और उसका नायक अपने स्वामी विग्रहराज को ही बनाया था। इन दोनों ग्रन्थों को श्वेत पत्थर के खण्डों पर लिखवाकर संस्कृत विद्यालय की दीवारों में लगाया गया था, जो बीसल देव ने ही स्थापित किया था। यह विद्यालय बीसल्देव के विद्याप्रेम तथा कलाप्रेम को प्रकट करता है। इसको मुहम्मद गोरी ने मस्जिद के रूप में परिवर्तित कर दिया है, जो अब ढाई दिन के झोंपड़े के नाम से प्रसिद्ध है। बीसलदेव ने अपने पिता आना की भाँति बीसला या बीसल्सर नामक एक तालाब भी बनवाया था।

**पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी**— बीसल्देव के बाद उसका भतीजा पृथ्वीराज द्वितीय राजा हुआ। उसके कुछ वर्ष राज्य करने के बाद बीसल्देव का छोटा भाई सोमेश्वर गद्दी पर बैठा। सम्वत् १२२६ ( ११७० ई० ) में जब बिजोल्या का शिलालेख उत्कीर्ण किया गया था तो सोमेश्वर जीवित था। सोमेश्वर के बाद उसका पुत्र पृथ्वीराज तृतीय या राय पिथौरा राजसिंहासन पर बैठा। यह शहाबुद्दीन गोरी के साथ लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। इसके बाद चौहाणों के हाथ से भारतवर्ष का राज्य जाता रहा। फिर भी उनकी शाखायें जहाँ

---

( १ ) प्रतोल्याँ च बलभ्यां च येन विश्रामितं यशः।
ढिल्लिकाग्रहणश्रान्तमाशिकालाभलम्भितः॥
ए. एस. जे. बी. जि० ५५ पृष्ट ४१–४३॥

तहाँ छोटे छोटे प्रदेशों पर राज्य कर रही हैं और चौहाण क्षत्रिय लाखों की संख्या में इस समय भारतवर्ष में मिलते हैं।

**हरराज या हाड़ाराव से हाड़ावंश**—ऊपर लिखा जा चुका है कि महाराज वाक्पति के छोटे भाई लक्ष्मण ने सम्वत् १००० (सन् ९४३) के लगभग एक अलग छोटासा राज्य स्थापित करके नाडोल में अपनी राजधानी स्थापित की। नाडोल में चौहाणों की इस शाखा ने लगभग २०० वर्ष तक राज्य किया। तदुपरान्त जब कुतुबुद्दीन ने नाडोल छीन लिया तो चौहाण लोग भीनमाल और साँचोर में जाबसे[1]। इसके पश्चात् इन्होंने पवाँर राजपूतों से जालोर का क़िला छीन लिया। इस वंश में देवराज नामक एक प्रतापी वीर हुआ जिसके बाद ये लोग देवरा चौहाण कहलाने लगे। इन्होंने परमार राजाओं से सिरोही छीन कर वहां अपना राज्य स्थापित किया[2]। जब नाडोल के चौहाण कुतुबुद्दीन से हारकर भीनमाल में गये उसी समय उस वंश के माणिकराय द्वितीय नामक वीर ने मेवाड़ के दक्षिण पूर्व भाग में अपना राज्य स्थापित किया, और बम्बावदा अपनी राजधानी बनाया। माणिकराय से छटी पीढ़ी में हरराज या हाड़ो राव नामक एक बड़ा प्रतापी वीर उत्पन्न हुआ, जिसके वंशज हाड़ा कहलाने लगे[3]।

(१) इम्पीरियल गजीटियर ऑफ इण्डिया, राजपूताना, पृष्ठ २१८।
(२) उपरोक्त।
(३) नाडोल, अचलगढ़ और मैनाल के शिलालेख,

# बून्दी राज्य की स्थापना

**बम्बावदे में हाड़ा राज्य**—हरराज या रावहाड़ा के पीछे कुछ पीढ़ी तक हाड़ा राजपूत बम्बावदे में राज्य करते रहे। इस वंश में बङ्गदेव का पुत्र कँवर देवसिंह बड़ा वीर और साहसी हुआ। उसने हाड़ा राज्य का विस्तार किया और बूँदी नगर दूसरी राजधानी बनाया।

**बून्दी के जेता मीणा का विवाह प्रस्ताव**—उस समय बूँदी और उसके आस पास के प्रदेश पर मीणों का राज्य था, जिनका मुखिया जेता बहुत शक्तिशाली था और चाहता था कि अपने पुत्रों के विवाह राजपूत कन्याओं के साथ हों। जेता के राज्य की सीमा बम्बावदा के राज्य की सीमा से मिली हुई थी। अनुकूल अवसर पाकर कभी हाड़े और कभी मीणे अपने राज्य की सीमा को बढ़ा लिया करते थे। जेता के समय में मीणों की शक्ति खूब बढ़ चुकी थी और उसने यह प्रस्ताव करने का भी साहस किया था कि अपने लड़कों के साथ कँवर देवसिंह की पुत्रियों का विवाह हो। इस प्रकार का सम्बन्ध होजाना उस समय कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, क्योंकि जो भूमि का स्वामी होता था वही क्षत्रिय कहलाने लगता था और कभी कभी ऐसे लोगों का राजपूतों के साथ सम्बन्ध होजाया करता था। देवसिंह ने जेता से कहलाया कि यदि मीणे अपनी हीन प्रथाओं को त्याग कर राजपूतों की संस्कृति को ग्रहण करलें तो उसके पुत्रों के साथ भाई जसकरण की पुत्रियों का सम्बन्ध किया जा सकता है[१]। जेता ने इस प्रस्ताव को

---

(१) वंशभास्कर, द्वितीय भाग, पृष्ठ १६२१।

सहर्ष स्वीकार किया और मानों काल से प्रेरित होकर देवसिंह की सब शर्तों को मान कर लेख लिख दिया।

**मीणों के साथ देवसिंह का विश्वासघात**—विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। ऊमरथूण नामक गाँव में मण्डप सजाया गया और दो लड़कियों को साथ लेकर राजकुमार देवसिंह वहाँ आया। अपनी छोटी स्त्री मदनावती को भी उसने वहीं बुलालिया; परन्तु गंगदेव को इन सब तैयारियों का पता तक नहीं था। मीणों की बारात के स्वागत के लिये एक बाड़ा तैयार करवाया गया और उसके नीचे बारूद बिछवा दिया गया। ज्योंही मीणों की बारात बाड़े में पहुँची, चुपके से बारूद में आग लगादी गई, जिससे अधिकांश मीणे जल मरे, और जो बचे उनको तलवार के घाट उतार दिया गया[1]। इस प्रकार शत्रुओं को धोखा देकर मारना शायद चौहाण राजपूतों की युद्ध-युक्ति रही हो क्योंकि कहा जाता है कि भीलों से कोटा, और मीणों से सिरोही भी इसी प्रकार ली गई थी परन्तु इन कथाओं को ऐतिहासिक घटनायें मानने में सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि उस समय अर्थात् तेरहवीं शताब्दी के मध्य में बारूद का प्रयोग भारतवर्ष में जारी नहीं होपाया था। इतिहासज्ञों का मत है कि भारतवर्ष में बारुद का प्रथम प्रयोग सम्वत् १५८४ (१५२७ ई०) में कनवाह के रणक्षेत्र में महाराणा साँगा से युद्ध करते हुए बाबर ने किया था और महारांणा साँगा जैसे वीर योद्धा और शक्तिशाली नरेश के पराजय का मुख्य कारण बाबर की वीरता या उसका रिसाला न था बल्कि उसका नवीन आविष्कार अर्थात् बारूद का प्रयोग था। चौहाणों के विजय की उपरोक्त कथायें बहुत करके अक्षरशः सत्य प्रतीत नहीं होतीं; तो भी उनमें इतना सत्यांश अवश्य है कि वीरता

(१) वंशभास्कार, द्वितीय भाग पृष्ठ १६२४।

के साथ ही छल, बल या कौशल का प्रयोग करना चौहाण अनुचित युद्धनीति नहीं मानते थे।

**बून्दी पर देवसिंह का अधिकार और राज्य विस्तार**—इस प्रकार मीणों को मार कर कँवर देवसिंह ने बून्दी में प्रवेश किया और आषाढ़ कृष्णा नवमी सम्वत् १२९८ (ई० सन् १२४१) को बूँदी में अपना अधिकार स्थापित किया[1]। तदनन्तर देवसिंह ने गौड़ सरदार गजमल से खटपुर, मनोहरदास से पाटन, गौड़ों से गैणोली और लाखेरी, और उसके बाद जसकरण से करवर के परगने दबा कर बूँदी राज्य को विस्तृत किया। अपने पिता गंगदेव के प्रति भक्ति प्रकट करने के लिये देवसिंह ने ऊमरथूण से पूर्व की ओर गंगेश्वरी देवी का मंदिर बनवाया और वहाँ पर एक बावड़ी का निर्माण करवाया[2]।

**उसने शाही सेना को हराया**—इसी अर्से में देवसिंह को दिल्ली के बादशाह की सेना का भी सामना करना पड़ा। नासिरुद्दीन महमूद की सेना मुस्तफाअली नामक सेनापति के नेतृत्व में बम्बावदे की ओर से कूँच करके लाखेरी के पास ठहरी हुई थी। वहाँ पर उन्होंने गौवध किया, जिससे क्रुद्ध होकर देवसिंह ने उस पर आक्रमण किया और मुसलमानों को मारकर विजय प्राप्त की[3]।

---

(१) गज नव बारह अब्द गत, सक विक्रम् सम्बन्ध।
दिन नवमी आषाढ़ बदि, मीणाँ तोड़ि मदन्ध ॥
मारि सकल इमि पाइ मधु, राखि सनातन राह।
धकि लीधी बूँदी धरा, देवै कँवर दुबाह ॥
वंशभास्कर, द्वितीय भाग, पृष्ठ १६२६—२७

(२) उपरोक्त पृष्ठ १६२६—२७।

(३) उपरोक्त पृष्ठ १६२६।
नासिरुद्दीन सन् १२४६ में गद्दी पर बैठा था अतः यह सेना रजिया बेगम के उन अयोग्य भाइयों में से किसी की होगी जो नासिरुद्दीन से पूर्व थोड़े थोड़े समय के लिये गद्दी पर बैठे थे।

**उसका देहान्त**—देवसिंह ने बून्दी में अपने पिता को बुलाया और बड़ी धूम के साथ उनका स्वागत करके कुछ दिन ठहरा कर विदा किया। इसके कुछ ही समय बाद गंगदेव का देहान्त हुआ तो देवसिंह ने वंशक्रमानुगत राज्य भी बूँदी में मिला लिया[1]। इस प्रकार अपने बाहुबल से विस्तृत राज्य स्थापित करके तथा अनेक प्रबल शत्रुओं के पराजय से अपनी कुल कीर्त्ति बढ़ा कर वैशाख शुक्ला ९ सम्वत् १३०० को अपने ज्येष्ठ पुत्र समरसिंह का अभिषेक करके देवसिंह ने संन्यास धारण किया[2]।

**समरसी**—राव देवा का पुत्र समरसिंह सम्वत् १३०० (सन् १२४३) में गद्दी पर बैठा। इस समय हाड़ों का राज्य चम्बल नदी के बायें किनारे तक फैल चुका था।

**भीलों का राज्य**—दाहिने किनारे पर अकेलगढ़ (कोटे से लगभग ५ मील दक्षिण-पश्चिम) में भीलों की राजधानी थी और आस-पास के प्रदेश पर भीलों का राज्य था। अकेलगढ़ से दक्षिणपूर्व मुकन्दरा पर्वत की श्रेणियों के साथ साथ भील लोग मनोहरथाने तक फैले हुए थे। कई जगह इन्होंने छोटे छोटे राज्य जमा रक्खे थे, परन्तु इनकी संस्कृति उन्नत नहीं थी। अकेलगढ़ की दीवार के खँडहरों से पता लगता है कि ये लोग बहुत साधारण किले बनाकर उनमें रहा करते थे और अधिक से अधिक बीस पच्चीस मील के घेरे पर राज्य करते होंगे।

**कोटा नगर पर बून्दी का अधिकार और राज्य विस्तार**—जब हाड़ों की राजधानी बून्दी में जमी और उनके राज्य की सीमा चम्बल तक आ पहुँची तो ये लोग उपद्रव करने लगे और बून्दी राज्य

---

(१) वंशभास्कर, द्वितीय भाग, पृष्ठ १६३७।
(२) उपरोक्त, पृष्ठ १६३७।
टॉड—राजस्थान, जिल्द २ पृष्ठ ५०५।

की शान्ति को भंग करने लगे। इसलिये समरसी को चम्बल पार करके इन लोगों को दबाना पड़ा। वह भीलों का दमन करके ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने अपने राज्य को और भी विस्तृत करने के लिये कैथून, सीसवाली, बड़ौद, रैलावन, रामगढ़, मऊ, और साँगोद आदि स्थान गौड़, पवाँर, तथा मेद आदि राजपूतों से छीन कर अपने राज्य में मिला लिये। इन लोगों को समरसी ने निर्मूल नहीं किया। केवल अपना आधिपत्य स्वीकार करवाकर उनको पुनः अपने पद पर स्थापित कर दिया।

**कोट्या भील को मार कर कोटा नगर बसाया**—अकेलगढ़ के पास कोट्या नामक भील से समरसी का भारी युद्ध हुआ जिसमें भीलों के ९०० और हाड़ों के ३०० सिपाही मारे गये। कोट्या रण से भाग कर अपने प्राणों की रक्षा करने के लिये कहीं छिप गया[1]।

---

(१) समर सिंह नरनाह तबहि, चम्मल द्रुत उत्तार।
चंड विरचि चतुरंग सवर तिस्त्र हँस रन संहार॥
किय निर्भय केथोनि सीसवालिय बड़ोद सह।
रहलावनि रामगढ़ मऊ सांगोद दयो मह॥
रच्छक अजेय तहँ रक्खिकैं महि अधीस पच्छो मुरत।
पुनि सवर रुक्कि चम्मल पुलिन आनि जुरे खिल अंकुरित॥
पिक्खि अलप परिकर नृपहिं, इम खिल भिल्लन आइ।
कोटा जहँ तहँ जंग किय, नदि चम्मलि नियराइ॥
बुँदीसन पृतना बहुरि, पहुँचि महीपति पास।
किय निर्भय हय बीचि करि, नवसत भिल्लन बास॥
कोटा जहँ स्वपल्ली करि, कौटिक नाम किरात।
रहतो सो भजिगो दुरित, गहन दुरावत गात॥
संभर के भट तीन सत, खंड खंड हुव खेत।
पुर बुंदिय इम समरहु, आयो विजय उपेत॥
वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ १६७८—७९

इस प्रकार विजयी होकर बूँदी पहुँचने के पश्चात् समरसी ने अपने तृतीय पुत्र जेतसी का विवाह कैथून के तँवर सरदार की पुत्री से कर दिया। जब जेतसी अपनी सखुराल में ठहरा हुआ था तो अकेलगढ़ के भीलों का उच्छेद करके उसने अपने लिये एक छोटा सा राज्य अलग स्थापित करने की योजना की। अपने श्वसुर की अनुमति से और पिता की सहायता से उसने भीलों का नाश किया। इनको नष्ट करने में जेतसी ने उन्हीं उपायों का प्रयोग किया, जिनके द्वारा देवसिंह ने मीणों से बूँदी छीनी थी। एक बाड़ा बनवाकर उसके नीचे सुरंग में बारूद भराया गया। भीलों को दावत के लिये निमन्त्रित करके उसमें बिठाया गया, उनको खूब मद्यपान करवाया गया और फिर अनुकूल अवसर पाकर सुरंग में आग लगादी गई। बहुत से भील इसमें जल मरे, शेष अपने मुखिया कोट्या सहित लड़ते हुए वीर गति को प्राप्त हुए। इस युद्ध में जेतसिंह के पक्ष में सैलारखाँ नामक पठान भीलों के विरुद्ध लड़ता हुआ मारा गया। इस प्रकार सम्वत् १३२१ (१२७४ ई०) में अकेलगढ़ के भीलों को मार कर जेतसिंह ने कोटा नगर पर अधिकार किया, और सैलारखाँ नामक पठान की स्मृति में सैलारगाजी का दरवाजा बनवाया[१]। इसके बाद कोटे का परगना बूँदी के राजकुमार की जागीर में रहने लगा।

**समरसी की वीरगति की कहानी**—सूरजमल लिखता है कि जब अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ को घेर लिया तो महाराणा की विपत्ति से लाभ उठा कर समरसी ने माँडलगढ़ का किला छीन लिया[२]।

(१) ठाकुर लक्ष्मणदान—कोटा राज्य का इतिहास।
वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ १६७९।
टॉड—राजस्थान, द्वितीय भाग, पृष्ठ ५०६।

(२) वंशभास्कर, तृतीय, भाग, पृष्ठ १६८१।

परन्तु वह उसको अधिक समय तक अपने अधिकार में नहीं रख सका, क्योंकि अलाउद्दीन ने शीघ्र ही अपनी सेना का एक हिस्सा भेज कर उसको वापिस लेलिया[1]। इतना ही नहीं अलाउद्दीन की सेना ने बम्बावदे को भी घेर लिया। समरसी और उसके भाई हरराज ने बहुत समय तक अपने पैतृक दुर्ग की रक्षा की, परन्तु अन्त में लड़ते हुये दोनों वीरगति को प्राप्त हुए[2]।

**नापूजी, जैत्रसिंह की वीरगति**—समरसी के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र नापूजी ( नरपाल ) बूँदी के सिंहासन पर बैठा, और जैतसिंह कोटे में राज्य करता रहा[3]। जैतसिंह छोटे भाई की हैसियत से राजपूतों की वंशप्रथा के अनुकूल अपने बड़े भाई की सेवा करता था। जब नापू ने टोडा के सोलंकी सरदार रोपाल के साथ युद्ध किया तो जैतसिंह उसमें लड़ता हुआ मारा गया था[4]। अपने पिता की भाँति नापू ने भी चम्बल के दाहिने तट की ओर अपना राज्य बढ़ाया। उसने पहिले पलायथे के महेशदास खींची पर चढ़ाई की। प्रथम बार नापूजी हार गया, परन्तु दूसरी बार की चढ़ाई में महेशदास ने रणक्षेत्र से भाग कर

---

(१) वंशभास्कर, तृतीय भाग पृष्ठ १७०२।

(२) उपरोक्त, पृष्ठ १७०५।
यह बादशाह अलाउद्दीन नहीं हो सकता। बलबन होगा।

(३) तब नरपाल सज्जि दल सत्वर,
प्रथम चढ्यो खिच्चिय महेस पर।
कोटा पुरहिं प्रपात किय,
द्रुत तँहँ बन्धु जुगहि उपदा दिय।
वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ १७१४।

(४) उपरोक्त, पृष्ठ १७१४।

अपने प्राणों की रक्षा की और नापूजी ने उसके भाई पहाड़सिंह को मार कर पलायथे के किले पर अपना अधिकार जमाया।

**पलायथा विजय**—( सम्वत् १३४०–५० ) पलायथे के युद्ध में नापूजी के १०० और पहाड़सिंह के ७० सैनिक मारे गये। ज्योंही दुर्ग नापूजी के हस्तगत हुआ त्योंही उसकी रक्षा के निमित्त वहाँ ८०० सैनिक नियत कर दिये गये और फिर महेशदास के साथ युद्ध जारी रक्खा, जिसमें वह हारकर भाग गया। इस युद्ध में नापूजी के पुत्र हल्लू ने बड़ी वीरता दिखाई[1]। इस युद्ध का वंशभास्कर में कोई समय नहीं दिया हुआ है। समरसी का देहावसान अलाउद्दीन (?) से लड़ते हुये सम्वत् १३६१ के लगभग हुआ था। अतः नापूजी उसी वर्ष गद्दी

---

(१) पुर लुट्टि हल्ल करि अरर पारि,
चऊ अट्ट दुर्ग प्रविसे प्रचारि॥
हों तँहँ महेस बन्धुव पहार,
सम्मुह हुव गिनि ध्रुव मरन सार॥
संहारत इतके भटन सूर,
पहुँच्यो हि नप्प ढिंग दप्प पूर॥
असि झारिय भूपति अंस आई,
करि फलक दियसु मुक्कल चुकाई॥
दूजी सिर दिन्नी सिर कराल,
कटि पग्घ गई अंगुल कपाल॥
हल्लू तब जुब्झत अग्ग होई,
दै असि पहार किय खण्ड दोइ॥
सतइक्क परे इतके सिपाह,
उतके मृत सत्तरि रंग राह॥
पुर इमसु पल्हायथ प्रथम पाइ,
सत अट्ठ सुभट तँहँ धरि सहाइ॥

वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ १७२७ तथा १७८७।

पर बैठा होगा, और इसके एक दो वर्ष बाद पलायथे को उसने जीता होगा; एवम् पलायथा विजय का समय सम्वत् १३६१ और १३६३ अर्थात् ईस्वी सन् की चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में होना चाहिये।

**हल्लू का सीसवाली विजय**—नापू के बाद हम्मीरसिंह और उसके बाद बरसिंह गद्दी पर बैठे, परन्तु दोनों ने थोड़े ही समय राज्य किया और फिर हल्लू को राजसिंहासन मिला। ऐसा जान पड़ता है कि उसके समय में सीसवाली के नवाधिकृत सामन्त ने स्वतन्त्र होने की चेष्टा की थी। इसलिये हल्लू ने उस पर चढ़ाई की और पुनः अपने अधीन किया[1]।

**पैतृक भूमि की पुनः प्राप्ति के लिए युद्ध**—इस समय बूँदी को अपने राज्य में दो तरफ शान्ति स्थापित करने की तथा शत्रुओं के आक्रमणों को रोकने की चिन्ता थी। सीसवाली, बड़ोद, रामगढ़, कैथून, पलायथा, आदि स्थान अभी कुछ ही वर्ष पहिले हाड़ों के राज्य में सम्मिलित किये गये थे। यहां के अधिकृत राजपूत सामन्त अपनी पराजय-वेदना को अभी भूले नहीं थे, और अवसर पाकर स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के लिए चेष्टा किया करते थे। उधर बम्बावदे पर चित्तौड़ का दाँत लगा हुआ था। अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद उसका साम्राज्य नष्ट हो चुका था, और मेवाड़ के महाराणा अपनी पराजय को भुलाकर स्वतन्त्र ही नहीं हो गये थे; किन्तु राज्य विस्तार करने की भी चिन्ता करने लगे थे। अतः मेवाड़ ने बम्बावदा और माँडलगढ़ पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। हाड़ा इन नगरों को अपनी पैतृक भूमि समझते थे। अतः उनकी पुनः प्राप्ति के लिये उन्होंने मेवाड़ से निरन्तर युद्ध

---

(१) वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ट १७८७।

तेरहम सीसवालिय सहर किय बुन्दियबस जित्तिक्रम।

करना जारी किया। इन युद्धों में बम्बावदा और माँडलगढ़ कभी हाड़ों के अधिकार में होते थे, कभी मेवाड़ के।

**कोटे की गद्दी पर सुर्जन**—जैतसिंह के पश्चात् उसका लड़का सुर्जन कोटे में राज्य करने लगा। उसके पुत्र धीरदेह ने कोटे के आस-पास बारह तालाब बनवाये। इनमें से ग्यारह तालाब अब भी वर्त्तमान हैं:— बडा तालाब, कोठी तालके का तालाब, अभेड़ा, कन्सुआँ का तालाब, रायपुरे का तालाब, तेखड़े का तालाब, राजपुरे का तालाब, भांडाहेड़ा का तालाब, मोवासे का तालाब, ल्हसोड़्या का तालाब, अरण्डखेड़े का तालाब। एक तालाब श्रीपुरे में था, जो शायद अब भरगया है। धीरदेह के समय में कोटा कैथूनीपोल के अन्दर ही बसा हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि जब शहर का विस्तार होने लगा तो यह तालाब भरदिया गया। इन बारह तालाबों का निर्माण सम्वत् १४०३ (ई० सन् १३४६) में करवाया गया था[१]।

**कोटा और बूँदी पर मुसलमानों का अधिकार**—इसी वंश में पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में जेतावत राय हुआ। इसके पश्चात् उस का ज्येष्ठ पुत्र बीरम गद्दी पर बैठा। यह प्रायः बूँदी की नौकरी में रहा करता था और कोटे की रक्षा के निमित्त अपने छोटे भाई कन्ह को छोड़ जाया करता था। यह भी सुस्त और प्रमादी था। अतः अवसर पाकर सम्वत् १६०३ (ई० सन् १५४६) में केसरखाँ और डोकर-खाँ नामक दो पठान सैनिकों ने तलवार के बल से कोटा छीन लिया। बीरम की स्त्री अपने पिता के पास कैथून चली गई[२] और कोटे में मुसलमानों का राज्य स्थापित होगया। लगभग इसी समय बूँदी की

(१) i ठाकुर लक्ष्मण दान
ii टॉड—राजस्थान, जिल्द २, पृष्ट ५०६, नोट।
(२) ठाकुर लक्ष्मणदान।

स्थिति भी डाँवाडोल सी थी। तीन चार पीढ़ी से राज्य पर निरन्तर संकट आते रहे थे। सम्वत् १५२० (सन् १४६३) के लगभग बूँदी की गद्दी पर बीरू राज्य करता था। वह बहुत निर्बल तथा अयोग्य शासक था। इस स्थिति को देखकर मालवा के सुलतान ने बूँदी पर आक्रमण किया, और लूट मार करके दो बालक राजकुमारों को अपने साथ लेगया और मुसलमान बनालिया। अब इनका नाम समरकंदी और उमरकंदी रखा गया। बीरू के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र बन्दो राजसिंहासन पर बैठा। अपनी दानशीलता के कारण उसका नाम बूँदी के राजवंश में अमर है, परन्तु वह अधिक समय तक राजोपभोग नहीं कर सका। समरकन्दी और उमरकन्दी ने मालवा के सुलतान की सैनिक सहायता से बूँदी पर आक्रमण किया और उसको छीन लिया। बन्दो ने राजभ्रष्ट होकर अपने दिन बड़े दुःख में बिताये। उसका देहान्त सम्वत् १५६० के लगभग हुआ होगा।

**बूँदी पर पुनः हाड़ों का अधिकार**—बन्दो का ज्येष्ठ पुत्र नारायण दास वीर और पराक्रमी था। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् इस ने अपने धर्मभ्रष्ट काकाओं से बूँदी वापिस छीन ली, और इतना शक्तिशाली बनगया कि जब मालवा के सुलतान ने उदयपुर पर चढ़ाई की तो उसने महाराणा को सहायता दी। यह दो बार महाराणा साँगा से मिलने गया था और उसका बड़ा मित्र था[1]। कन्वाह के नाशकारी युद्ध में यह साँगा के पक्ष में बाबर के विरुद्ध लड़ा था[2]।

**पुनः मुसलमानों का आक्रमण**—नारायणदास का पुत्र सूर्यमल्ल अयोग्य तो नहीं था, परन्तु अदूरदर्शी था। सम्भवतः रणथम्भौर

(१) वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २०२९।

(२) उपरोक्त, पृष्ठ २०६५।

के कारण सूर्यमल्ल और महाराणा उदयपुर में मनोमालिन्य होगया। दोनों पक्षों में एक युद्ध हुआ, जिसमें दोनों ही नरेश मारे गये[1]। सूर्यमल्ल के पश्चात् बूँदी पर पुनः संकट आया। इसका ज्येष्ठ पुत्र सुलतानसिंह जो सम्वत् १५८८ (ई० सन् १५३१) में गद्दी पर बैठा, बहुत अयोग्य और निर्बल था। इसी समय केसरखाँ और डोकरखाँ कोटे का राज्य हाड़ों से छीन चुके थे। इस गड़बड़ से लाभ उठाकर रायमल खींची ने सीसवाली और बड़ोद के आसपास के परगने दबा लिये थे। सुलतानसिंह इस योग्य नहीं था कि कोटे की सहायता करे। वह स्वयम् विपत्ति में ग्रस्त था। बूँदी और कोटे की ऐसी दुर्व्यवस्था देख कर मालवे के सुलतान ने बूँदी पर आक्रमण किया। यह नगर पहिले ही दो बार मालवा के सुलतानों द्वारा लूटा जा चुका था। हाड़ा लोगों को विश्वास होगया था कि मुसलमानों की शक्ति दुर्धर्ष है; फिर भी अपनी पैतृक भूमि की रक्षा के निमित्त वे लोग लड़ने को तैयार हुये। परन्तु लड़ते किसके नेतृत्व में? सुलतानसिंह भयभीत होकर भाग गया और रायमल खींची की उसने शरण ली[2]। फिर भी वीर हाड़ों ने बूँदी को मुसलमानों के हाथों में जाने से बचाया और सुलतानसिंह के ज्येष्ठ पुत्र अर्जुन को गद्दी पर बैठाया। सुलतानसिंह ने अपना शेष जीवन रायमल खींची की शरण में बिताया और सुलतानपुर नामक एक छोटा सा गाँव बसाकर वहाँ रहता रहा। ऐसी अवस्था में कोटे की रक्षा कौन करता? बेचारा राजभ्रष्ट बीरम इधर उधर मारा मारा फिरता था

---

(१) महता नैणसी री ख्यात।
वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २१८५ में दिया हुआ सूर्यमल्ल की मृत्यु का कारण विश्वासनीय नहीं है।

(२) वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २२०१
टॉड-राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५१५।

और उसकी धर्मपत्नी कैथून में अपने पिता के पास दिन काट रही थी। केसरखां और डोकरखां निरंकुशरूपेण कोटे में राज्य कर रहे थे।

**एक कल्पित कहानी**--कर्नल जेम्स टॉड ने इन दोनों पठानों से कोटा वापस छीनने की बड़ी मनोरंजक कहानी लिखी है। कैथून में बैठी हुई बीरम[1] की रानी को अहर्निश अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने की चिन्ता बनी रहती थी। जब होली का त्यौहार निकट आया तो उसने एक युक्ति सोची। केसरखां और डोकरखां को उसने कहला भेजा कि मैं अपनी युवती दासियों के साथ आपसे होली खेलने के लिये कोटा आना चाहती हूँ। इस बात को सुनकर विलासी पठान फूले न समाये। इधर बीरम की रानी ने तैयारी की। ३०० राजपूत युवकों को डोलों में बिठाया और बीरम को भी शस्त्रास्त्रों से सज्जित करके प्रधान मयाने में बिठाकर कोटे के लिये विदा किया। पठान समझे कि बीरम की रानी अपनी दासियों सहित होली खेलने के लिये आगई। सब डोले महल में घुसा लिये गये, परन्तु ज्योंही केसरखां उनका स्वागत करने के लिये महल में घुसा कि बीरम के नेतृत्व में सब सैनिक उस पर टूट पड़े और उसको मार डाला। इस प्रकार राजमहल पर अधिकार स्थापित कर लिया और कोटा पुनः हाड़ों के हाथ में आगया। बीरम के बाद उसका पुत्र डूँगरसिंह कोटे की गद्दी पर बैठा, जिसको हटा कर राव सूरजमल ने कोटा बूँदी राज्य में मिला लिया[2]।

**यह पद्मिनी की कहानी से मिलती है**--उपरोक्त कहानी कपोल कल्पित मालूम होती है। जो पठान इतने वीर और

---

(१) टॉड के अनुकूल इसका नाम भोनंग था, परन्तु ठाकुर लक्ष्मणदान बीरम लिखता है।

(२) टॉड-राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५०६, नोट २।

चतुर थे कि उन्होंने कई पीढ़ियों से जमे हुए राजवंश के हाथ से कोटा छीन लिया, वे रानी के भुलावे में नहीं पड़ सकते थे। उनको यह कैसे विश्वास हो सकता था कि एक राजपूत महिला स्वतः ही पठानों के साथ होली खेलने पर तैयार हो जायगी। यदि वास्तव में ऐसा कहलाया गया होता तो रानी की वास्तविक युक्ति छिपी भी नहीं रह सकती थी। जब ३०० सैनिक मयानों में छिपा कर महलों में घुसाये गये थे तो यह बात सैकड़ों स्त्री पुरुषों को याद होगी। ऐसी अवस्था में हिन्दुओं से और विशेषकर राजपूतों से यह आशा नहीं की जाती कि यह बात छिपी रहे। इसके अतिरिक्त जब चारों ओर के इलाके पर और गढ़ पर पठानों का राज्य था तो तीन सौ राजपूत धोखे से गढ़ में घुस जाने के बाद जीवित भी कैसे निकल सकते थे? ऐसा प्रतीत होता है कि यह कथा उन भाट लोगों की गढ़ी हुई है, जो पुराने इतिहास को तो भूल चुके थे, परन्तु साथ ही केसरखां के मकबरे को नहीं भुला सकते थे, और हाड़ों ने उससे कोटा वापिस कैसे छीना, इसका भी कोई रोचक कारण बतलाना चाहते थे। प्रत्यक्ष ही मालूम होता है कि इस कथा की रचना पद्मिनी की कहानी को सामने रख कर की गई है, जो राजपूतों के इतिहास में ऐतिहासिक बन चुकी है। पन्द्रहवीं शताब्दी में मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत की रचना की, जिसमें उसने अलाउद्दीन के पद्मिनी पर मोहित होने, दर्पण में उसके दर्शन करने और फिर रतनसेन पर पद्मिनी के सती होने की कथा लिखी। बेचारे कवि ने अन्त में लिख दिया कि यह इतिहास नहीं है और पद्मावती आदि सब कल्पित व्यक्ति हैं, परन्तु भाटों ने कहानी की रोचकता पर मुग्ध होकर उसको इतिहास बना दिया। फिर क्या था, फरिश्ता आदि मुसलमान लेखकों ने भी उसका अपने इतिहासों में समावेश कर दिया।

यद्यपि वर्त्तमान ऐतिहासिक शोध से सिद्ध होगया है कि यह केवल उपन्यास है, तो भी कलकत्ते की काली कोठरी की कहानी की भाँति यह कहानी भी दुहराई जा रही है[१]।

**राव सुर्जन ने पठानों से कोटा छीन लिया**——वास्तव में कोटा पुनः हाड़ों के हाथ में आसानी से नहीं आगया था। इसके लिये बड़ी तैयारी करनी पड़ी थी और दोनों पक्षों ने घोर युद्ध किया था। सोलहवीं शताब्दी के मध्य में बूँदी के राज्य वंश में राव सुर्जन बड़ा प्रतापी हुआ। इसने विलीन प्रतिष्ठा और मर्यादा फिर स्थापित की, और बूँदी राज्य को उन्नत तथा विस्तृत किया। इस समय मालवा के सुल्तानों के आक्रमणों का भय इसलिये नहीं रहा था कि अकबर का जनरल आदमखाँ बाजबहादुर को सन् १५६० में हरा चुका था और मालवा मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया था[२]। फिर भी बूँदी राज्य निष्कण्टक नहीं होने पाया था। कोटा और उसके पास के परगने केसरखां और डोकरखां नामक पठानों के हाथ में थे। कोटे से उत्तर का भाग रायमल खींची ने अपने कब्जे में कर लिया था। सुलतानपुर में सुल्तानसिंह अपने दिन बिता रहे थे। रामगढ़, पलायथा आदि परगने भी अवश्य बूँदी से अलग होगये होंगे। अतः इस सम्पूर्ण प्रदेश को पुनः अधिकृत करने के लिये राव सुर्जन ने एक विपुल सेना तैयार की। इस सेना में उसके लगभग २० जागीरदार भाई और कितने ही अन्य राजपूत सरदार शामिल थे[3]। उधर केसरखां और डोकरखां ने भी सामना करने के लिये सेना सजी। उधर से राव सुर्जन ने और इधर से दोनों पठान भाइयों ने अपनी अपनी सेनायें संचालित कीं। भदाना

(१) वि. ए. स्मिथ—अकबर दी ग्रेट मुगल पृष्ठ ५०।
(२) बदायोनी—अनुवाद रैंकिंग, पृष्ठ ५५७–६३।
(३) वंशभास्कर तृतीय भाग पृष्ठ २२३६।

नामक गाँव से २ मील पूर्व की ओर दोनों सेनाओं में मुठ भेड़ हुई[१]। राव सुर्जन के सेनापति भाई मानसिंह ने केसरखां पर धावा किया और उसका सिर काट डाला। भाई के बध से उत्तेजित होकर डोकरखां ने मानसिंह पर घोर आक्रमण किया और उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। कहते हैं कि सिर कटजाने पर भी मानसिंह कुछ क्षण के लिये लड़ता रहा[२]। तब गनौली का जागीरदार रामसिंह मानसिंह की अप्रतिम वीरता की प्रशंसा करता हुआ डोकरखां पर झपटा और घमासान युद्ध होने लगा[३]। डोकरखां का भतीजा मेहराबखां बड़ी वीरता के साथ लड़ा[४]। एक हाड़ा वीर ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया तो रुण्ड लड़ता रहा। तब बलकर्ण नामक राजपूत योद्धा ने उसके रुण्ड के दो टुकड़े किये[५]। इसके बाद युद्ध और भी भयंकर रूप से होने लगा। गुलामनबी नामक मुसल्मान ने तक कर दो बाण राव सुर्जन के मारे और पठान वीर प्राणों का लोभ तज कर अपूर्व साहस और उत्साह के साथ लड़ने लगे। इस हमले में गुलामनबी और रहीम नामक दो मुसलमान वीर मारे गये। तीन मुख्य मुसलमान सैनिकों के मारे जाने से पठानों के पैर छूट गये, और वे रणक्षेत्र को छोड़ कर कोटा नगर की

---

(१) वंशभास्कर, तृतीय भाग, २२३७।

(२) भिरि सीस हीन हुमान कछु खिन भान ज्यों हनतो भयो।
वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २२३८।

(३) गैनोलि शासक रामसाहि सराहि डागर पै गयो॥
दुव बीर जुतरहि देख के झटके परस्पर दे झरे।
वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २२३८।

(४) मेहराब मिच्छ भतीज ह्वां बढ़ि घोर संगर मंडयो।
वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २२३८।

(५) बलकीर्ण तहँ तस बन्धु काय कबध को सुद्विधा करयो।
वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २२३८।

ओर भागने लगे[1]। हाड़ों ने भागते हुये पठानों का उल्लास के साथ पीछा किया। शहर के अन्दर फिर घमासान युद्ध हुआ। डोकरखां का भाई सैलारगाजी उस समय असाध्य रोग से ग्रस्त था तो भी उसने अपने वीरत्व के कर्त्तव्य को निभाया और बड़े पराक्रम के साथ हाड़ों की सेना से लड़ा। बहुत अर्से तक लड़ाई होती रही; तब कीर्तिसिंह नामक राजपूत ने उस पर तलवार का प्रहार किया और वह धराशायी हुआ। सूर्यमल्ल लिखता है कि जिस स्थान पर सैलार गाजी ने वीरगति प्राप्त की थी, वह दरवाजा सालारगाजी कहलाने लगा[2]। ठाकुर लक्ष्मण-दान ने लिखा है कि सालारगाजी जेतसिंह का सैनिक था, जिसने भीलों के विरुद्ध लड़ते हुये अपने स्वामी की सेना में प्राण त्यागे थे, और वर्त्तमान दरवाजा उसी वीर का स्मारक है। यह पता नहीं है कि दोनों लेखकों ने ये बातें किन आधारों पर लिखी हैं। अतः नहीं कहा जा सकता कि दोनों में से किसका कथन अधिक प्रामाणिक है। इसी युद्ध में डोकरखां भी मारा गया। तब पठान पराजित हुये, और कोटा २६ वर्ष तक पठानों के अधिकार में रह कर पुनः हाड़ों के अधिकार में आया[3]। राव सुर्जन की सेना के अनेक वीररत्न भदाना और कोटा के युद्ध में मारे गये, परन्तु हाड़ों के हाथ में से गया हुआ हाड़ों का

---

(१) वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २२३९।

(२) जवनेस डागर भ्रात रोग असाध्य तेहुँ जुरयो तहाँ॥
सालारगाजी नाम जो तजि मंच संमुह संक भ्यौ।
दलभार हड्डन द्वार पूगत खग्ग हड्डन ले दम्यौ॥
असि झारि कीरतिसिंह टोपरु मारि खट भट सो मरयो।
तस नाम अज्जहु द्वार बज्जत जरथ जो भवने तरयो॥
वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २२३६।

(३) कोटा सु अब्द छबीस तैं गत, गंजि अप्पन यों मुरयो।
वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २२३६।

राज्य राव सुर्जन के उत्साह और साहस के कारण वापिस आगया। यह उसके लिये यश और कीर्ति की बात थी।

**खींचियों से राज्य वापिस लिया**—प्रबल पठानों को हराने के बाद खींचियों का हराना और उनके दबाये हुये परगनों पर पुनः अधिकार जमाना राव सुर्जन के लिये कोई बड़ी बात नहीं थी। मऊ के खींची रायमल ने कोटे से उत्तर में सीसवाली, बड़ोद, आदि के परगने दबा रक्खे थे, वे सब राव सुर्जन ने वापिस छीन लिये; परन्तु खींचियों के साथ युद्ध करने में कीर्तिसिंह वीर मारा गया। इस प्रकार अपने वंश परम्परागत सम्पूर्ण राज्य को पुनः प्राप्त करके तथा कोटा नगर में विजय के बाजे बजा कर राव सुर्जन वापिस बूँदी पहुँचा[1]।

**कोटा राज्य के तीन सौ वर्ष**—जैतसी के वंश में कोटे का राज्य सम्वत् १३२१ (सन् १२६४) से सम्वत् १६१८ (सन् १५६१) तक रहा। जब बीरम पठानों से हार कर भाग गया और पठानों ने कोटे पर अपना अधिकार जमा लिया तो जैतसी वंश के हाड़ाओं के राज्य का अन्त होगया। ऐसा मालूम होता है कि लगभग तीन सौ वर्ष तक कोटा प्रायः स्वतन्त्र राज्य रहा होगा। जैतसी ने इसको स्थापित किया था, परन्तु अपने बड़े भाई बूँदी नरेश को अपना स्वामी मानता था और बूँदी की ओर से लड़ता हुआ वह मारा भी गया था। इसी प्रकार उसके वंशजों ने भी बूँदी की सेवा की होगी, परन्तु जैतसी के वंशज कोटा राज्य को निज बाहूपार्जित स्वतन्त्र राज्य मानते होंगे। परन्तु जब इसको पठानों ने छीन लिया तो बूँदी के राज्य वंश का कर्त्तव्य था कि अपने पैतृक राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करता। जब तक मालवा के सुल्तानों की धाक बनी रही, और बूँदी

(१) वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २२४१।

में कोई पराक्रमी नरेश पैदा नहीं हुआ तब तक अर्थात् लगभग २५ वर्ष तक कोटा पठानों के अधीन रहा; परन्तु ज्योंही राव सुर्जन ने अपनी भुजाओं में बल का अनुभव किया, और मालवा के सुल्तानों की शक्ति का अकबर ने अन्त कर डाला, त्योंही राव सुर्जन ने कोटा और उसका पार्श्ववर्त्ती प्रदेश पुनः अधिकृत कर लिया।

**राव सुर्जन का राज्य और बल**—अब राव सुर्जन विस्तृत प्रदेश का स्वामी था। रणथम्भौर से कोटे तक और रामगढ़ से बूँदी तक उसका निष्कण्टक राज्य था। मऊ के खींची उसका लोहा मान चुके थे। पठानों का उसने उच्छेद कर दिया था। बूँदी और कोटा के ही किले नहीं, रणथम्भौर का दुर्धर्ष दुर्ग भी उसके अधिकार में था, और वह प्रायः रणथम्भौर में ही रहा करता था। बूँदी और मेवाड़ में कई बार युद्ध हो चुके थे; इनमें कई बार बूँदी की हार हो चुकी थी, परन्तु कई बार जीत भी हुई थी। बूँदी के हाड़ा प्राचीन शासक और योद्धा माने जाते थे।

**रणथम्भौर को हस्तगत करने के लिये अकबर का विफल प्रयास**—इसी समय अकबर का भाग्यसूर्य अपनी प्रखर किरणों के साथ भारताकाश में ऊँचा चढ़ चुका था। हेमूँ बक्काल के मारने के बाद दिल्ली और आगरे को अधिकृत करके ग्वालियर और जौनपुर को वह अपने राज्य में मिला चुका था। राजपूताने में रणथम्भौर का दुर्ग प्रसिद्ध माना जाता था। इसलिये अब अकबर की नजर इस पर पड़ी। अकबर ने यह भी समझा होगा कि राव सुर्जन ने हाल ही में अपने राज्य पर पूरा अधिकार जमाया है, इसलिये उसको उखाड़ना मुश्किल नहीं होगा। उसके सलाहकारों ने यह भी सलाह दी होगी कि रणथम्भौर चित्तौड़ की अपेक्षा अधिक निर्बल है इसलिये पहले उस पर आक्रमण

करना आसान होगा। सम्वत् १६१७ ( सन् १५६० ) के लगभग रणथम्भौर पर अधिकार जमाने की अकबर ने चेष्टा की, परन्तु सफलता नहीं हुई[१]। मालूम होता है कि अभी अकबर इतनी शक्ति संचित नहीं कर चुका था जो राव सुर्जन के पराजय के लिये पर्याप्त हो।

**चित्तौड़ पर अकबर की चढ़ाई**—सम्वत् १६२४ ( सन् १५६७ के सितम्बर ) में अकबर ने चित्तौड़ को विजय करने की तैयारी की और अक्टूबर में चित्तौड़ के दुर्ग को घेर लिया। महाराणा उदयसिंह दुर्ग की रक्षा फत्ता और जयमल के सुपुर्द करके अपने प्राण बचाने के लिये भाग गया। फाल्गुण ( २३ फरवरी सन् १५६८ ) में बैदनौर का वीर राठौड़ जयमल अकबर की गोली का शिकार होगया। अब किले में कोई शत्रु का सामना करने वाला साहसी वीर नहीं रहा। महिलाओं ने लोमहर्षण जौहर द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा की और मानों अकबर के विजय की सूचना दी[२]। अकबर ने चित्तौड़ में प्रवेश किया और हजारों राजपूतों का बध करने के बाद वहाँ अपना अधिकार स्थापित किया।

**रणथम्भौर का घेरा और सुर्जन की दश शर्तें**—इस विजय से उत्साहित होकर संवत् १६२६ ( सन् १५६९ के आरम्भ ) में रणथम्भौर के दुर्ग को विजय करने की अकबर ने तैयारी की। वह एकवार पहिले विफल हो चुका था, इसलिये खूब सेना सजाई गई। चित्तौड़ विजय के अनुभव से भी काम लिया गया। फाल्गुण मास ( फरवरी सन् १५६९ ) में दुर्ग का घेरा डाला गया। चारों ओर सुरंग खोदे गये और खाइयों में बारूद भरा गया। अकबर का अनुमान था

( १ ) वि० ए० स्मिथ—अकबर दी ग्रेट मुगल पृष्ठ ४२।

( २ ) उपरोक्त पृष्ठ ८१–८९।

कि घेरा बहुत अर्से तक चलेगा[1]। कुछ मास तक घेरा जारी रहा, परन्तु राव सुर्जन वीरतापूर्वक सामना करता रहा। तब भगवन्तसिंह कछावे ने अकबर से कहा कि रणथम्भौर को जीतना चित्तौड़ जैसा सरल कार्य नहीं है। वहाँ देवयोग से जयमल मारा गया, अन्यथा कई साल तक घेरा जारी रखना पड़ता। अब यहाँ राव सुर्जन की चाही हुई शर्तें मन्जूर करके नीति पूर्वक दुर्ग पर अधिकार करना चाहिये[2]। अकबर ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और मानसिंह ने राव सुर्जन से शर्तों की बातें जारी कीं। राव सुर्जन ने सात शर्तें पेश कीं, और कहा कि यदि इनको स्वीकार कर लिया जावे तो रणथम्भौर अकबर के सुपुर्द कर दिया जावेगा। जब अकबर को ये शर्तें सुनाई गईं तो उसको विश्वास नहीं हुआ और उसने कहा कि तुम हिन्दू हिन्दुओं को ही चाहते हो और हमको धोखा देकर कल्पित बातें कहते हो। तब नौकर का वेष धारण करवाकर अकबर को मानसिंह अपने साथ सुर्जन के पास गढ़ के अन्दर लेगया और उसके सामने शर्तों की बातें होने लगीं। जब मानसिंह ने सुर्जन से कहा कि इस विषय में हठ न करो, और बादशाह का आदेश अपने सिर पर धारण करो, तो राव

---

(१) वि० ए० स्मिथ—अकबर दी ग्रेट मुगल पृष्ठ ९८।

(२) कुम्भ भगवन्त तबसाह प्रति यूं कह्यो।
लग्गि चिर निट्टि चित्तौर अप्पन लह्यो॥
मुख्य दुर्गेश जयमल्ल जो ना मरैं।
पुनिहुँ जय माहिं बहु अब्द संसय परैं॥
तोहु तिमि हास बहु आस दल को तहाँ।
ज्योहिं अब आहिं गढ़ माहिं सुर्जन जहाँ॥
इष्ट तिहिं अप्पि यह दुर्ग अब अंगमै।
जिमि सु निज होइ इत अमल अप्पन जमै॥
वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २२६४

सुर्जन ने क्रुद्ध होकर अपनी मूँछ पर हाथ रक्खा और कहा कि इस दुर्ग पर आपका अधिकार तभी हो सकता है जब सम्पूर्ण हाड़ा कुल नष्ट हो जावे या मेरे पुरातन कुलधर्म की रक्षा हो सके ऐसी शर्तें आप स्वीकार करलें। इस विषय में सविस्तर बातचीत हो चुकने के बाद मानसिंह और अकबर वापिस आये और निम्न लिखित १० शर्तें लिख कर राव सुर्जन के पास भेज दी गई:—

(१) बादशाह को लड़की नहीं दी जायगी।
(२) नौरोजा में बूँदी की राणियाँ नहीं जावेंगी।
(३) बूँदी नरेश अटक से परे नौकरी में नहीं भेजे जावेंगे।
(४) दीवाने आम और दीवाने ख़ास में बूँदी नरेश सशस्त्र जाया करेंगे।
(५) शाही महल के दरवाजे तक बूँदी वालों का नक्कारा बजता जावेगा।
(६) बूँदी के घोड़ों पर दाग़ नहीं लगेंगे।
(७) किसी आर्य राजा के नेतृत्त्व में नहीं लड़ेंगे।
(८) बूँदी राज्य जज़िया नहीं देगा।
(९) बूँदी राज्य में मन्दिर नहीं तोड़े जायँगे।
(१०) जैसे मुग़लों का राज्य दिल्ली है उसी प्रकार हाड़ों की राजधानी बूँदी मानी जावेगी[१]।

अकबर का सरकारी इतिहासकार अबुलफ़जल रणथम्भौर के विजय की कहानी दूसरे प्रकार से लिखता है। वह कहता है कि जब बादशाह ने घमासान युद्ध जारी किया तो "सुर्जन को बड़ा ताज्जुब

(१) (i) वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २२६५।
(ii) टॉड—राजस्थान जिल्द २ पृष्ठ ५१८।
(iii) वि० ए० स्मिथ—अकबर दी ग्रेट मुगल पृष्ठ ९९।

हुआ और उसका दिमाग बरखास्त होगया। दबदबे से उसका दिल धड़कने लगा और वसीला सिफ़ारिश के लिये बादशाह के पास बैठने-वालों को ढूँढकर ख़िदमते अकदस में अपने लड़के दूधा और भोज को दरबारे आली में भेजा और ये दोनों बादशाही अमीरों की सिफ़ारिश से बादशाह से मिल सके[१]"। इस वर्णन में वंशभास्कर की सात और टॉड की दस शर्तों का कहीं उल्लेख नहीं है, परन्तु शर्तें हुई थीं इसमें सन्देह नहीं क्योंकि बूँदी नरेशों से मुगल सम्राट् ने कभी लड़की नहीं माँगी, उनके राज्य पर जजिया कर कभी नहीं लगाया गया, और जब शाहजहाँ ने उनको अटक पार करने की आज्ञा दी तो उन्होंने इन शर्तों का स्मरण दिलाया और अटक से वापिस बूँदी लौट आये[२]। कर्नल टॉड ने बूँदी का वर्णन बूँदी सरकार द्वारा तैयार कराये हुये संक्षिप्त इतिहास के आधार पर लिखा है और सूरजमल ने वंशभास्कर बड़ी खोज के साथ लिखा है अतः इन दोनों लेखकों के कथनों के नहीं मानने का कोई कारण नहीं है। इसके अतिरिक्त सूर्यमल ने जिन शर्तों का उल्लेख किया है उनमें कोई ऐसी बात नहीं है जिसको अकबर नहीं मानता। ये शर्तें केवल राजपूतीय अभिमान की सूचक हैं। उनमें सार कुछ नहीं। उनको मानकर अकबर ने अपनी सेना का संहार बचाया, एक अजेय दुर्ग को अधिकृत कर लिया और राव सुर्जन को आसानी से प्रसन्न करके साम्राज्य का सच्चा सहायक बना लिया। अकबर ने दस शर्तें स्वीकार करते हुये यह भी आदेश किया कि रणथम्भौर की

---

(१) सुरजन रा अज़ सितवत व अज़मत दिल बलिया दाद ब तवस्सुल व सिफ़ाअते मुक़र्रबान विसाते अक़्दस जुस्ता पिसराने खुद दूदा व भोज रा बदरगाहे मुअल्ला फ़िरस्ताद व ईं हा ब विसातत अज आयाने बारगाहे ब सआदते जमीं बोस कामयाब गश्ता। अकबरनामा, सफा ३३७।

(२) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, शत्रुशाल चरित।

एवज में राव सुर्जन सात परगने ले सकता है और मानसिंह द्वारा कहलाया कि यदि और अधिक राज्य की इच्छा हो तो गोंडवाने को विजय कर सकता है। उस समय गोंडवाने पर अकबर का अधिकार नहीं था इसलिये उसको जीतने की आज्ञा देना भी बड़ी नीतिज्ञता थी। राव सुर्जन अपनी स्वाभाविक उदारता के कारण इस कूट चाल को नहीं समझ सका। उसने यह बादशाह की असाधारण उदारता समझी। अतः उत्तर भेजा कि प्रथम गोंडवाने में सम्राट् का अधिकार स्थापित करूँगा और फिर ७ परगने लूँगा[1]। सब बातें निश्चित होजाने पर राव सुर्जन ने किले में से अपनी सब बहुमूल्य चिरसंचित सम्पत्ति, दो विष्णु की प्रतिमायें और दो तोपें निकालीं, और किला अकबर के सुपुर्द कर दिया। इन तोपों में से एक का नाम 'धूलधाणी' था और दूसरी का 'कड़क बीजली'[2]। दोनों प्रतिमाओं में से एक को बूँदी में मन्दिर बनाकर प्रतिष्ठित किया। दूसरी प्रतिमा कुछ अर्से तक तो बूँदी रही, उसके पश्चात् रावरतन की माता ने बाराँ में मन्दिर बनवाकर उसको वहां स्थापित कर दिया। यह मन्दिर इस समय कल्याणरायजी का मन्दिर कहलाता है[3]।

**हाड़ों की स्वतन्त्रता का अन्त**—रणथम्भौर विजय हाड़ों की स्वतन्त्रता का अन्तिम दिन था। आठवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक चौहाणों ने स्वतन्त्र राज्य किया था। मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज को मार कर राज्य प्राप्त किया था, हरा कर नहीं; इस प्रकार बम्बावदे के दुर्ग की रक्षा करते हुये समरसी और हरराज ने भी

(१) वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २२६८।
(२) उपरोक्त पृष्ठ २२७१।
(३) (i) पंडित रामकरण—अहवाले रियासत कोटा।
(ii) वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २२४५।

वीरगति प्राप्त की थी और तब अलाउद्दीन खिलजी उस दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित कर सका था। बूँदी पर कई बार मालवे के सुलतानों ने हमले किये थे, लूटमार की थी; दो राजकुमारों को मुसलमान भी बनाया था, परन्तु फिर भी हाड़ों ने मुसलमानों के सामने सिर नहीं झुकाया था। केसरखां और डोरकखां ने कोटे में २६ वर्ष तक राज्य किया था, और बीरम को भगा दिया था परन्तु फिर भी हाड़ा लोग निराश नहीं हुये थे और अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने के सुअवसर की प्रतीक्षा करते रहे थे। अन्त में राव सुर्जन ने पठानों को मार कर कोटा वापिस ले ही लिया था।

राव सुर्जन ने जितना विस्तृत राज्य अपने अधिकार में कर लिया था उतना पहले कभी किसी हाड़ा नरेश के हाथ में नहीं था। वह स्वयम् बुद्धिमान् और शक्तिशाली था, परन्तु दुर्भाग्यवश अब गुलाम, खिलजी, तुगलक, सैय्यद और लोदी वंश का जमाना नहीं था। अब भारत का सम्राट् महाप्रतापी महत्त्वाकांक्षी अकबर था। ऐसी स्थिति में राव सुर्जन जैसे वीर के लिये भी सन्धिपूर्वक रणथम्भौर अकबर के सुपुर्द कर देने, और उसकी अधीनता स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं था; विशेषकर इसलिये कि चित्तौड़ को अकबर पहले ही जीत चुका था और मानसिंह पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित करके अकबर का भक्त और सहायक बना हुआ था।

**राव सुर्जन अकबर का मनसबदार बना**—रणथम्भौर अकबर के सुपुर्द करके अब सुर्जन अकबर का एक सामन्त बन गया। अकबर ने किले में अपने सैनिक नियत किये, और वापिस दिल्ली जाते समय राव सुर्जन को गोंडवाना विजय करने का आदेश किया। राव सुर्जन ने मुगल सम्राट् की सेवा करना स्वीकार करके गोंडवाने की ओर

कूँच किया। साथ में अपनी और कुछ सम्राट् की भी सेना ली। गोंडों के राजा ने कुछ समय तक युद्ध करके आत्मसमर्पण कर दिया। राव सुर्जन ने गोंडों की राजधानी बारीगढ़ में सम्राट् का अधिकार स्थापित करके अपनी विजय के उपलक्ष्य में वहां सूरजपोल नामक एक दरवाजा बनवाया। गोंड नरेश राव सुर्जन की शर्तें मान कर सम्राट् अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिये तैयार होगया। राव सुर्जन उसको दिल्ली लाया, और अकबर के सामने पेश किया[१]। राव सुर्जन के इस वीर कार्य से अकबर बहुत सन्तुष्ट और प्रसन्न हुआ, और उसको रावराजा की उपाधि से अलंकृत किया[२]। अब राव सुर्जन ने विधिपूर्वक सम्राट् की सेना में प्रवेश किया और उसको ५००० का मनसब दिया गया[3]। राव सुर्जन के गोंडवाने के प्रति प्रयाण करने से पहले परगने देने का जो अकबर ने वचन दिया था, वह उसने पूरा किया। बूँदी के निकटवर्त्ती २६ परगने बूँदी राज्य में मिलाये गये और २६ परगने बनारस के पास दिये गये। राव सुर्जन को बनारस और चुनार का हाकिम भी नियत किया गया[४]। बनारस में रहकर राव सुर्जन ने अनेक सुन्दर महल बनवाये, और गंगा तट पर घाटों का निर्माण करवाया। उसकी दानशीलता और उदारता के कारण काशी के चारों ओर राव सुर्जन का नाम प्रसिद्ध होगया। अन्त में बनारस में ही राव सुर्जन का देहान्त हुआ[५]। राव सुर्जन के तीन पुत्र थे। भोज, दूदा और रायमल।

**कोटा राज्य पर भोज का शासन**—मुसलमानों से छीनकर

---

(१) वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २२८४–८८।
(२) उपरोक्त पृष्ठ २२९०।
(३) उपरोक्त पृष्ठ २२९०।
(४) उपरोक्त पृष्ठ २२८९।
(५) टॉड—राजस्थान जिल्द २ पृष्ठ ५१९–२०।

कोटा राव सुर्जन ने भोज के सुपुर्द कर दिया था। भोज कोटे में केवल जागीरदार की तरह से नहीं; किन्तु प्रायः स्वतन्त्र शासक की भाँति राज्य करता था। कोटे में बूँदी का राज्य नहीं; बल्कि भोज का राज कहलाता था[1]। इसी प्रकार पहले जैतसी के वंशज कोटे में राज्य करते थे। वास्तव में राव सुर्जन ने परम्वतगत शासन विधान पुनः स्थापित किया था।

**हृदयनारायण का शासन**—अपने पिता की मृत्यु के बाद जब राव भोज गद्दी पर बैठा तो उसने अपने छोटे पुत्र हृदयनारायण को कोटे का शासक नियत किया और इस विषय में सम्राट् अकबर से स्वीकृति भी प्राप्त की[2]। हृदयनारायण ने लगभग १५ वर्ष तक कोटे में शासन किया। इस समय सारबाग में उसका स्मारक बना हुआ है। वह हरदावत सरदारों का पूर्व पुरुष माना जाता है। जिस प्रकार भोज को राव सुर्जन ने कोटे का शासक नियत किया था उसी प्रकार हृदय-नारायण को राव भोज ने कोटे की गद्दी पर बिठाया था। यह पद्धति वास्तव में तीन शताब्दी से अधिक अर्से से चली आती थी। परन्तु अब यह नहीं निभ सकती थी। इस समय अकबर का शासन काल था, और राजपूतों की स्वतन्त्रता नष्ट होचुकी थी। मेवाड़ के अतिरिक्त सम्पूर्ण राजाओं से अधीनता स्वीकार करवा कर अकबर ने जाब्ते में अजमेर का सूबा स्थापित कर दिया था, जिसके अन्तर्गत राजपूतों के राज्य थे। वह राजपूत नरेशों को अपने अपने राज्य के परम्परागत शासक नहीं; किन्तु केवल अपने जमींदार मानता था। आमेर, बूँदी, या मारवाड़ के राज्य का अकबर की शासन प्रणाली में अस्तित्व स्वीकार

(१) गैपरनाथ का शिला लेख। देखो परिशिष्ट ८।

(२) राजस्थान जिल्द २ पृष्ठ ५२१ फुट नोट।

नहीं किया जाता था। अजमेर का सूबा कई सरकारों में बँटा हुआ था, और प्रत्येक सरकार कई परगनों में। राजपूत नरेशों के राज्य जो जमींदारियाँ कहलाती थीं, विभिन्न सरकारों में समाविष्ट थे; एवम् रणथम्भौर को हस्तगत करने के बाद अकबर ने उसको अजमेर का एक सरकार बनाकर बूँदी और कोटे के परगने उसके ताल्लुक कर दिये थे। इस प्रकार के विधान के अनुसार राव भोज स्वतन्त्ररूप से हृदय-नारायण को कोटे का शासक नियत नहीं कर सकता था, क्योंकि कोटा एक परगना था, जिसका सम्बन्ध सरकार गढ़ रणथम्भौर से और सूबा अजमेर से था, बूँदी से नहीं। इसलिये शाही फरमान द्वारा ही हृदय-नारायण को परगना कोटे की जमींदारी मिल सकती थी। यही कारण था कि हृदयनारायण ने कोटा राज्य का फरमान अकबर से प्राप्त किया और इसके आधार पर वह कोटे का राजा माना जाने लगा। इतने पर भी हृदयनारायण ने बूँदी से सम्बन्ध नहीं तोड़ा। वह पहले अपने पिता की और फिर अपने भाई राव रतन की आज्ञा मानता रहा।

———

# राव रतनसिंह

**राव रतन गद्दी पर बैठा**—राव भोज अकबरी दरबार में बहुत सम्मानित और शक्तिशाली सरदार था। अहमदनगर के घेरे में उसने बड़ी बीरता का परिचय दिया था, जिसके उपलक्ष में अकबर ने वहाँ भोज के नाम पर भोज बुर्ज बनवाई थी और उसको एक हाथी पुरस्कार में दिया था। इस हमले में अहमदनगर की वीर रमणी चाँदबीबी और उसकी ७०० वीर दासियाँ मारी गईं थीं। राव भोज के तीन पुत्र थे। रतन, हृदयनारायण और केशवदास। हृदयनारायण को उसने कोटे का शासक नियत किया, केशवदास को २७ गाँवों के सहित ढीपरी की जागीर दी, और राव रतन अपने पिता की मृत्यु के बाद राजसिंहासन पर बैठा[1]। उस समय राव रतन की अवस्था ३४ वर्ष की थी[2]।

**मुगल दरबार में उच्च सम्मान प्राप्त किया**—राव रतन ने जहाँगीर के दरबार में अपने पिता से भी अधिक यश और सम्मान प्राप्त किया। वह पंजहजारी मनसबदार बना, 'सरबुलन्दराय' और 'रामराज' की उपाधियों से अलंकृत हुआ, केसरिया निशान और नक्कारे आदि शाही चिन्ह उसको प्राप्त हुये, और वह जहाँगीर के साम्राज्य का स्तम्भ माना जाने लगा। वह अपनी वीरता के लिये उतना ही प्रसिद्ध था जितना न्यायशीलता के लिये। उसने मुगल दरबार में तो यश प्राप्त किया ही था, परन्तु अपने राज्य को अधिक विस्तृत करके वैभव वृद्धि भी की थी।

---

(१) टॉड—राजस्थान जिल्द २ पृष्ठ ५२०-२१।

(२) वंश प्रकाश, पृष्ठ १२१।

**उसकी अद्भुत न्याय शीलता**—अपने राज्य में राव रतन ने जो न्यायशीलता का परिचय दिया था, वह बूँदी या भारतवर्ष के इतिहास में नहीं किन्तु संसार के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। इसके तीन पुत्र थे, गोपीनाथ, माधोसिंह, और हरीसिंह। गोपीनाथ चरित्रहीन कामुक था। वह एक ब्राह्मणी पर आसक्त था, और इसकी चर्चा सब नगर में फैल चुकी थी। उस समय राव रतन प्रायः दक्षिण में रहा करता था। राजकुमार के दुराचार से उत्तेजित होकर एक दिन ब्राह्मणों ने मिल कर उसका बध कर डाला। जब राव रतन अपनी राजधानी में आया, और उसको सब वृत्त विदित हुआ तो वह शान्तमना होकर विष की सी घूँट पीकर रह गया। हत्यारे ब्राह्मण बहुत त्रस्त थे, परन्तु राव रतन ने उनको आश्वासन दिया और किसी को कुछ दण्ड नहीं दिया[१]।

**खींचियों से मऊ छीना**—चम्बल की दाहिनी ओर पलायथा, रामगढ़, सीसवाली, आदि तो हाड़ों का आधिपत्य स्वीकार कर ही चुके थे, परन्तु मऊ के खींची कभी अधीन और कभी स्वतन्त्र हो जाया करते थे। कुछ समय पहले तो इन लोगों ने कोटे से उत्तर की तरफ के भी कई परगने दबालिये थे। अब राव रतन की शक्ति खूब बढ़ चुकी थी, और उसको मुगल सम्राट् की कृपा का भी बल था। अतः उसने मऊ पर चढ़ाई कर दी और खींचियों को हरा कर उनके महलों को तथा परगनों को अधिकृत कर लिया[२]। इस लड़ाई में राव रतन के दोनों भाई हृदयनारायण और केशवदास तथा दोनों पुत्र माधोसिंह और हरीसिंह

(१) i वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ट २४४६।
ii टॉड—राजस्थान जिल्द २ पृष्ठ ५२३।
(२) वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २४७९।

साथ थे। केशवदास और उसके साथ के सौ सैनिक इस युद्ध में मारे गये थे[१]।

**ख़ुर्रम का विद्रोह**—मुगल दरबार में रावरतन की प्रतिष्ठा विशेषकर खुर्रम की बगावत के कारण बढ़ी थी। इस बगावत में जो रावरतन ने सम्राट् को सहायता दी, उसको बूँदी के लोग बहुत महत्त्व देते थे, और रावरतन को साम्राज्य का मुख्य रक्षक मानते थे[२]।

इस समय जहाँगीर के दरबार की दशा शोचनीय होगई थी। नूरजहाँ अपने लड़के शेरयार को जहाँगीर का उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी; परन्तु उसका शक्तिशाली भाई आसफजाह शाहजादा खुर्रम को अपनी पुत्री ब्याह चुका था, अतः वह उसके पक्ष में था। खुर्रम इससे पहिले ही खूब शक्ति संचय कर चुका था। उसके पास विपुल सेना थी और विपुल सम्पत्ति। नूरजहाँ के प्रपञ्चों ने अन्त में खुर्रम को बगावत के लिये तैयार कर ही दिया। खुर्रम का पक्ष अनेक प्रसिद्ध सरदारों ने ग्रहण किया, और मेवाड़ के महाराणा कर्णसिंह ने उसकी बड़ी सहायता की।

---

(१) वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २४७९।

(२) सागर फूट्यो जल बह्यो, अब कीं करो जतन्न।
जातो गढ़ जहांगीर को, राख्यो राव रतन्न॥
टॉड–राजस्थान, द्वितीय भाग, पृष्ठ ५२१ पर उद्धृत।



राव माधोसिंहजी
(१६८१-१७०५ वि०)

# कोटा राज्य की स्थापना

**रावरतन और हृदयनारायण विद्रोह को शान्त करने चले**—खुर्रम के विद्रोह से चिन्तित होकर नूरजहाँ ने राजपूत और मुसलमान सरदारों को आमन्त्रित किया, जिसके उत्तर में महाबतखाँ और अनेक राजपूत नरेश साम्राज्य की रक्षा के लिये सन्नद्ध होगये। अपने दो पुत्र माधोसिंह और हरिसिंह के साथ रावरतन ने बूँदी से और हृदयनारायण ने कोटे से अपनी अपनी सेना के साथ प्रयाण किया[१]। यही कोटा राज्य की स्थापना का सूत्रपात हुआ।

**भीमसिंह खुर्रम का सेनानायक बना**—बागी होकर सम्वत् १६७९ में खुर्रम दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ा। मथुरा से उत्तर की ओर बढ़ने पर बिलोचपुर की लड़ाई में वह शाही सेना से हारा[२]। वहाँ से हार कर भागा और आमेर को लूटता हुआ[3] उदयपुर के महाराणा की शरण में गया[४]। यहाँ कुछ दिन तक ठहरा। महाराणा ने उसका अच्छा आतिथ्य किया जिससे प्रसन्न होकर उसने विदा होते समय महाराणा को अपना पगड़ी बदल भाई बनाया। यह पगड़ी इस

---

(१) i ईश्वरीप्रसाद— ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया पृष्ठ ५१४-१५।

ii ओझा—राजपूताने का इतिहास, तृतीय भाग, पृष्ठ ८२५।

(२) बेणीप्रसाद—जहाँगीर पृष्ठ २५९—६०।

(३) तुजुके जहाँगीरी-अंग्रेजी अनुवाद जिल्द २, पृष्ठ २३८।

(४) दिल्लीश्वरज्जहाँगीरात्तस्य खुर्रममात्मजम्।
सुतं विमुखतां प्राप्तं स्थापयित्वा निजक्षितौ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ५।

समय उदयपुर के म्यूजियम में सुरक्षित है[१]। महाराणा से विदा होते समय खुर्रम उसके छोटे भाई भीमसिंह को अपने साथ लेगया और उसको अपना प्रधान सेनापति नियत किया।

**रावरतन शाहजादा परवेज से मिला**—शाहजादा खुर्रम का दमन करने के लिये महाबतखाँ और शाहजादा परवेज के नेतृत्त्व में शाही सेना दक्षिण की ओर रवाना हुई। बूँदी से रवाना होकर कूँच करता हुआ रावरतन इस सेना में जा सम्मिलित हुआ। परवेज, महाबतखाँ और रावरतन अब खुर्रम को परास्त करने का आयोजन करने लगे।

**रावरतन ने सन्धि का प्रयत्न किया**—जब माँडू में खुर्रम शाही सेना से हार गया तो उसने भाग कर नर्मदा को पार किया और बायें किनारे पर किलाबन्दी करके लड़ने को तैयार हुआ। जब शाही सेना ने देखा कि नर्मदा पार करना आसान काम नहीं है और खुर्रम ने भी अनुभव किया कि उस विपुल सेना का सामना करना दुस्साहस है, तो दोनों पक्षों ने रावरतन को मध्यस्थ बनाया और सन्धि की बातचीत आरम्भ हुई। दुर्भाग्यवश शर्तें तय न हो सकीं और युद्ध की तैयारी होने लगी। शाही सेना ने आखिरकार नर्मदा पार की और शाहजादे पर आक्रमण किया। इस घमासान युद्ध में रावरतन और माधोसिंह जी बड़ी वीरता से लड़े[२]।

**खुर्रम ने बुरहानपुर को घेरा**—इस प्रकार शाही सेना से हारकर खुर्रम ने बुरहानपुर की ओर प्रयाण किया। शाही सेना निरन्तर

---

(१) ओझा—राजपूताने का इतिहास, तृतीय भाग, पृष्ठ ८२४।

(२) i तुजुक-ए-जहाँगीरी ( R. & B. ) जिल्द २ पृष्ठ २७८।
ii बेणीप्रसाद—जहाँगीर, पृष्ठ ३७०।
iii मुंशी मूलचन्द।

उसका पीछा कर रही थी। इन पीछा करने वालों में रावरतन और माधोसिंहजी भी थे। अनेक कठिनाइयों का सामना करता हुआ खुर्रम बुरहानपुर पहुँचा। किले में घुस कर शाही सेना का मुकाबला करने के लिये तैयार होगया। शाही सेना ने दुर्ग को घेर लिया और रावरतन बड़े पराक्रम और उत्साह के साथ विजयप्राप्ति के प्रयत्न करने लगा। शाहाजादा खुर्रम अधिक समय तक किले पर अपना अधिकार स्थिर नहीं रख सका। मौका पाकर वह किले से भाग गया। इस घेरे में राव रतन ने अपनी वीरता के कारण बड़ी ख्याति प्राप्त की। माधोसिंजी ने भी लड़ाई में सम्मिलित होकर क्षत्रियोचित वीरता का परिचय दिया।

**माधोसिंहजी का जन्म और बाल्यकाल**—माधोसिंहजी रावरतन के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म ज्येष्ठ शुक्ला ३ सम्वत् १६५६ को बूँदी नगर में हुआ था[1]। इनकी माता बूँदी राज्यान्तर्गत अरण्डखेड़ा के बालनोत ठाकुर की लड़की थी[2]। चौदह वर्ष की अवस्था तक वे प्रायः बूँदी में रहे और धार्मिक शिक्षा तथा शस्त्रविद्या ग्रहण करते रहे। छोटी अवस्था में ही उन्होंने युद्धकला और शस्त्र प्रयोग से खूब परिचय प्राप्त कर लिया था। घोड़े की सवारी में वे अत्यन्त निपुण थे। धार्मिक ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उन्होंने कुछ संस्कृत भाषा का भी अभ्यास किया था। इस समय तक उनके पिता रावरतन मुगल सरकार की कोई नौकरी हासिल नहीं कर पाये थे, परन्तु अपने पिता भोज के साथ अकबर की लड़ाइयों में एक दो बार जा चुके थे[3]।

(१) बख्शीखाना—माधोसिंहजी की जन्म पत्रिका। मुंशी मूलचन्द ने चरित्ररत्नावली के आधार पर माधोसिंहजी का जन्म सम्वत् १६५७ लिखा है।
(२) ठाकुर लक्ष्मणदान।
(३) मुंशी मूलचन्द, पृष्ठ ६८।

**प्रथम बार लड़ाई में**—ऐसा अनुमान होता है कि माधोसिंहजी सब से पहिले सम्वत् १६७१ (सन् १६१४ ई०) में अपने पिता के साथ युद्ध में गये होंगे। इस समय मलिकअम्बर ने दक्षिण में उत्पात मचा रक्खा था। यह एक अद्भुत वीर, चतुर शासक तथा रणकुशल सेनानायक था। वह अहमदाबाद के निजामशाही बादशाहों का मन्त्री था। उनके राज्य में उसने शासन सम्बन्धी अनेक सुधार किये थे। उसने ही सब से पहिले मराठों को गुरिला-विधि सिखाई थी। निजामशाही राज्य को सुदृढ़ करके उसने मुगल साम्राज्य का सामना करना शुरू किया। उसको दबाने के लिये शाहजादा परवेज भेजा गया। परन्तु जब अर्से तक सफलता प्राप्त नहीं हुई और शाही सेना कई लड़ाइयों में हार गई तो शाहजादा परवेज को वापिस बुलाकर सेना संचालन शाहजादा खुर्रम के सुपुर्द किया गया, और उसके साथ रावरतन को नियत किया। शाहजादे खुर्रम के आक्रमण से भयभीत होकर मलिकअम्बर ने सन्धि करली, और मुगल राज्य का जीता हुआ हिस्सा वापिस कर दिया[1]। चरित्ररत्नावलि में मलिकअम्बर के उत्पात का वर्णन नहीं है, परन्तु यह लिखा है कि माधोसिंह जी ने चौदह वर्ष की अवस्था में बुरहानपुर की लड़ाई में बड़ी वीरता का परिचय दिया। यदि माधोसिंहजी वास्तव में अपने पिता के साथ लगभग १४ वर्ष की अवस्था में किसी लड़ाई में सम्मिलित थे, तो यह लड़ाई शाहजादा खुर्रम और मलिकअम्बर की ही हो सकती है, जो सम्वत् १६७१ में हुई थी। इस समय माधोसिंहजी की अवस्था भी १५ वर्ष की थी[2]।

(१) मुन्शी मूलचन्द, पृष्ठ ७०।

(२) तुजुक-ए-जहाँगीरी ( R. & B. ) जिल्द १ पृष्ठ २१९।

**बुरहानपुर में माधोसिंहजी रावरतन के साथ**—शाहजादा खुर्रम जगह २ पराजित होकर गोलकुण्डा पहुँचा। परन्तु वहाँ कोई विशेष सहायता नहीं मिली, और उसने उड़ीसा की ओर कूँच की[1]। शाही सेना ने बुरहानपुर में डेरे डाल दिये और आसपास के प्रदेश में शान्ति स्थापित करने का तथा बागी शाहजादे के विरुद्ध वायुमण्डल रचने का प्रयत्न जारी किया गया। रावरतन बुरहानपुर का हाकिम हुआ और उसके दोनों पुत्र माधोसिंहजी तथा हरीसिंह उसके साथ रहने लगे। उधर शाहजादा खुर्रम ने बंगाल और उड़ीसा में अपनी धाक जमाई। उसके सेनापति राजा भीमसिंह ने बिहार पर कब्जा कर लिया। इसके बाद शाहजादे ने रोहतास के दुर्ग को जीता[2]। फिर उसने अवध और इलाहाबाद पर अधिकार जमाने की तैयारी शुरू की। राजा भीमसिंह और अब्दुल्लाखाँ को इलाहाबाद की ओर रवाना किया। उनकी चढ़ाई का समाचार सुनकर जौनपुर का हाकिम भाग गया, और राजा भीमसिंह की सेना ने प्रयाग से दस मील के फासले पर अपने खेमे डाले। अब्दुल्लाखाँ ने इलाहाबाद के किले को घेर लिया। शाही दुर्ग-रक्षक रुस्तमखाँ भी सामना करने को डट गया। अर्से तक यह स्थिति बनी रही। इधर खुर्रम के विजय की खबरें महाबतखाँ और शाहजादा परवेज को मिलती ही रहती थीं। बादशाह ने भी उनको हुक्म दिया कि वे अवध और इलाहाबाद की रक्षा के लिये रवाना हो जावें। बुरहानपुर से प्रस्थान करते समय शाहजादा परवेज ने रावरतन को बुरहानपुर के दुर्ग का रक्षक और आसपास के इलाके का शासक

---

(१) तुजुक-ए-जहाँगीरी ( R. & B. ) पृष्ठ २८७।

(२) इक़बालनामा, पृष्ठ २२१-२२।

E. & D. जिल्द ४ पृष्ठ ४१०-११।

नियत किया[1]। इस समय माधोसिंहजी को सैनिक और राजनैतिक स्थिति तथा गति के अध्ययन करने का अच्छा अवसर मिला।

**हृदयनारायण रणखेत से भागा**—महाबतखाँ और परवेज के साथ रावरतन ने बादशाह के आदेश से हृदयनारायण को भी रवाना किया[2]। ज्योंही यह सेना इलाहाबाद के पास पहुँची, अब्दुल्लाखाँ ने घेरा उठा लिया और पीछा हटकर झूँसी में अपनी सेना का पड़ाव डाला। टोंस नदी के तट पर उसने मिट्टी की दीवारें बनाकर तोपखाना जमाया। शाही सेना अस्सी हजार थी और खुर्रम की सेना केवल दस हजार। अब्दुल्लाखाँ नहीं चाहता था कि धावा बोला जावे। उसकी सम्मति थी कि इधर उधर हटकर शाही सेना को परेशान किया जावे और भूखों मारा जावे, परन्तु राजा भीमसिंह ने इसको क्षात्र-रणनीति के प्रतिकूल समझा। उसने स्पष्ट कह दिया कि यदि तत्काल धावा नहीं किया जावेगा तो मैं खुर्रम की सेना को छोड़ कर चला जाऊँगा। खुर्रम को राजा भीमसिंह का कहना मानना पड़ा और उसने युद्ध करना निश्चय किया। शाही सेना ने फौरन खुर्रम की सेना को घेर लिया और गोली तथा बाणों की वर्षा होने लगी। राजा भीमसिंह अनेक घावों से क्षत विक्षत होकर भी अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक वीरता-पूर्वक लड़ता रहा। खुर्रम के प्राण मौके से ही बचे और

(१) (i) इकबालनामा, पृष्ठ २२४–२२८।
(ii) E. & D. जिल्द ४, पृष्ठ ४१२–१४।
(iii) ख़ाफ़ीखां, जिल्द १, पृष्ठ ३४८।
(iv) टॉड—राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५२२–२३।

(२) वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २४८६।

हृदयनारायण रणखेत से भाग गया[1]।

**हृदयनारायण को कोटे की गद्दी से हटाया**—यह घटना आश्विन सम्वत् १६८० से लगभग एक मास बाद की होनी चाहिये। हृदयनारायण की कायरता से अप्रसन्न होकर जहाँगीर ने उसको कोटे की गद्दी से उतार दिया। राव रतन ने कोटा राज्य का शासन अस्थायी रूपेण अपने हाथ में लेलिया और पौष शुक्ला ९ सम्वत् १६८० को परगना कोटा के चौधरी को इस विषय की सूचना दी[2]।

**माधोसिंहजी बुरहानपुर की लड़ाई में आहत**—(वैशाख सम्वत् १६८१) जब महाबतखाँ और परवेज कूँच करते हुये प्रयाग की ओर चले गये थे तो दक्षिण में थोड़ी सी सेना छोड़ गये थे। इधर मलिकअम्बर ने विद्रोह करके इस सेना को नष्ट कर दिया। तब दक्षिण में शाही पक्ष का एक मात्र रक्षक रावरतन रह गया, जिसने बुरहानपुर और आसपास के प्रदेशों में बादशाह का झण्डा ऊँचा रक्खा। ऐसी स्थिति में उड़ीसा, तिलंगाना, और गोलकुण्डा को पार करता हुआ खुर्रम वापिस दक्षिण में पहुँचा। मलिकअम्बर ने उसके साथ मित्रता

---

(१) (i) तुजुक-ए-जहाँगीरी—अंग्रेजी अनुवाद (R. & B) जिल्द २, पृष्ठ २९४-९६।
(ii) इक़्बालनामा, पृष्ठ २२९-३४।
(iii) E & D जिल्द ४, पृष्ठ ४१३-१४।
(iv) टॉड—जिल्द २, पृष्ठ २९४-९५।
(v) ख़ाफ़ीखां—जिल्द १, पृष्ठ ३४६-५६
(vi) वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २४९६।

(२) लाला भँवरलाल पटवारी की तालीक़—इस तालीक़ में मुरारी नामक चौधरी परगना कोटा के नाम आये हुये राव रतन के हुक्म की नकल है। मुरारी के कुटुम्ब में अर्से से इस परगने की चौधराई कानूगोई थी, जिसकी पुष्टि एक जहाँगीरी फरमान से होती है।

देखो परिशिष्ट संख्या ९।

करली, और यह आयोजन किया कि मलिकअम्बर की सेना के द्वारा बुरहानपुर के घेरा डाला जावे। मलिकअम्बर ने इस काम के लिये पहिले ही याकूबखाँ को रवाना कर दिया था, परन्तु कहाँ रावरतन जैसा वीर योद्धा और कहाँ बेचारा याकूबखाँ। वह कभी घेरा डालता था, और कभी पीछा हटता था। इस प्रकार बार बार विफल होता जाता था। अब खुर्रम ने बुरहानपुर को जीतने के लिये दृढ़ निश्चय कर लिया और लाल बाग के पास अपनी सेना का पड़ाव डाला। खुर्रम ने अपनी सेना के दो विभाग किये। एक का नेतृत्त्व अब्दुल्लाखाँ के सुपुर्द किया और दूसरे का शाहकुलीखाँ के। दोनों सेनाओं ने दो तरफ से दुर्ग पर आक्रमण किया। अब्दुल्लाखाँ को राजपूतों का बड़ा जबरदस्त मुकाबला करना पड़ा और तिल भर भूमि पर भी अधिकार न कर सका। हारकर बेचारा पीछे हट गया। शाहकुलीखाँ किले में तो घुस गया और उसने दरवाजे भी बन्द कर दिये परन्तु अब्दुल्लाखाँ को हटाने के बाद वीर राजपूत ऐसे भयंकर आवेश के साथ उस पर टूट पड़े कि उसको आत्मसमर्पण करना पड़ा। फिर भी खुर्रम ने साहस नहीं छोड़ा और दूसरा आक्रमण किया। परन्तु विजय लक्ष्मी उससे विमुख ही रही। उसके अनेक वीर अफसर और सैनिक धराशायी हुये। तब अपने दोनों पुत्र माधोसिंह और हरिसिंह के साथ किले से निकल कर राव रतन ने शाहजादे की सेना पर धावा किया। खुर्रम की सेना में कितने ही हजार सैनिक थे, और राव रतन के साथ थे केवल मुट्ठी भर राजपूत; परन्तु खुर्रम के सैनिक क्षीण, म्लान, और हतोत्साह थे, और राव रतन के सैनिक थे विजयोल्लास से उन्मत्त। घोर संग्राम हुआ। विजय राव रतन को प्राप्त हुई और खुर्रम भाग निकला। उसके तीनसौ सिपाही रावरतन ने कैद कर लिये और बहुत सा सामान लूट लिया। माधोसिंहजी

और हरिसिंह दोनों इस युद्ध में बड़ी वीरता से लड़े और दोनों ही सख्त जख्मी हुये। इस प्रकार अपनी वीरता का परिचय देने का माधोसिंहजी के लिये यह प्रथम अवसर था और इस समय उनकी अवस्था लगभग २५ वर्ष की थी[1]।

**माधोसिंहजी कोटा के स्वतन्त्र राजा बने**—(सम्वत् १६८१) इस घटना से कई मास पूर्व हृदयनारायण कोटे की गद्दी से हटाया जा चुका था। अब माधोसिंहजी की वीरता से जहाँगीर बहुत प्रसन्न हुआ। अतः उनको हृदयनारायण की जगह बिठाने का रावरतन ने यह अच्छा मौका देखा। इस समय कोटे का राज्य अस्थायीरूपेण रावरतन के हाथ में था ही। बादशाह का रुख देख कर सम्वत् १६८१ के बाद वह माधोसिंहजी को कोटे का राजा मानने लगा और बादशाह द्वारा इसकी विधियुक्त पुष्टि की प्रतीक्षा करने लगा[2]।

---

(१) (१) इकबालनामा, पृष्ठ २४३-४४।
(२) E. & D., जिल्द ६, पृष्ठ ३६५ तथा ४१८।
(३) खाफीखां, जिल्द १, पृष्ठ ३४६-५०।
(४) मआसिर-उल-उमरा, जिल्द १, पृष्ठ २६१।
(५) वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २४८७, २५००-०४।
(६) मुंशी मूलचन्द, पृष्ठ ७३-७६।
(७) मुहम्मद हादी—तितम्बए-वाकआते-जहाँगीरी।

(२) मुंशी मूलचन्द ने एक ताम्रपत्र के आधार पर लिखा है कि माधोसिंहजी को सम्वत् १६७४ के पहिले ही कोटा स्वतन्त्ररूप से मिल चुका था। यह ताम्रपत्र मुंशी मूलचन्द को मौजा बिनोद जागीर पलायथा में माफियों की तहकीकात करते हुये मिला था*। माधोसिंहजी की राज्य प्राप्ति का यह सम्वत् स्वीकार करने में एक बड़ी आपत्ति है। हृदय-नारायण इस समय कोटे का जागीरदार था और जागीर उसको शाही फरमान द्वारा मिली थी। शाहजादा खुर्रम के साथ वह पहिले मेवाड़

* परिशिष्ट संख्या २।

**शाही फरमान के लिये यत्न**—रावरतन ने अपनी तरफ से तो कोटा माधोसिंहजी के सुपुर्द कर दिया था, परन्तु शाही फरमान अभी उनको नहीं मिला था। अतः वे अभी स्थायी रूप से कोटे के राजा नहीं माने जासकते थे। हृदयनारायण को राव भोज ने कोटे की गद्दी पर बिठाया था, परन्तु अपनी स्थिति को स्थायी करने के लिये हृदयनारायण को शाही फरमान हासिल करना पड़ा था। बुरहानपुर की लड़ाई के पूर्व और पश्चात् जहाँगीर पहिले खुर्रम की बगावत के कारण और फिर महाबतखाँ की बगावत के कारण घोर संकट में पड़ा हुआ था। अतः ये वर्ष रावरतन के लिये फरमानप्राप्ति के निमित्त अनुकूल नहीं थे। इसके अतिरिक्त उसको यह भी भय होगा कि बागी खुरम तख्त पर बैठने के बाद अपने पिता के फरमान को कहीं रद्द न करदे। अतः दूरदर्शिता के साथ रावरतन चाहता था कि शाहजादा खुर्रम माधोसिंहजी के अनुकूल हो और तख्त पर बैठने के बाद उनको कोटे का राजा माने।

**माधोसिंहजी की संरक्षकता में खुर्रम**—बुरहानपुर से हारकर खुर्रम दक्षिण की ओर भागा, परन्तु फिर वह बुरहानपुर में कैद कर लिया गया[1]। रावरतन और महाबतखाँ दोनों बुरहानपुर के शासक

---

की लड़ाई में और फिर उसी के साथ मलिकअम्बर के खिलाफ चढ़ाई में सम्मिलित था। मलिकअम्बर से सन्धि होने के बाद वह काँगड़े को विजय करने के लिये शाही सेना के साथ भेजा गया था। (तुजुके जहाँगीरी–R. & B., जिल्द २ पृष्ठ २५) अब तक रावरतन को या सम्राट् जहाँगीर को उसके खिलाफ कोई शिकायत नहीं थी। जहाँ उसको भेजा गया, वह वीरता और स्वामिभक्ति के साथ लड़ा था। अतः रावरतन जैसे यशस्वी और प्रतिष्ठित नरेश के लिये भी जहाँगीर की हुकूमत में यह आसान काम नहीं था कि अपने भाई को हटाकर अपने लड़के को कोटे का शासक बनवा देता।

(१) वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २४६६।

नियत हुये। जब महाबतखाँ शाही दरबार में बुला लिया गया तो बुरहानपुर केवल रावरतन के ही अधिकार में रह गया[१]। खुर्रम की देखरेख करने के लिये रावरतन ने अपने छोटे पुत्र हरिसिंह को नियत किया, परन्तु उसने शाहजादे के साथ बहुत दुर्व्यवहार किया। वह खुर्रम से हवा करवाता था, हुक्का भरवाता था, और शाहजादा यदि इन्कार करता तो उसकी नाक पर मुक्का मार देता था। बेचारे को गरम रोटी खाने की भी फुरसत नहीं मिलती थी। इस व्यवहार से तंग आकर शाहजादे ने रावरतन से शिकायत की। तब रावरतन ने हरिसिंह को हटा कर कुँवर माधोसिंहजी को खुर्रम की निगरानी के लिये नियत किया, वृद्ध नौकर उसके पास रक्खे, और आज्ञा दी कि माधोसिंहजी तथा अन्य परिचर सब शाहजादे की आज्ञा का पालन करें। माधोसिंहजी ने शाहजादे के साथ आदरपूर्वक व्यवहार किया और उसके आमोद प्रमोद के लिये सब सामान जुटा दिये। यही नीति माधोसिंहजी के भावी वैभव और अभ्युदय का कारण बनी[२]।

---

(१) E. & D., जिल्द ६, पृष्ठ ४१२–१५।

(२) हरि कुमर दास जिम मोहिं रक्खें इहा।
कैद बिच कैद बाबा कहों मैं कहा ?
व्यजन दुरवात भरवात हुक्का बनैं।
हाँ करों जो न, नासा टिपोरे हनैं॥
पूपली सद्य खैबो न अवसर परहु।
कोहु अटकैं न तिहि सर्ब बदली करहु

× × ×

अप्प सुत माधवहिं रहन तँहँ अक्खयो।
पास तस और भट वृद्ध थप्पे प्रथित।
सूचि सुत सुभट सब करहु याको कथित।

× × ×

**खुर्रम की माधोसिंहजी से प्रतिज्ञा**—जहाँगीर ने रावरतन को हुक्म दिया कि बागी शाहजादे को शाही दरबार में हाजिर किया जावे, परन्तु रावरतन ने बीमारी का बहाना करके उसको नहीं भेजा। जब जहाँगीर माना ही नहीं तो रावरतन बहुत चिन्तित हुआ। एक

---

तात सासन सबहु अधिक आदर तनैं।
बैठिबे तास अब खास गद्दी बनैं॥
सयन पल्ल्यंक छुरकर्म भूखन बसन।
समय अनुसार ह्वै सद्य अभिमत असन॥
बढ़न कोटा बिभव बीज तब को बयो॥

वंशभास्कर तृतीय भाग, पृष्ठ २५१०–१२।

फारसी तवारीखों के अनुकूल बुरहानपुर से हारकर खुर्रम बालाघाट में रौनगढ़ पहुँचा और वहाँ बीमार होगया। उसका प्रधान सहायक अब्दुल्लाखां अनेक विफलताओं से निराश होकर फकीर बनगया और भगवद्भजन के लिये इन्दौर में जा बसा। गोलकुण्डा और बीजापुर दोनों ने बादशाह की अधीनता स्वीकार कर खुर्रम का साथ छोड़ दिया। ऐसी दशा में हतोत्साह होकर खुर्रम ने जहाँगीर से क्षमा याचना की। इस समय नूरजहाँ को महाबतखां की स्वामिभक्ति पर भी शंका होने लगी। उसके बढ़ते हुये बल और प्रतिष्ठा से उसको भय होने लगा। शाहजादा परवेज के साथ उसकी मित्रता और भी सन्देह का कारण बनी। ऐसी अवस्था में नूरजहाँ ने यही श्रेयस्कर समझा कि खुर्रम से सुलह करली जावे। अतः मार्च सन् १६२६ में सम्राट जहाँगीर की ओर से उसने खुर्रम को लिखवाया कि वह रोहतास और असीरगढ़ के दुर्ग बादशाह के सुपुर्द करे और अपने दोनों पुत्र दारा और औरंगजेब को दरबार में हाजिर करे तो उसको क्षमा प्रदान की जा सकती है, और उसको बालाघाट का शासक बनाया जा सकता है। खुर्रम ने उपरोक्त सब शर्तें स्वीकार करलीं। रोहतास और असीरगढ़ के दुर्ग शाही अधिकारियों के सुपुर्द कर दिये, और दसवर्षीय दारा तथा आठवर्षीय औरंगजेब दोनों पुत्र शाही दरबार में हाजिर किये। इसके अतिरिक्त असंख्य मोती, बहुमूल्य वस्त्र, शस्त्र और कितने ही हाथी, आदि भेंट किये। दोनों बच्चे नजर के सामान के साथ सम्वत् १६८३ के ग्रीष्म ऋतु में बादशाह के दरबार में पहुँचे। दोनों बच्चे नूरजहाँ बेगम के सुपुर्द किये गये, और खुर्रम को क्षमा प्रदान की गई।

तरफ शाही हुक्म था और दूसरी तरफ खुर्रम अपनी प्राणरक्षा के लिये रावरतन से प्रार्थना कर रहा था। उस समय रावरतन बुरहानपुर में नहीं था। उसने गुप्तरूप से बुरहानपुर के किलेदार द्वारकादास के पास पत्र भेजा कि खुर्रम को चुपके से कैद से निकाल दिया जावे। माधोसिंहजी के सद्व्यवहार से खुर्रम पहिले ही अत्यन्त सन्तुष्ट था। रावरतन के इस युक्तिपूर्ण साहस ने उसको और भी कृतज्ञता के पाश में बाँध दिया। माधोसिंहजी आदि बीमारी का बहाना कर खुर्रम ने अपने पास से हटा दिये और द्वारकादास की सहायता से वह चुपके से किले से निकल भागा। गुप्तरूप से कैद से निकलने के पूर्व उसने अपने हाथ में कुरान ली और भगवान को साक्षी करके रावरतन को पत्र लिखा कि "कारागार में माधोसिंह ने मुझे बहुत आदरपूर्वक रक्खा है और मालिक समझा है। मैं इसको विशेष राज्य देकर सम्मानित करूँगा[1]"।

---

अपने कनिष्ठ पुत्र मुरादबख्श के साथ वह बालाघाट का शासन करने के लिये नासिक पहुँचा[1]।

(१) अ–इकबालनामा, पृष्ट २३८–५२।
ब–E. & D., जिल्द ६, पृष्ट ४१६–१९।
स–बेणीप्रसाद—हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर, पृष्ट ३६३–९५।

(१) बुरहानपुर इत मुक्कल्यो स्व निदेस पत्रहु बेगही,
निज दण्डनायक द्वारकादिकदास कूरम तैं कही।
माधव कुमार भतीज केसव अन्यतर मिलवाइ कैं,
प्रच्छन्न खुरम हिं कढ्ढिदेहु निसीथ ओसर पाइकैं।
जानैं न कोहु स्वकीयजन अरु द्रंगजन न सुनैं जथा,
रचि त्यों प्रबन्ध निकासि रक्खहु साह संतति सर्वथा।
लक्खैरी अप्पन रक्खि सुत हरिसिंह पै हितलाइकैं,
आसान बुंदिय के बच्यो इम लेख लेहु लिखाइकैं।

**विकट स्थिति**—इस समय साम्राज्य की दशा डावाँडोल थी। बागी शाहजादा रावरतन ने नीतिपूर्वक कैद से भगा दिया था, जो अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। उधर महाबतखाँ ने अपने राजपूत सैनिकों की सहायता से जहाँगीर को कुछ अर्से के लिये अपने अधीन कर लिया था। वह नूरजहाँ की युक्ति और नीति के प्रताप से यद्यपि मुक्त हो गया था परन्तु शाही दरबार में, सेना में और प्रजा में खलबली मची हुई थी, और जनता प्रति क्षण घोर परिवर्तन की आशंका कर रही थी।

---

बुरहानपुर यह पत्र बिक्खत द्वारकादिकदास जो,
नृप पुत्र माधव तैं मिल्यौ नृप इष्ट अक्खि निकास जो।
मिलि निस्सलाक उभै कह्यो तिहिं साह सासन मारिबो,
नृपकै अभीष्ट तऊ तुम्हैं कछु रीति गुप्त निकारिबो।
हमरो कह्यो सुभ मन्नि जो हरिसिंह तैं रिस संहरो,
आसान हड्डुनैं उब्बरयो कर अटप लेख यहै करो।
लक्खैरि हड्डुन की पुरी नहिं गौड़ मासन सो लहैं,
रतनेस अब लिय देस इहिं लिपि तेहु दत्त बनें रहैं।
तब तुम निकास लहो तथा हमतैंहु तुष्ट नरेस ह्वै,
बलि पट्ट पाइ हमैं बढ़ावहुँ तो कृपा सुबिसेस ह्वै।
अवनीस प्रति तब लेख सुहि करि अंत बत्त लिखी यहैं,
कछु भार नाहि मदीय चित्तहु मंगिबो इक तोकहैं।
अति नम्र माधव मोहि मालिक सर्वथागिनि आदर्‌यो,
काराहु मैं मम चैन जिहिं मन बैन कायनतैंकर्‌यो।
महि भाग याहि बिसेस दे सब मुख्य के सनमानिहो,
आसान एह द्वितीय बाबा जान मोसिर आनि हो।
इम खुरम निज लिपि पत्र अप्पिय द्वारकादिकदास को,
बिच दे कुरांरव सोहँ कैं बिरच्यो बिसेस बिसास को।
कछु व्याधि के मिस मुख्य माधव आदि दूर सबै करे,
समुझाइ रच्छक अन्य समुचित धीमनाइ तहाँ धरे।

**खुर्रम का राज्याभिषेक और माधोसिंहजी की प्रतिष्ठा**—यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रही। जहाँगीर काश्मीर से वापिस

---

जिनकों बिसासि निसीथ सम्मत कुम्भ माधव जाइ कैं,
सो खुरम कढ्ढियो बिमग्ग लिखी सबै सुमिराइ कैं।
गिनि जन्म नबसुत साह को सु बहोरि बीजापुर गयो,
इत तास रच्छक वर्ग कों खिजि व्याज बंधन अप्पयो।
अरजी लिखी नृप कों इतै कढ़ि छन्न गो सुत साह को,
लिपि सोहि दिल्लिय भेजि जाहिर मोद संहरि लाहको।

वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २५२३-२६।

रावरतन के कार्यों का उपरोक्त वर्णन फारसी इतिहासों में नहीं मिलता। कारण यह है कि राजपूतों की वीरता का वर्णन करना मुसलमान लेखकों को रुचता नहीं था। राजपूतों की उदारता, वीरता, पराक्रम आदि दिव्य गुण उनकी दृष्टि म खटका करते थे। यही कारण है कि खुर्रम का उदयपुर पहुँचना, जगमन्दिर में निवास करना और प्रस्थान करते समय महाराणा कर्णसिंह से पगड़ी बदलना तथा महाराणा के छोटे भाई भीमसिंह को साथ लेना फारसी तवारीखों में नहीं पाया जाता। परन्तु ये बातें खुर्रम की पगड़ी, राजप्रशस्ति काव्य तथा स्थानीय परम्पराओं से इतनी पुष्ट हैं कि इनकी सत्यता पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। रावरतन के जीवन चरित्र में बुरहानपुर की रक्षा और माधोसिंहजी को स्वतन्त्र राजा बनाना तो फारसी तवारीखों और प्रत्यक्ष घटनाओं से सिद्ध है ही। विवादास्पद हो सकता है केवल खुर्रम का रावरतन के संरक्षण में कैद रहना और हरिसिंह तथा माधोसिंहजी के व्यवहार का हाल। सम्भव है कि माधोसिंहजी को अलग विस्तृत राज्य उनके पराक्रम के पुरस्काररूप में ही प्राप्त हुआ हो; परन्तु शाहजहाँ ने जब रावरतन को हुक्म दिया कि हरिसिंह को दरबार में हाजिर किया जावे, और रावरतन ने इस भय से उसको नहीं भेजा कि दुर्व्यवहार का स्मरण करके कहीं सम्राट् उसको मरवा न डाले और यह कहला भेजा कि हरिसिंह तो पागल होकर इधर उधर घूमता फिरता है, तो सम्राट् ने बूँदी के ७ परगने जब्त कर लिये*। यह बात सिद्ध करती है कि हरिसिंह से सम्राट् अत्यन्त अप्रसन्न था और माधोसिंहजी से अत्यन्त प्रसन्न। वास्तव में सूरजमल मिश्रण की खुर्रम कारावास कहानी निराधार नहीं कही जा सकती।

*वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २५४७।

लौटते हुये बीमार हुआ, और लाहौर से कुछ मील उत्तर की ओर मार्ग में ही उसका देहान्त होगया। फिर क्या था ? खुर्रम ने तत्काल उत्तर की ओर प्रयाण किया और अपने शक्तिशाली श्वसुर आसफजाह की सहायता से वह शाही तख्त पर बैठ गया। रावरतन के लिये इससे अधिक अनुकूल अवसर और क्या हो सकता था ? वह तत्काल दरबार में हाजिर हुआ और बादशाह को माधोसिंहजी की सेवाओं का स्मरण दिलाया। हृदयनारायण के पलायन के बाद रावरतन ने जहाँगीर के आदेश से माधोसिंहजी को कोटे का शासक नियत कर दिया था। इसकी अब शाहजहाँ से पुष्टि करवाली[1]। शाहजहाँ का माधोसिंहजी पर अनुराग देख कर रावरतन ने उनको आठ परगने और दिये और माधोसिंहजी को स्वतन्त्र राजा बनवा दिया। ये आठ परगने थे :— खजूरी, अरण्डखेड़ा, कैथून, आवाँ, कनवास, मधुकरगढ़, दीगोद व रहल[2]। माधोसिंहजी चँवर, छत्र, हाथी, घोडे, वस्त्र, आभूषण, आदि सम्पूर्ण राजसी उपकरणों के सहित कोटे के राजा बनें और उनकी माता भी उनके साथ निवास करने लगीं। ऐसा मालूम होता है कि हृदयनारायण

---

(१) अप्पहि दिय शासन पहिलैं इम दाय अधिक माधव कँह देहु।
कोटा मुख्य परगना नवकहिं इम लहि लखन रह्यो तिन एहु।

× × × ×

नृप दिय तत्थ महीसुत नत्तिन रक्खि अधिक माधव दिस राग।
साह हुकम माधवहित समुझि सु विभव दियउ तिहिं सबन बिसेस।
पुव्वहिं दिय कोटा रनजयपर पुनि बसुमय अब अट्ठ प्रदेस।
वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २५०६ तथा २५४०-४१-४३।

(२) खर्जूरी अरण्डखेटक, केथोनि रु आवा कनवास।
मधुकरगढ़, दिग्घोद रहल मिलि अष्टक यह ग्रामक सह आस॥
वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २५४३।

का राज्य केवल कोटा परगना पर ही होगा। माधोसिंहजी की विशेष वीरता तथा स्वामिभक्ति से प्रसन्न होकर शाहजहाँ ने उपरोक्त आठ परगने बूँदी राज्य से अलग करके माधोसिंहजी को स्वतन्त्ररूप से दिलाये होंगे।

**रावरतन का देहान्त**—सम्वत् १६८८ (सन् १६३१) में रावरतन का देहान्त हुआ। उस समय रावरतन सरकार बालाघाट की रक्षा के लिये नियत था और माधोसिंहजी उसके साथ थे। इससे कुछ अर्से पहिले मलका मुमताज महल का देहान्त हो चुका था और शाहजहाँ दक्षिण में ताप्ती नदी के किनारे खेमे डाल कर अपने वियोग सन्ताप को शान्त करने का यत्न कर रहा था। जिस समय शाहजहाँ किश्ती में बैठा हुआ ताप्ती में सैर कर रहा था तो उसको माधोसिंहजी का पत्र मिला कि रावरतन का स्वर्गवास होगया[1]।

**कोटा बून्दी से पृथक् हुआ**—अनुमानतः बुरहानपुर की विजय के बाद ही जहाँगीर ने माधोसिंहजी को कोटे का राजा स्वीकार कर लिया था। खुर्रम के अन्तिम पराजय का समाचार सुनकर जहाँगीर बहुत प्रसन्न हुआ था, और रावरतन को 'रामराज' की पदवी प्रदान की थी और उसका मन्सब बढ़ा कर उसे पंजहजारी मन्सबदार और एक हजार सवारों का अफ़सर नियत किया गया था। रावरतन ने माधोसिंहजी को मन्सब दिलवाते समय माधोसिंहजी के लिये या तो कोटा राज्य का फरमान हासिल कर लिया होगा या कम से कम बादशाह की अनुमति प्राप्त कर ली होगी। वह इस बात को जानता था कि खुर्रम केवल जहाँगीर का ज्येष्ठ पुत्र ही नहीं है बल्कि उसको

(१) अ– बादशाहनामा पृष्ठ ४०१।
ब– मुंशी मूलचन्द, पृष्ठ ७६–८०।

आसफजाह का बल है, और वह स्वयम् योग्य, अनुभवशील और शक्तिशाली है। अतः जहाँगीर के बाद वह बादशाह बनेगा। रावरतन को यह शंका थी कि बुरहानपुर की लड़ाई को याद करके कहीं तख्त पर बैठने के बाद खुर्रम माधोसिंहजी से कोटे का राज्य वापिस छीन ले, इसलिये उसने खुर्रम के साथ कैद में आदर और प्रेम का व्यवहार किया था और माधोसिंहजी के लिये यह प्रतिज्ञा करवाई थी कि उनको विशेष भूमि देकर सम्मानित किया जावेगा। जब शाहजहाँ ने रावरतन के देहान्त की खबर सुनी तो उसने माधोसिंहजी को विधिपूर्वक कोटे का अलग राजा मान लिया और इस विषय का फरमान जारी किया[1]।

यों तो तेरहवीं शताब्दी के मध्य से अर्थात् जीतसिंह के समय से कोटा प्रायः पृथक् ही था, परन्तु कोटे के शासक बूँदी नरेशों की नौकरी करते थे, और पूर्णरूपेण स्वतन्त्र नहीं थे। राव सुर्जन ने मुसलमानों से जीत कर कोटा अपने पुत्र भोज के सुपुर्द कर दिया था[2]। सम्भव है अकबर ने भोज को कोटा राज्य का फरमान देकर जाब्ते में यह बात पूरी की हो कि कोटा बादशाहों का दिया हुआ है। जब भोज गद्दी पर बैठा तो उसका पुत्र हृदयनारायण कोटे का राजा बना और उसने शाही फरमान भी प्राप्त किया[3]। परन्तु फिर भी हृदयनारायण रावरतन का किसी अंश में मातहत था। अतः जब वह झूसी की

(१) व माधोसिंह पिसरे रावरतन रा ब इजाफा पान्सदी जात व पान्सद सवार व मन्सब दो हजार व पान्सदी हजार व पान्सदी सवार बरनवाख्ता परगना कोटा व पलायथा रा दर जागीर ओ मुकर्रर गर्दानीदन्द।
—बादशाहनामा पृष्ठ ४०१।

(२) गैपरनाथ का शिलालेख परिशिष्ट ८।

(३) टॉड—राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५५३, फुट नोट।

लड़ाई से भाग गया तो सम्राट् जहाँगीर ने रावरतन को उपालम्भ दिया था[1]।

अब माधोसिंहजी की हैसियत वह नहीं रही जो हृदयनारायण की या उससे पहिले के कोटा नरेशों की थी। माधोसिंहजी पूर्णरूप से कोटे के स्वतन्त्र राजा बनाये गये और उसका सम्बन्ध सीधा मुगल सम्राट् से स्थापित होगया। अब कोटा किसी भी अंश में बूँदी का मातहत नहीं रहा।

**माधोसिंहजी का अभिषेक**—अपने जीवन काल में ही रावरतन ने माधोसिंहजी को सम्पूर्ण राजसी उपकरण सहित आठ परगने देकर कोटे का राजा बनवादिया था। सम्भव हैं तभी से वे महाराजाधिराज कहलाने लग गये हों[2]। परन्तु अधिक सम्भावना यह है कि पूर्णरूपेण स्वतन्त्र होते हुये भी अपने पिता की विद्यमानता में प्राचीन मर्यादा के अनुसार उन्होंने महाराजाधिराज की पदवी धारण नहीं की होगी और सन् १६३२ (सम्वत् १६८८) में वे सर्वप्रथम 'महाराजाधिराज' कहलाने लगे होंगे, और इस अवसर पर उनका राज्याभिषेक अवश्य हुआ होगा।

**मन्सब में वृद्धि**—इस अवसर पर शाहजहाँ ने माधोसिंहजी को खिलअत (सम्मान-सूचक पोशाक) प्रदान की और उनके मन्सब में पाँच सौ की तथा सवारों में भी पाँच सौ की वृद्धि की। इस प्रकार वे अब २५०० के मन्सबदार और २५०० सवारों के अफसर बन गये[3]।

---

(१) वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २४९५–९६।

(२) विनोद (पलायथा) का ताम्रपत्र ऐतिहासिक दृष्टि से विश्वसनीय नहीं है। देखो परिशिष्ट संख्या १०।

(३) (अ) मुंशी मूलचन्द पृष्ठ ८०।
(ब) बादशाह नामा पृष्ठ ४०१।

**कोटा राज्य की प्रारम्भिक सीमा**—माधोसिंहजी के अभिषेक के समय उनका राज्य छोटा सा था। दक्षिण में मुकन्दरा की पर्वत श्रेणी तथा शेरगढ़ तक इसकी सीमा फैली हुई थी। पूर्व में पलायथा और माँगरोल तक पहुँचा हुआ था। उत्तर में बड़ोद तक था और पश्चिम में चम्बल नदी के बायें किनारे पर केवल नान्ता आदि पाँच गाँव थे।

# राव माधोसिंहजी और उनकी साम्राज्य सेवा

**खाँजहाँ लोदी का विद्रोह**—विधिपूर्वक कोटे की गद्दी पर बैठने से पहिले ही माधोसिंहजी अपनी वीरता और स्वामिभक्ति का शाहजहाँ को परिचय दे चुके थे। यह अवसर उनको खाँजहाँ लोदी के उत्पात ने दिया था।

खाँजहाँ लोदी का असली नाम पीरखाँ लोदी था और वह दौलतखाँ लोदी नामक अकबर के एक अफसर का पुत्र था। जहाँगीर के समय में वह अपनी योग्यता और पराक्रम के कारण पंजहजारी मन्सबदार बनगया था और "खाँजहाँ" की उपाधि से अलंकृत हो चुका था। खुर्रम की बगावत के बाद दक्षिण में शान्ति स्थापित करने के लिये जहाँगीर ने उसको भेजा था। खुर्रम के विद्रोह और महाबतखाँ के उत्पात से जब साम्राज्य की स्थिति डाँवाडोल हो रही थी तो खाँजहाँ लोदी ने यह अपने अभ्युदय के लिये अनुकूल अवसर समझा और वह बागी होगया। शाहजहाँ ने तख्त पर बैठने पर उसको क्षमा कर दिया। वह दरबार में भी हाजिर होगया परन्तु सात आठ महीने बाद फिर वह दिल्ली से भाग गया और विद्रोह करने लगा[१]।

**माधोसिंहजी शाही सेना में**—उसको दबाने के लिये बादशाह ने हिन्दू और मुसलमान सैनिक रवाना किये जिनमें राव माधोसिंहजी भी शामिल थे। धौलपुर के पास खाँजहाँ लोदी को शाही सेना ने जा दबाया, परन्तु वह चम्बल पार करके बुन्देलखण्ड

---

(१) बादशाह नामा (E. & D. जिल्द ६, पृष्ठ ७-८)

और गोंडवाने होता हुआ दक्षिण में पहुँच गया और निजामुल्मुल्क से जा मिला।

**माधोसिंहजी सेनाग्र भाग के नेता**—शाही सेना उसका पीछा करती रही। माधोसिंहजी शाही सेना के उस हिस्से के हाकिम थे जो आगे चलता था। मुसलमान जनरल दूसरे हिस्से के साथ कुछ फासिले पर पीछे पीछे चलते थे। खाँजहाँ लोदी का कई जगह सामना हुआ और वह कई जगह हारा तो भी उसका साहस भंग नहीं हुआ। वह दक्षिण से फिर उत्तर की ओर मुड़ा। उज्जैन के पास उसने लूट मार मचाई और शाही सेना के दबाने से बुन्देलखण्ड पहुँचा। माधोसिंहजी थोड़ी सी सेना के साथ सर्वत्र उसका पीछा करते रहे।

**बर्छी का वार**—खाँजहाँ लोदी भाग कर कालिंजर पहुँचा, परन्तु वहाँ भी किलेदार ने उसको बुरी तरह से हराया। अन्त में वह जीवन से निराश होगया और अपने कितने ही साथी और पुत्रों के मारेजाने से सन्तप्त होकर उसने मरने या मारने की ठान ली। केन नदी के किनारे पर कालिंजर से उत्तर में तालसिंघारे के पास उसकी शाही सेना से मुठभेड़ हुई। उसने अपने साथियों से कह दिया कि मेरे जीवन का अन्त निकट है। इसलिये जो अपने प्राण बचाकर जाना चाहें, जा सकते हैं। अधिकांश भाग गये; परन्तु कितने ही वीर सैनिकों ने उसका साथ दिया। माधोसिंहजी के नेतृत्त्व में शाही सेना का अग्र भाग आगे बढ़ा और मुठभेड़ हुई। खाँजहाँ लोदी और उसके दो वीर पुत्र अजीज और ऐमाल तीनों अपने शूरवीर सैनिकों के साथ वीरोचित मृत्यु का आलिंगन करने के लिये तैयार ही थे। उधर माधोसिंहजी हाड़ा भी प्राणों की बाजी लगा कर वीरता का प्रदर्शन

करने के लिये उत्सुक थे। खाँजहाँ लोदी ने अपने दो हाथियों को सामने करके आड़ में से वार करने शुरू किये। उधर माधोसिंहजी युद्धावेश से उन्मत्त होकर रणकौशल दिखाने लगे। जब खाँजहाँ लोदी ने देखा कि माधोसिंहजी उसके खून के प्यासे बने हुये हैं, और उसको मारने पर तुले हुये हैं तो वह अपने घोड़े से उतर पड़ा और जान हथेली पर रख कर घोर संग्राम करने लगा। इस संघर्ष में माधोसिंहजी आगे बढ़े और उसको बर्छी से छेद डाला। फिर क्या था? माधोसिंहजी के सैनिकों ने खाँजहाँ लोदी और उसके दोनों पुत्रों के टुकड़े कर डाले। तीनों बाप बेटों के सिर काट कर बादशाह की नजर किये गये[1]।

**चार या सतरह परगने मिले और मन्सब बढ़ा**—माधोसिंहजी को बादशाह ने जीरापुर, खैराबाद, चेचट और खिलचीपुर के चार परगने दिये थे। खाँजहाँ लोदी को मारने के बाद उनके मन्सब

---

(१) अ– दर ईं हंगाम शेरे बेशए–बबंग सैयद मुजफ्फरखाँ हरावले लश्करे फ़ीरोज़ी के बा माधोसिंह ब गिरोहे अज़ गुर्ज़ बरदारान व दीगर बन्दगाने दरगाह······पेश पेश लश्करे मन्सूर मी रफ्त·········बा माधोसिंह व जमये अज गुर्ज़ बरदारान········आवेज़िश नमूदन्द········ व दर असनाये ज़दो खुर माधोसिंह बर्छा बरोजद।

बादशाहनामा, जिल्द १ भाग २, पृष्ठ ३४८–५० (E. & D. Vol. VII. pp. 20-22.)

ब– आयो उलटत उदधि इक्क बीरहु अरि अड्डन
जो खल खानजिहान हन्यो निर्दय बढ़ि हड्डन।
परि दुऔर भट प्रचुर लुत्थि पर लुत्थि बिलग्गिय
पल रासिन लहि पंति भूख पिसितासिन भग्गिय।
दुस्सह भजाइ दक्खिन दलन बलन विजै बहि चलन चहि।
पहुँच्यो हजूर माधव प्रथित लोदी सिर सह कित्ति लहि॥

वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २५६५।

में ५०० की वृद्धि की। अर्थात् वे तीन हजारी मन्सबदार बना दिये गये[1]। ठाकुर लक्ष्मणदान ने लिखा है कि इस वीरता के उपलक्ष्य में माधोसिंहजी को १७ परगने और मिले थे, जिनके नाम ये हैं:—

(१) रामगढ़, (२) रहलावण, (३) कोटड़ा, (४) सुलतानपुर, (५) बड़वा, (६) माँगरोल, (७) खैराबाद, (८) सुकेत, (९) चेचट, (१०) मण्डाना, (११) राणपुर, (१२) नीमोदा, (१३) सोरसन, (१४) पलायथा, (१५) कोयला, (१६) आटोण और (१७) सोरखण्ड। इनमें से सुलतानपुर, रामगढ़ और पलायथा तो पहिले ही राव सुर्जन ने केसरखाँ और डोकरखाँ को मारने के बाद दुबारा जीत लिये थे। सम्भव है कि ये फिर कोटे से अलग होगये हों और बादशाह ने पुनः जीतलेने की अनुमति दे दी हो। माधोसिंहजी के देहान्त के समय उपरोक्त सब परगने उनके राज्य में सम्मिलित थे, और यह पता नहीं चलता कि ये उनको कब मिले ? अतः खाँजहाँ लोदी को मारने के बाद इनका मिलना बहुत सम्भव मालूम होता है।

**पुत्री का विवाह**—खाँजहाँ लोदी को मारने के बाद बहुत अर्से तक माधोसिंहजी दिल्ली में रहे और फिर बादशाह से इजाजत लेकर अपनी पुत्री का विवाह करने के लिये कोटे आये। जयपुर के

---

(१) अ– जीरपुर खैरआबाद जँहँ तीजो चेचत आढ्यतम॥
ए त्रय माधव अर्थ प्रथित चोथो खलजीपुर।
चउहि अप्पि हित चाहि आनि बिरुदन उछाह उर॥
वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २५६४।

ब– मुनसुब दिय मुगलेस हड्ड कहँ तीनहजारी।
वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २५६५।

महाराजा जयसिंह के साथ सम्बन्ध निश्चित हुआ। जयसिंह बरात बना कर कोटे आया, और धूमधाम से विवाह हुआ[१]।

**बुन्देलखण्ड में माधोसिंहजी**—सम्वत् १६९२ (सन् १६३५) में वीरसिंह बुन्देला के पुत्र जुझारसिंह के विरुद्ध जब शाहजहाँ ने सेना भेजी तो माधोसिंहजी भी उसके साथ गये थे। जुझारसिंह बहुत धनवान और बलवान राजा था। एक बार पहले भी वह शाहजहाँ की आज्ञा की अवहेलना कर चुका था। तब शाही सेना ने उसका दमन करके उससे क्षमा याचना करवाई थी और उसको दण्ड के रूप में बहुत सा धन देना पड़ा था। शाही सेना के साथ उसको अपनी राजपूत सेना भी दक्षिण में लड़ने के लिये भेजनी पड़ी थी[२]। परन्तु जुझारसिंह चुप बैठने वाला पुरुष नहीं था। थोड़े दिन बाद ही उसने गोंडों की राजधानी चौरगढ़ पर आक्रमण किया और वहाँ के राजा प्रेमनारायण को मार कर दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया तथा उसकी दस लाख की सम्पत्ति छीन ली। उसके पुत्र ने शाहजहाँ से अपील की तो शाहजहाँ ने उसका दमन करने के लिये तीन ओर से सेना भेजी। बँदायूँ से १०,५०० सैनिकों के साथ सैयद खानेजहाँ रवाना हुआ। उत्तर से ६,००० सेना लेकर अब्दुल्ला खानबहादुर फीरोज जंग ने प्रस्थान किया, और दक्षिण पश्चिम से इतनी ही सेना

---

(१) दिल्लीपुर बहुदिवस रह्यो माधव सेवन रत,
प्रतिदिन अधिक प्रसन्न साह रक्खिय नतिसंगत।
सुता बिबाहन सिक्ख पाइ कोटा आयऊ पुनि,
जयसिंहहिं जामात चहि रु बुल्ल्यो उपदा चुनि।
वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ट २५६५।

(२) सर जे. एन. सरकारः हिस्ट्री ऑफ औरंजेब, जिल्द १, पृष्ठ १७।

लेकर खानेदौराँ ने कूँच किया[१]। प्रधान सेनानायक औरंगजेब बनाया गया[२]। शाही सेना की सहायता देने के लिये सीसोदिया, राठौड, कछावा, और हाड़ा राजपूतों को भी आदेश हुआ[3]। माधोसिंहजी के नाम भी फरमान आया और वे १,५०० सवारों के साथ रवाना हुये जिनमें राजपूत ही नहीं, परन्तु मुगल, पठान, आदि मुसलमान भी शामिल थे[४]। शाही सेना ने बुन्देलखण्ड की राजधानी ओरछा पर कब्जा कर लिया। जुझारसिंह भाग कर धमूनी के किले में चला गया। यहाँ भी शाही सेना ने उसको आ दबाया तो विन्ध्याचल और नर्मदा नदी को पार करके गोंडवाने में चौरगढ़ पहुँच गया। धमूनी को घेर कर शाही सेना ने अपने अधिकार में कर लिया। यहाँ के बारूदखाने में आग लगाई गई जिसमें ३०० राजपूत मारे गये[५]।

**माधोसिंहजी और जुझारसिंह की लड़ाई**—शाही सेना ने जुझारसिंह का पीछा करना जारी रक्खा और माधोसिंहजी हरावल में नियत किये गये। गोंडों की राजधानी चाँदा की सीमा पर जुझारसिंह ने मुकाबला किया, और बड़ी वीरता से लड़ा। जुझारसिंह के साथ उसकी वृद्ध माता और पत्नियों ने भी अपूर्व वीरतापूर्वक संग्राम किया।

---

(१) सर जे० एन० सरकार–हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, पृष्ठ १९.

(२) अब्दुलहमीद–बादशाह नामा, प्रथम जिल्द का द्वितीय भाग, पृष्ठ ९९–१००।

(३) अब्दुलहमीद–बादशाहनामा, प्रथम जिल्द का द्वितीय भाग, पृष्ठ ९६, ९७,९९,१००।

(४) (अ) मुंशी मूलचन्द, पृष्ठ ८१–८२।

(ब) अब्दुलहमीद–बादशाहनामा, प्रथम जिल्द का द्वितीयभाग, पृष्ठ ९६, ९७,९९,१००,

(५) उपरोक्त (ब) पृष्ठ १०८–१०।

पराक्रम का अद्भुत दृश्य देख कर शाही अफसरों के पैर छूटने लगे। तब माधोसिंहजी आगे बढ़े और स्वयम् जुझारसिंह से जाभिड़े। बहुत देर तक दोनों शूरवीरों में शस्त्रों के वार होते रहे। अन्त में जुझारसिंह खेत छोड़ कर भाग निकला। इस युद्ध में उसकी माता भी आहत होकर मर गई[1] और वह निरन्तर दौड़ धूप और युद्धश्रम से क्षीण होकर गोंडों के हाथ पड़ गया जिन्होंने उसके और उसके ज्येष्ठ पुत्र विक्रमाजीत के सिर काट डाले, और शाही अफसरों के नजर किये। बादशाह ने इन सिरों को अपने खेमे के दरवाजे पर कई दिनों तक लटकाये रक्खा[2]।

**माधोसिंहजी की वापसी और फिर हाजिरी**—बुन्देलखण्ड की विजय के बाद माधोसिंहजी वापिस कोटे आये और लगभग दो वर्ष तक अपनी राजधानी में ही रहे। सम्वत् १६९४ (सन् १६३७) में फिर उनके नाम फरमान आया और अपने छोटे भाई हरिसिंह के साथ जो इस समय गूगेर का राजा था, सेना लेकर बादशाह से मिलने

(१) माधोसिंह वल्द रावरतन के दर फोजे हरावल खानेदौराँ बूद। अज यमीन नेकनाम जिलो अन्दाख्ता जूकें रा ब आबे तेगे आतिश बार ग़रीक़ बहरे फ़ना गरदानीद। बक़ीयत उस्सैफ़ ताबे सदमाते जंग आज़मायाने जफर निशां नयावुर्दा रजते क़हक़री नमूदन्द।

—बादशाहनामा, जि० १, द्वितीय भाग, पृष्ठ ११३।

चूं बाद अज नवरदीदन पंजशशकिरोह सिपाहिये मुखालिफ नमूदार शुद खाने दौरां सैयद मुहम्मद पिसरे कलाँने खुद रा बा माधोसिंह··· ·········व पांसद सवार मुगल बर सबीले ताजील तअय्युन नमूद। ·············दरई असना गिरोह मजकूर दर रसीदा जमये रा ब तेग़ोसिना अज हम गुज़रानीदन्द।

—बादशाहनामा, जि० १, द्वितीय भाग, पृष्ठ ११५

(२) अब्दुलहमीद: बादशाहनामा, जि० १, द्वि० भाग, पृष्ठ ११६,११७।

के लिये रवाना हुये। इस समय शाहजहाँ सहसवाँ जिला सौरों में सिंहों का शिकार कर रहा था। माधोसिंहजी और हरिसिंह वहाँ पहुँचे। दोनों भाइयों ने एक एक हाथी बादशाह के नजर किया। बादशाह की नौकरी में माधोसिंहजी छः महीने तक रहे और फिर कोटे वापिस आये।

**कन्धार के दो विफल घेरे**—सैनिक और व्यापारिक दृष्टि से कन्धार मुगल साम्राज्य के लिये महत्त्वपूर्ण स्थान था। उधर ईरान राज्य के लिये भी इसका महत्त्व उतना ही था। अतः इसके अधिकार के लिये दोनों राज्यों में निरन्तर संघर्ष हुआ करता था। जहाँगीर के शासनकाल में सन् १६२३ में ईरान की सेना ने इसको मुगल सम्राट् के किलेदार अब्दुलअजीजखाँ से छीन लिया। इसके १५ वर्ष बाद ईरान बादशाह के किलेदार अलीमर्दान खाँ ने स्वार्थवश यह किला मुगल सरकार के सुपुर्द कर दिया और स्वयम् मुगल साम्राज्य का एक बड़ा हाकिम बन गया[1]। ईरान के बादशाह शाहअब्बास ने कन्धार पर पुनः अपना अधिकार स्थापित करने के लिये सेना भेजी, और बहुत अर्से तक लड़ाई होने के बाद फिर ईरानियों का इस पर कब्जा होगया। यह समाचार शहाजहां को सितम्बर सन् १६३८ को मिला। तब उसने लाहोर से सादुल्लाखां के नेतृत्व में और मुलतान से औरंगजेब की अध्यक्षता में दो सेनायें भेजी। ये दोनों सेनायें भेरा नामक स्थान पर मिलीं[2]। १६ मई सन् १६३९ को कन्धार के घेरा डाला, परन्तु औरंगजेब हार गया और ५ सितम्बर को घेरा उठा लिया गया। इससे औरंगजेब बहुत लज्जित हुआ। सन् १६४१ में औरंगजेब के नेतृत्व में दूसरा घेरा डाला गया किन्तु फिर भी विफलता हुई[3]।

---

(१) सर जे० एन० सरकार—हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द १, पृष्ठ १३१।
(२) उपरोक्त, पृष्ठ १३३–४२।
(३) उपरोक्त, पृष्ठ १४३–५८।

**तीसरा घेरा**—औरंगजेब की विफलता से उसके प्रतिद्वन्द्वी दाराशिकोह को बहुत हर्ष हुआ और शाहजहाँ को औरंगजेब पर बहुत क्रोध आया। सन् १६४३ के नवम्बर में तीसरे घेरे की तैयारियाँ की गई। एक विशाल सेना दाराशिकोह के नेतृत्व में रवाना हुई। इस सेना ने किले पर चार आक्रमण किये, परन्तु सफलता न हुई। सात महीने के निरन्तर युद्ध के बाद दाराशिकोह निराश, श्रान्त और लज्जित होकर वापिस आया[1]।

**माधोसिंहजी कन्धार में**—पहिले घेरे की तैयारी होते समय ही माधोसिंहजी को अपनी सेना के साथ शाही सेना में सम्मिलित होने का हुक्म मिल गया था। शाही फरमान के साथ सम्मानार्थ माधोसिंहजी के लिये एक नक्कारा, निशान, चाँदी के जेवर से अलंकृत एक घोड़ा और एक खिलअत भेजी गई। फरमान मिलते ही माधोसिंह जी १,५०० सवारों के साथ रवाना होकर दिल्ली पहुँचे, और वहाँ से शाही सेना के साथ १,०४७ हिजरी, सम्वत् १६९४ (सन् १६३७ ई.) को काबुल पहुँचे[2]। वहाँ से आगे बढ़ कर कन्धार के घेरे में सम्मिलित हुये।

**माधोसिंहजी के कार्य**—जब कन्धार का घेरा भयंकर रूप धारण करने लगा तो शाहजहाँ स्वयम् लाहोर पहुँच गया और वहाँ से घेरे का संचालन करने लगा। माधोसिंहजी निरन्तर ६ महीने तक लड़ कर ३ शव्वाल सन् १०४८ हिजरी, सम्वत् १६९५, (सन् १६३८ ई०)

(१) ईश्वरीप्रसाद—ए हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, पृष्ठ ५७७-७९।

(२) माधोसिंह वल्द रावरतन ब खिलअत व अस्प बा ज़ीन नुक़रा व नक्कारा रुख़सत नमूदन्द।

अब्दुलहमीद लाहोरीः बादशाहनामा, द्वि० भाग, पृष्ठ ३७

को लाहोर गये। वहाँ दस दिन तक बादशाह के पास ठहरे,[1] और घेरे के सम्बन्ध में आवश्यक आज्ञा लेकर कन्धार चले गये। फिर निरन्तर एक वर्ष तक कन्धार में लड़ते रहे। घेरे के संचालन के विषय में जरूरी हुक्म प्राप्त करने के लिये २५ शव्वाल १,०४९ हिजरी (सम्वत् १,६९६ सन् १६४० ई०) को वे फिर लाहोर बादशाह के पास गये। बातचीत करके फिर कन्धार पहुँच गये। पुनः एक वर्ष तक घेरे में शामिल रहे एवम् (१७ रबीउलअव्वल १,०४८ हिजरी से २९ शव्वाल १,०५० हिजरी तक) लगभग २॥ वर्ष तक वे कन्धार के घेरे में लड़े। इस अर्से में वे दो बार बादशाह के पास सलाह करने के लिये भी गये। इससे प्रकट होता है कि शाहजहाँ माधोसिंहजी पर विश्वास तो करता ही था, परन्तु उनको घेरे के संचालन के सम्बन्ध में विशेषज्ञ भी मानता था।

**माधोसिंहजी की सम्मान-वृद्धि**—सन् १६४१ में जब वे तीसरी बार बादशाह से मिलने के लिये लाहोर गये तो एक महीने तक वहाँ रहे। कन्धार के घेरे में जो उन्होंने वीरता, स्वामिभक्ति और निपुणता दिखलाई थी, उसके उपलक्ष में उनके मन्सब में ५०० मन्सब

---

(१) हुक्म फरमूदन्द के ब बहीरः रफ़्ता तवक्कुफ़ गुज़ीनद- व हरगाह फ़रमाने वाला ब सिदूर पैवन्दद रवानये काबुल शवद- व वज़ीरखाँ व सरदारखां व जफरखां व माधोसिंह……………………मुअैय्यन गश्तन्द।

अब्दुलहमीद–बादशाहनामा, द्वि० भाग, पृष्ठ १८१।

बादशाहज़ादयेः वालातिबार मुरादबख्श बा सरदारखां व माधोसिंह वल्द रावरतन व दीगर बन्दहा अज़ काबुल आमदा ब तलसीम अतबये दौलत मुस्तसअद गश्त।

अब्दुलहमीदः द्वितीय भाग, पृष्ठ २१७

(२) अब्दुलहमीद–द्वितीय भाग, पृष्ठ २२२–२२४।

ज़ाती और ५०० सवारों की वृद्धि की गई[1]। १७ शव्वाल १,०५१ हिजरी को फिर वे लाहोर गये। इस समय कन्धार के घेरे का स्वरूप मुगल सम्राट् की दृष्टि से सन्तोषजनक था, और ऐसा प्रतीत होता है कि इसका कुछ श्रेय माधोसिंहजी को भी होगा। क्योंकि इस समय फिर उनके मन्सब में ५०० सवारों की वृद्धि की गई[2]।

**काँगड़ा के आक्रमण में माधोसिंहजी**— इस समय शाहज़ादा मुराद के नेतृत्व में काँगड़ा पर आक्रमण करने के लिये एक बहुत बड़ी सेना भेजी गई थी। ऐसा अनुमान होता है कि माधोसिंहजी भी मुरादबख़्श के साथ इस आक्रमण में नियत किये गये थे। आक्रमण का अन्त होने के पश्चात् माधोसिंहजी के मन्सब में ५०० सवारों की वृद्धि और की गई थी[3]।

**बल्ख और बदख़शाँ का आक्रमण**—काबुल के उत्तर में यह प्रदेश हिन्दुकुश की श्रेणी और ऑक्सस नदी के बीच में स्थित है। पूर्वी भाग बदख़शाँ कहलाता है, जिसमें अधिकांश पहाड़ियाँ और घाटियाँ हैं। इसमें नाममात्र की आबादी और थोड़ी सी खेती होती है। पश्चिमी भाग का नाम बल्ख है, जो उपजाऊ तथा समस्थल है।

---

गुज़ारिश ख़ुजिस्ता जशन समशी वज़न

(१) रोज़े पंज़ शुंबः नोज़दहुम शव्वाल सन् हज़ार व पिंजा।

नहुम (ज़ीउलक़दह) माधोसिंह वल्द रावरतन ब इजाफ़ए पान्सद सवार ब मनसबे सेह हज़ारी दो हजार व पान्सद सवार सर बलन्दी याफ्त।

अब्दुलहमीद, २, २२४।

(२) द्वाज़ दहुम (जमादि उस्सानियः) माधोसिंह हाड़ा ब इजाफ़ए पान्सद सवार ब मनसबे सेह हज़ारी सेह हज़ार सवार सर बर अफ़राख़्त।

अब्दुलहमीद, २, ३०८।

(३) मुंशी मूलचन्द, पृष्ठ ८६।

सन् १६४२ में इस देश की गद्दी पर नजरमुहम्मद बैठा। यह योग्य शासक सिद्ध नहीं हुआ और प्रजा में बहुत असन्तोष बढ़ गया। देश के कई भागों में विद्रोह खड़ा होगया और सेना ने भी बागी होकर नजर-मुहम्मद के पुत्र अब्दुलअजीज को बादशाह घोषित कर दिया। शाहजहाँ इस प्रदेश को अपने पैतृक राज्य का एक अंश मानता था। बाबर का यहाँ पर राज्य था और इसी देश में होकर तैमूर की राजधानी समरकन्द को रास्ता जाता था। अतः बल्ख और बदख्शाँ को जीत कर अपने राज्य में मिलाने के लिये शाहजहाँ बहुत उत्सुक था[1]। जून सन् १६४५ में बल्ख बदखशाँ पर आक्रमण करने की तैयारियाँ की जाने लगीं। अक्टूबर सन् १६४५ में एक बहुत बड़ी राजपूत सेना के साथ राजा जगतसिंह ने काबुल से कूँच किया और खोस्त का जिला जीत कर वहाँ पर एक किला बनवाया जिसकी रक्षा के लिये कुछ राजपूत सैनिकों को नियत करके वह वापिस आया[2]।

**माधोसिंहजी के नाम फरमान**—जून सन् १६४६ में आक्रमण की भारी तैयारियाँ होने लगीं। शाहजादा मुरादबख्श के नेतृत्व में ५०,००० सेना सुसज्जित हुई। राजपूत राजाओं के नाम शाही सेना के साथ कूँच करने के लिये फरमान जारी हुये। इस समय माधोसिंहजी लाहोर में थे। अनुमान होता है कि काँगड़ा का आक्रमण सफलतापूर्वक समाप्त होने के बाद माधोसिंहजी लाहोर चले गये होंगे। यही कारण है कि उनके नाम जो फरमान जारी हुआ था, उसमें लिखा था कि "माधोसिंह हाड़ा लाहोर से बल्ख को रवाना हो[3]"।

---

(१) अब्दुलहमीद, जिल्द २, पृष्ठ १५२।
(२) उपरोक्त, पृष्ठ ४६२–६६।
(३) व तबलीग़ शुद के माधोसिंह हाड़ा अज़ दारोसल्तनते लाहोर ब काबुल निज्द अमीर-उल-उमरा ब सितादन्द।
अब्दुलहमीद, जिल्द २, पृष्ठ ४२३।

**माधोसिंहजी हरावल में**—काबुल पार करने के बाद शाही सेना को व्यवस्थित किया गया। बल्ख और बदख्शाँ का आक्रमण एक असाधारण प्रयत्न था, और जिस देश में सेना को प्रवेश करना था उसका हिन्दुस्तानी सैनिकों को कुछ अनुभव नहीं था। अतः सेना के अग्र भाग में अर्थात् हरावल में असाधारण वीर नेताओं की और दुर्दान्त सैनिकों की आवश्यकता थी। मुगल सेना में प्रायः यह प्रथा होगई थी कि जहाँ मरने मारने का स्थान होता था, वहाँ राजपूतों को नियत किया जाता था। यदि राजपूत अधिक संख्या में मारे जाते तो मुसलमान सम्राट् अपनी कोई हानि नहीं समझते थे और यदि विजय होजाती थी तो साधारण पुरस्कार द्वारा उनको सन्तुष्ट कर दिया जाता था। इस अवसर पर भी हरावल में राजपूत लोग ही रक्खे गये। सेनाग्र भाग के तीन हिस्से किये गये। पहले हिस्से का हाकिम बूँदी का रावराजा शत्रुसाल बनाया गया। दूसरे का नेता राजा विट्ठलदास राठोड़ नियत हुआ, और तीसरे भाग के अफसर राजा माधोसिंहजी बने। इस व्यवस्था के अनुसार सबसे आगे रावराजा शत्रुसाल की सेना, उससे पीछे विट्ठलदास की फौज, और उसके पीछे माधोसिंहजी का रिसाला चला[१]। शाही सेना इन वीर राजपूतों को आगे करके पीछे पीछे चली।

**कमरू और कन्दज के किले पर आक्रमण**—आषाढ़ शुक्ला चतुर्थी को शाहजहाँ के राज्य की सीमा पार करके यह विपुल सेना

(१) करार याफ्त के हंगाम आरायश सफूफ मुबारिजत अमीर-उल-उमरा दर यमीन व नजाबतखां दर शिमाल.........व फोजे हरावल ब चहार सद व हफ्ताद कस अज उमरा व मन्सबदारान कि अज आं जुमला अस्त बहादुरखां व राजा बिट्ठलदास व राव सतरसाल हाड़ा व माधोसिंह हाड़ा इन्तजाम याफ्त।

अब्दुलहमीद, द्वि० भाग, पृष्ठ ४८४-८५।

बल्ख और बदख्शाँ के देश में पहुँची। हरावल ने कमरू किले पर आसानी से अधिकार स्थापित कर लिया। यह विजय केवल राजपूतों के शौर्य्य से प्राप्त हुई थी[1]। इसके बाद कन्दज के किले पर २२ जून को आक्रमण किया जो बल्ख की उत्तर पूर्व सीमा पर स्थित था। यहाँ पर माधोसिंहजी अन्य राजपूतों की भाँति बड़ी वीरता के साथ लड़े। किले पर शाही सेना का अधिकार होगया, परन्तु वहाँ के निवासियों ने भागने से पहिले नगर और जुम्मा मसजिद को आग लगा कर जला दिया[2]।

**बल्ख पर अधिकार**—२ जौलाई सन् १६४६ (श्रावण शुक्ला १० सम्वत् १७०३) को हरावली सेना ने बल्ख में प्रवेश किया। नजरमोहम्मद ने किला बन्द करके कुछ अर्से तक सामना किया, परन्तु अन्त में वह भाग गया। उसके पुत्र, पुत्रबधू और पुत्रियों को शाही सेना ने गिरफ्तार करके काबुल भेज दिया। किले पर शाही सेना का अधिकार होगया। मसजिद में शाही खुतबा पढ़ा गया। बल्ख नगर पर और पश्चात् बल्ख देश पर अधिकार करके शान्ति स्थापित की गई। बल्ख के किले में एकत्र की हुई नजरमोहम्मद की विशाल सम्पत्ति का बहुत बड़ा हिस्सा मुरादबख्श के हाथ पड़ा। इस प्रकार विजय प्राप्त होने के बाद मुरादबख्श वापिस हिन्दुस्तान में आने के लिये अधीर होने लगा। कितने ही शाही सेना के सैनिक भी उसके समान आतुर होगये। शाहजादे और उसके अफसरों की इस प्रिवृत्ति से सेना में अव्यवस्था फैल गई[3]।

(१) अब्दुलहमीद, जिल्द २, पृष्ठ ४८३–८८।

(२) उपरोक्त।

(३) उपरोक्त पृष्ठ ५५७–५६।

**माधोसिंहजी बल्ख में डटे रहे**—अन्त में शाहजादे ने सम्राट् की आज्ञा के बिना ही वापिस लोटने की ठान ली। शाहजहाँ ने फौरन वजीर सादुल्लाखाँ बल्ख को रवाना किया, जो सेना और देश के प्रबन्ध की व्यवस्था करके ६ सितम्बर को वापिस आया। माधोसिंह जी अन्य सैनिक अफसरों की भाँति अपने देश को नहीं लौटे और बल्ख के किले की निरन्तर रक्षा करते रहे[1]। शाहजादे की वापसी के पश्चात् बल्ख में उत्पात और विद्रोह होने लगे। अतः शाहजहाँ ने औरंगजेब को गुजरात से लाहोर बुलाया, और ५० लाख रुपये देकर अलीमर्दान के साथ बल्ख बदखशाँ को रवाना किया। ७ अप्रेल सन् १६४७ को औरंगजेब रवाना हुआ।

**माधोसिंहजी ने दो बादशाहों को हरा कर भगाया**—इस अरसे में माधोसिंहजी को बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं, परन्तु साहस और वीरता के साथ उन्होंने सब को पार कर लिया। नजरमोहम्मद ने तूरान के राजा अब्दुलअजीज की सहायता से एक बार बल्ख पर भयंकर आक्रमण किया, परन्तु माधोसिंहजी ने ऐसी वीरता के साथ दुर्ग की रक्षा की कि नजरमोहम्मद और अब्दुलअजीज की संयुक्त सेना दुर्ग में प्रवेश नहीं कर सकी। बाहर मैदान में भी कई लड़ाइयाँ हुईं, परन्तु माधोसिंहजी ने बल्ख और आसपास के प्रदेश से शाही कब्जा नहीं हटने दिया[2]। बुरहानपुर के घेरे में माधोसिंहजी ने जो स्थिति देखी थी, उससे भी यह अधिक भयावह थी। रावरतन को तो केवल खुर्रम की सेना का ही मुकाबला करना था, परन्तु बल्ख में माधोसिंहजी

(१) अब्दुलहमीद, जिल्द २, पृष्ठ ५६६–७१, ६१४–१८, ६२०–२४, ६२६, ६४२–५७।

(२) मुंशी मूलचन्द, पृष्ठ ९१।

को नजरमोहम्मद और अब्दुलअजीज दो शक्तिशाली सरदारों ने घेर लिया था। इसके अतिरिक्त बल्ख अपरिचित देश था, और तूरानियों की शक्ति और युद्धप्रणाली का भी माधोसिंहजी को क्या पता था? शाहजादा मुराद और मुगल बादशाह के बड़े बड़े शूरवीर सेनानायक पहले ही घबरा कर चले गये थे। सुदूर विदेश में शक्तिशाली शत्रुओं से घिरे हुये केवल अल्पसंख्यक राजपूत सैनिकों की सहायता से एक दुर्ग की सफलतापूर्वक रक्षा करना माधोसिंहजी जैसे वीर का ही काम था। ऐसी वीरता और साहसिकता सर बुलन्दराय और रामराज रावरतन के पुत्र के लिये सर्वथा योग्य थी। ऐसे रणकुशल वीर, स्वाभाविक योद्धा, और कर्त्तव्यपरायण सामन्त के लिये पृथक राज्य स्थापित करना सतरहवीं शताब्दी में क्या कठिन बात थी?

**औरंगजेब बल्ख पहुँचा**—इधर माधोसिंहजी जान हथेली पर रक्खे हुए उजबक और तूरानियों को किले में घुसने से रोके हुये थे, उधर औरंगजेब शीघ्रता से कूँच करता हुआ बल्ख की ओर बढ़ता आरहा था। मार्ग में उसको देरा-ए-गज की तंग घाटी में होकर गुजरना था। वहाँ पर कुतलकमोहम्मद के नेतृत्व में उजबक लोगों ने शाही सेना का रास्ता रोका, लेकिन वीर राजपूतों की हरावल ने उनको हराकर भगादिया, और सेना आगे बढ़ी। इस प्रकार मार्ग में शत्रुओं को हराता हुआ औरंगजेब सम्वत् १७०४ (२५ मई सन् १६४७, १ जमादि-उल-अव्वल सन् १०६७ हिजरी) को बल्ख पहुँचा। शाही सेना को देख कर माधोसिंहजी ने आराम से साँस ली। बल्ख की विकट स्थिति और माधोसिंहजी की अप्रतिम वीरता देखकर औरंगजेब भी दंग रह गया[1]।

---

(१) अब्दुलहमीद. पृष्ठ ६८०-८५।

**माधोसिंहजी का सम्मान**—मुराद के वापिस लौटने पर शाहजहाँ ने माधोसिंहजी की वीरता की बड़ी प्रशंसा की थी। औरंगजेब के साथ उसने माधोसिंहजी के वास्ते चाँदी के आभूषणों से अलंकृत एक घोड़ा भेजा था,[१] जिसका नाम "बाद रफ्तार" (पवन वेग) था। बल्ख पहुँचने पर औरंगजेब ने यह घोड़ा माधोसिंहजी को देकर उनका सम्मान किया और बल्ख की किलेदारी उन्हीं के सुपुर्द रक्खी। शाही खजाना, रसद और बहुत सा लड़ाई का सामान किले में माधोसिंहजी की संरक्षता में छोड़कर[२] औरंगजेब उजबकों को दबाने के लिये अक्या नगर की ओर बढ़ा। उजबक लोग हारकर पीछे हट गये। शाही सेना आगे बढ़ी। २ जून को तैमूराबाद पहुँच गई। इधर कई लड़ाइयाँ हुईं। शाही सेना का एक भाग शत्रुओं ने नष्ट कर दिया, परन्तु अन्त में उनके पैर छूट गये। वहाँ से हट कर उजबक लोगों ने बल्ख और शाही सेना के मध्यस्थ प्रदेश में खेमे जा डाले जिससे बल्ख के किले से सेना में रसद आदि पहुँचना बन्द होगया[3]। इस समय यदि माधोसिंहजी जैसे वीर किले के रक्षक न होते तो शाही खजाना और रसद आदि सब लूट लिया जाता।

---

(१) बागे सफा ब नजूले मुकद्दस सफाइये ताजा याफ्त व हर कुदाम अज माधोसिंह वल्द रावरतन हाड़ा······रा के दर बल्ख बूदन्द ब इरसाल अस्प बाजीन नुकरा मुफ्तखर साख्तन्द।

अब्दुलहमीद, २, ६४१।

(२) माधोसिंह वल्द रावरतन हाड़ा रा बमुहारसत किला व शमशीरखां तरीन रा बाजमये अज मन्सबदारान व अहदियान व तुफंगचियान सवार व प्यादे ब निगाहबानी शहर गुजाश्तन्द।

अब्दुलहमीद, २, ६८७।

(३) सर जे०एन० सरकार—हिस्ट्री ऑफ ओरंगजेब, भाग १, पृष्ठ १०३-०४।

**बल्ख से वापिसी**—५ जून को औरंगजेब वापिस बल्ख पहुँचा। शत्रुओं से घोर संग्राम हुआ। दोनों पक्षों ने बराबर की बजाई। न किसी की हार हुई न किसी की जीत। ७ जून को पुनः भयंकर रण हुआ। इसमें बल्ख बदखशाँ का नया बादशाह अब्दुल अजीज और अन्य कई उजबक सरदार सम्मिलित थे। सौभाग्य से औरंगजेब की सेना का उच्छेद नहीं हुआ। अब औरंगजेब भी अनुभव करने लगा कि समस्या कठिन है। उजबक लोग सन्धि करना तो चाहते थे, परन्तु साथ ही टालटूल भी करते जाते थे। शाही सेना-नायक भी वापिस लौटने को आतुर होरहे थे। अन्त में औरंगजेब ने सन्धि कर ली। बल्ख बदखशाँ से शाही अधिकार हट गया। औरंगजेब की आज्ञा से माधोसिंह जी ने बल्ख का किला खाली कर दिया। शाही सेना कूँच करके १० नवम्बर सन् १६४७ (सम्वत् १७०४) को काबुल पहुँची। रास्ते में शत्रुओं ने कई जगह शाही सेना पर आक्रमण किये, और औरंगजेब को घोर संकटों का सामना करना पड़ा, परन्तु राजा जयसिंह ने सर्वत्र आक्रमणकारियों को हटाया और शाही सेना की रक्षा की[१]।

माधोसिंहजी लगभग सम्वत् १७०५ (जनवरी १६४८) में कोटा वापिस आगये होंगे।

**माधोसिंहजी का देहान्त**—सन् १६४८ या सम्वत् १७०५ में जब माधोसिंहजी बल्ख और बदखशाँ के युद्ध से वापिस कोटे आये तो उनकी अवस्था केवल ४८ वर्ष की थी। परन्तु वे १४ वर्ष की अवस्था से प्रायः निरन्तर रणभूमि में रहा करते थे और बल्ख बदखशाँ के आक्रमण में विदेशी और पहाड़ी जलवायु ने उनके स्वास्थ्य को नष्ट कर डाला था। अतः कोटा वापिस आने पर वे अधिक समय तक

(१) सर जे. एन. सरकर—ए हिस्ट्री ऑफ ओरंगजेब, जिल्द १, पृष्ठ १०९-१०।

जीवित न रह सके। ऐसा अनुमान होता है कि सन् १६४८ में ही उनका देहान्त होगया।

कर्नल टॉड ने माधोसिंहजी का जन्म सम्वत् १६२१ और मृत्यु सम्वत् १६८४ दिये हैं जो प्रत्यक्षतः अशुद्ध हैं। इन पर विचार करने की भी आवश्यकता नहीं है[1]।

वंशभास्कर में लिखा है कि काबुल की लड़ाई से माधोसिंहजी सम्वत् १७०७ में वापिस आये और दिल्ली पहुँच कर बीमार होगये। वहाँ से कोटे आने पर उनका देहान्त होगया[2]। इस कथन के अनुसार माधोसिंहजी का देहान्त सम्वत् १७०७ निश्चित होता है, परन्तु यह ठीक नहीं मालूम होता। बलख और बदखशाँ से शाही सेना सम्वत् १७०७ में नहीं किन्तु सम्वत् १७०४ के पौष मास में ( नवम्बर सन् १६४७ ) में वापिस आगई थी जो समकालीन शाही इतिहासकार के कथन से सिद्ध होता है[3]। इसके बाद ही रोगग्रस्त होजाने से उनका देहान्त हुआ था, अतः सम्वत् १७०५ ठीक मालूम होता है। वंशभास्कर के कर्त्ता को बलख बदखशाँ के आक्रमण का कुछ भी ज्ञान नहीं था। वह इसको काबुल की लड़ाई कहता है[4]। फिर भी उसने

---

(१) टॉड—राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५५२-५३।

(२) सप्त नभ अद्रि इक, अब्द मित होत सक। (१७०७)
आइ पच्छो सु जवनेस लंघ्यो अटक।

× × ×

अद्रि नभ सत्त ससि, सक घर आइकै।
पिंड माधव तज्यौ अन्त खिन पाइकै॥

वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २६३०-३२।

(३) मुहम्मद वारिसः बादशाहनामा।

(४) वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २६२५।

जो सम्वत् दिया है उसमें केवल तीन साल का अन्तर है। मुंशी मूलचन्द को शाही सेना की वापिसी की तारीख का ठीक पता था, तो भी उसने माधोसिंहजी का देहान्त काल शायद चरित्र रत्नावली के आधार पर १७०७ विक्रम लिखा है[1]।

**राज्य विस्तार**—गद्दी पर बैठते समय माधोसिंहजी के राज्य में १४ परगने थे[2]। खाँजहाँ लोदी का बध करने के उपलक्ष में शाहजहाँ ने इनको १७ परगने और दिये[3]। बल्ख और बदख़शाँ के आक्रमण में माधोसिंहजी ने जिस अप्रतिम वीरता के साथ बल्ख के दुर्ग की रक्षा की थी, उससे प्रसन्न होकर शाहजहाँ ने बाराँ और मऊ के परगने बूँदी नरेश से छीनकर माधोसिंहजी को देदिये[4]। इस प्रकार

---

(१) मुन्शी मूलचन्द, पृष्ठ ६६।

(२) खजूरी, अरगडखेड़ा, कैथून, आवाँ, कनवास, घाटोली, दीगोद, बड़ौद, इटावा, लुहावद, बमोरी, अन्ता, बड़वा, साँगोद।

—ठाकुर लक्ष्मणदान।

सूरजमल केवल नौ परगनों के नाम लिखता है।

वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २५४१–४३।

गंगासहाय केवल ७ ही नाम लिखता है।

वंश प्रकाश–१३२।

(३) रामगढ़, रहलावन, कोटड़ा, सुलतानपुर, बड़वा, मांगरौल, खैराबाद, सुकेत, चेचट, मगडाना, राणपुर, नीमोदा, सोरसन, पलायथा, कोयला, आटोण और सोरखंड।

—ठाकुर लक्ष्मणदान।

सूरजमल ने केवल ५ परगनों के नाम लिखे हैं।

वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २५६३।

(४) कुप्पि बुंदीस प्रति लुप्पि बचनादिकन॥
परगना मुख्य बारां मऊ छिन्नि लिय।
द्वैहिलखि माधव दि तत्थ सुलतान दिय॥

वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २६३०।

माधोसिंहजी के देहान्त के समय बाराँ और मऊ उनके राज्य में सम्मिलित होगये थे। कोटा, सुलतानपुर, इटावा, लुहावद, माँगरोल, रामगढ़, बाराँ, आटोण, शेरगढ़, घाटोली, गागरोण, खैराबाद, चेचट, मन्डाना और नान्ता उनके राज्य के मुख्य परगने थे[1]। आठ परगनों में अर्थात् उरमाल, करवर, राइपुर, सोईत, घाटी, मधुकरगढ़, गागरोण और कोटे में सम्वत् १७११ में लगभग ५०० गाँव थे[2]। इससे अनुमान किया जा सकता है कि माधोसिंहजी के राज्य में उनके देहान्त के समय २००० के लगभग गाँव होंगे। वर्त्तमान् कोटा राज्य का सब से अधिक उपजाऊ और बसा हुआ भाग माधोसिंहजी का प्राप्त किया हुआ है।

**माधोसिंहजी का मन्सब**—बुरहानपुर की लड़ाई में अपने पिता के साथ सम्मिलित होते समय माधोसिंहजी मन्सबदार थे, परन्तु

---

(१) कोटा तकसीम सम्वत् १७११।

सुलतानपुर, इटावा, लुहावद } ठाकुर लक्ष्मणदान।

माँगरोल, रामगढ़ } ठाकुर लक्ष्मणदान। कर्नल टॉड: जिल्द २, पृष्ठ ५५३।

बाराँ — वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २६३०।

आटोण — तकसीम सम्वत् १७११।

शेरगढ़ — टॉड, जिल्द २, पृष्ट ५५१।

घाटोली, गागरोण } तकसीम सम्वत् १७११ और टॉड, जिल्द २ पृष्ठ ५५३।

खैराबाद, चेचट, मण्डाना } ठाकुर लक्ष्मणदान।

नान्ता } वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २५४३। टॉड: जिल्द २, पृष्ठ ५५३।

(२) तकसीम सम्वत् १७११।

उनके मन्सब की तादाद का पता नहीं चलता। उस समय रावरतन का मन्सब भी ४००० से कम था क्योंकि खुर्रम की गिरफ्तारी के बाद वह पंजहजारी मन्सबदार बना था। अनुमानतः रावरतन उस समय तीन हजारी मन्सबदार होगा। अतः माधोसिंहजी का मन्सब उस समय १००० के लगभग होगा। जब रावरतन ने अपने पुत्रों के साथ बुरहानपुर की वीरतापूर्वक रक्षा करके खुर्रम को कैद कर लिया और उस लड़ाई में माधोसिंहजी सख्त घायल हुये तो जहाँगीर ने रावरतन को तो पंजहजारी मन्सबदार बना दिया और माधोसिंहजी का मन्सब बढ़ा कर उनको २००० मन्सबदार जाती तथा १००० सवारों का अफसर नियत किया[1]। फिर खाँजहाँ लोदी का बध करने के उपलक्ष में उनको ३००० का मन्सब मिला[2]। यह पता नहीं चलता कि सवारों में क्या वृद्धि हुई। माधोसिंहजी को रावरतन के देहावसान के पश्चात् विधिपूर्वक कोटे का राजा बनाते समय शाहजहाँ ने उनके मन्सब में ५०० की और सवारों में ५०० की वृद्धि की[3]। अतः अब वे ३५०० मन्सब जाती और कम से कम १५०० सवारों के अफसर हुये। कन्धार के घेरे में सन् १६४० में जब माधोसिंहजी शाहजहाँ से मिलने गये तो उनके मन्सब में ५०० की और सवारों में ५०० की वृद्धि की गई[4]। उसके एक वर्ष बाद फिर जब वे कन्धार से लाहोर गये तो पुनः मन्सब में ५०० की वृद्धि हुई[5]। अतः सम्वत् १६९८ (सन् १६४१)

---

(१) मुंशी मूलचन्द, पृष्ठ ७६।

(२) वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २५६३।

(३) मुन्शी मूलचन्द, पृष्ठ ८०।

(४) अब्दुलहमीद, जिल्द २, पृष्ठ २२२-२४।

(५) उपरोक्त, पृष्ठ ३०८।

में माधोसिंहजी ४५०० के मन्सबदार और २००० सवारों के हाकिम होगये। काँगड़ा के राजा जगतसिंह पर शाहजादा मुराद के नेतृत्व में जो आक्रमण हुआ था, उसमें भी शायद माधोसिंहजी शामिल थे। इस आक्रमण की सफलता के बाद माधोसिंहजी के ५०० सवार और बढ़ाये गये थे[1]। इस हिसाब से माधोसिंहजी काँगड़ा विजय के समय अर्थात् सम्वत् १६९९ (सन १६४२ ई०) में ४५०० के मन्सबदार और २५०० सवारों के हाकिम थे[2]। बल्ख और बदख़शाँ के युद्ध में उनके द्वितीय पुत्र मोहनसिंहजी और कनिष्ठ पुत्र किशोरसिंहजी भी उनके साथ सम्मिलित थे। मोहनसिंहजी आठ सदी के मन्सबदार और चार सौ सवारों के अफ़सर थे। किशोरसिंहजी चार सौ के मन्सबदार और दो सौ सवारों के अफ़सर थे[3]।

**मन्सब से आय**—मन्सबदारों की तीन श्रेणियाँ थीं। प्रथम श्रेणी का मन्सबदार वह माना जाता था जिसका मन्सब जाती और सवारों की तादाद बराबर हो, अर्थात् जो एक हजारी मन्सबदार और १००० सवारों का अफ़सर हो। दूसरी श्रेणी के मन्सबदार के सवारों की संख्या मन्सब जाती से आधी होती थी और तृतीय श्रेणी का मन्सबदार वह माना जाता था, जिसके सवारों की संख्या मन्सब से दशमांश के लगभग हो। इस व्यवस्था के अनुकूल माधोसिंहजी द्वितीय श्रेणी के पंजहजारी मन्सबदार थे क्योंकि उनका मन्सब जाती ५००० था और सवार २५०० थे। पंजहजारी मन्सबदार को बादशाह की नौकरी

---

(१) मुंशी मूलचन्द, पृष्ठ ८६।

(२) परन्तु अब्दुलहमीद ने इनको तीन हजारी मन्सबदार और ३००० सवारों का हाकिम बतलाया है। —अब्दुलहमीद, जि० २, पृष्ठ ७२२।

(३) मुन्शी मूलचन्द, पृष्ठ ६६।

के लिये ३४० घोड़े, १०० हाथी और २६० टट्टू, खच्चर, गाड़ियाँ आदि रसद वगैरह के लिये रखने पड़ते थे, और उसको शाही खजाने से लगभग २९,००० रु० महीना खर्च के लिये दिया जाता था। इस प्रकार द्वितीय श्रेणी के मन्सब से माधोसिंहजी की वार्षिक आय लगभग साढ़े तीन लाख थी।

**राव माधोसिंहजी की प्रतिष्ठा**—मुगल दरबार में माधोसिंहजी पंजहजारी मन्सबदार और दो हजार पांच सौ सवारों के अफसर थे जो उस समय साधारण बात नहीं थी। पांच हजार से ऊपर का मन्सब साम्राज्य भर में प्रायः उन इने गिने उमरावों को मिलता था, जिनका शाही परिवार से सम्बन्ध होता था। हिन्दू रईस के लिये पंजहजारी मन्सबदार बनाया जाना बहुत बड़ा सम्मान और गौरव माना जाता था। यह गौरव माधोसिंहजी ने स्वयम् अपने बाहुबल से और नीति से प्राप्त किया था। चौदह वर्ष की अवस्था में ही वीरता का परिचय देकर 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' को उन्होंने चरितार्थ किया था। अपने पिता की ओर से अल्पसंख्यक सेना के साथ शाहजादा खुर्रम से लड़ना और उसको हरा कर कैद कर लेना साधारण वीरता की बात नहीं थी। कैद में खुर्रम के साथ सम्मान और नम्रता का व्यवहार करके माधोसिंहजी ने भावी शासन काल में भी अपनी उन्नति का मार्ग निष्कण्टक बना दिया था। शाहजहाँ तख्त पर बैठने भी नहीं पाया था कि खाँजहाँ लोदी को मारकर उन्होंने साम्राज्य भर का बहुत बड़ा संकट हटाया था। बुन्देलखंड के आक्रमण में भी जब शाही जनरल एक दूसरे का मुँह ताक रहे थे तो रणोन्मत्त जुझारसिंह से भिड़ने का साहस माधोसिंहजी को ही हुआ था। कन्धार के घेरे में माधोसिंहजी निरन्तर लगभग दो वर्ष तक शाही सेना के साथ

थे। वहीं कन्धार से लाहोर आकर घेरे के विषय में बादशाह से सलाह किया करते थे, और इसी अर्से में उनका एक हजार मन्सब बढ़ा था। इससे सिद्ध होता है कि कन्धार के घेरे में माधोसिंहजी ने शाहजहाँ की उल्लेखयोग्य सेवा की थी। काँगड़ा की विजय के बाद भी माधोसिंहजी का मन्सब बढ़ाया गया था, जो उनकी वीरता का प्रमाण है। बल्ख और बदखशाँ में तो उन्होंने ऐसे साहस और पराक्रम का काम किया था, जो उन्हीं के योग्य था। जब शाहजादा मुराद और शाही जनरल उस प्रदेश को छोड़ कर भाग आये थे तो अकेले माधोसिंहजी ने राजपूत सैनिकों की सहायता से शक्तिशाली शत्रुओं से घिरे हुये भी बल्ख के दुर्ग की रक्षा करके शाहजहाँ के गौरव की रक्षा की थी, और उसके मस्तक को ऊँचा रक्खा था। काबुल से बदखशाँ को कूँच करते हुये भी ये शाही सेना की हरावल के अफसर थे। यही कारण था कि शाहजहाँ ने उनको आभूषणों से अलंकृत एक घोड़ा भेंट करके पुरस्कृत किया था, और यह घोड़ा भेंट करवाया था औरंगजेब के हाथों से जिसको हिन्दुओं के गुण भी दुर्गुण प्रतीत हुआ करते थे।

इस प्रकार निरन्तर जान को हथेली पर रक्खे हुये पहिले जहाँगीर की और फिर शाहजहाँ की सेवा करने के कारण ही माधोसिंहजी ४३ परगनों के राजा बने थे। उनको बादशाह से पंजहजारी मन्सब के अतिरिक्त नक्कारा और निशान मिला था, और राजा की पदवी प्राप्त हुई थी। उनके जीवन काल में उन्होंने कभी बादशाह की अप्रसन्नता का अनुभव नहीं किया। इसीलिये उनका राज्य उत्तरोत्तर विस्तृत होता गया। जिस प्रकार उनकी मुगल दरबार में प्रतिष्ठा थी उसी प्रकार अन्य क्षत्रिय राजा भी उनका सम्मान करते थे।

**माधोसिंहजी के पुत्र—** माधोसिंहजी के पांच पुत्र थे,

मुकुन्दसिंह, मोहनसिंह, जुझारसिंह, कन्हींराम और किशोरसिंह। बल्ख और बदखशाँ को कूँच करते समय माधोसिंहजी अपने राज्य का शासन मुकुन्दसिंहजी के सुपुर्द कर गये थे। दूर देश की यात्रा, दुर्गम पथ और दुर्दान्त शत्रुओं का विचार करके माधोसिंहजी ने यह सोचा होगा कि क्या पता वहाँ से जीवित लौटा जायगा या नहीं? इसलिये वे मुकुन्दसिंहजी को विधिपूर्वक शासन भार सौंप गये थे, और मुकुन्दसिंहजी ने अपने पिता की आज्ञा से महाराजाधिराज की पदवी धारण करली थी[१]। मोहनसिंह और किशोरसिंह अपने पिता के साथ बल्ख और बदखशाँ में थे और दोनों क्रमशः आठ सौ और चार सौ के मन्सबदार थे। ऐसा मालूम होता है कि ये दोनों राजकुमार माधोसिंहजी के साथ दूसरी लड़ाइयों में भी शामिल हुये होंगे। सम्भवतः बल्ख और बदखशाँ के युद्ध में जाने से पहिले ही माधोसिंहजी ने अपने पुत्रों को यथायोग्य जागीरें देदी थीं। मुकुन्दसिंहजी ज्येष्ठ पुत्र थे इसलिये उनको कोटे का राजा बनाया। मोहनसिंहजी अपनी वीरता और पराक्रम के कारण माधोसिंहजी के प्रिय पुत्र थे और प्रायः अपने पिता के साथ लड़ाइयों में रहा करते थे। अतः उनको ८४ गांवों के साथ पलायथे की जागीर दी गई। तीसरे पुत्र जुझारसिंहजी को २१ गावों के सहित कोटड़ा की, और कन्हींरामजी को २७ गावों के सहित कोयला की जागीर मिली। पाँचवें पुत्र किशोरसिंहजी को २४ गांव सहित सांगोद की जागीर दी गई[२]।

**माधोसिंहजी का चरित्र**—माधोसिंहजी आज्ञाकारी पुत्र थे, नीतिनिपुण राजा थे, और सन्तानवत्सल पिता थे। बाल्यकाल में उन्होंने

(१) कागजात सम्वत् १७०४, सीगा मुतफर्रिकात।

(२) ठाकुर लक्ष्मणदान।

कुछ संस्कृत पढ़ी थी और कुछ उर्दू भी। उस समय आज कल की अपेक्षा वैसे ही लोग अधिक धर्मनिष्ठ हुआ करते थे, परन्तु संस्कृतज्ञ होने के कारण माधोसिंहजी विशेष रूप से धर्मभीरु होंगे। १४ वर्ष की अवस्था में ही वे अपने पिता के साथ मलिकअम्बर के विद्रोह को दबाने के लिये गये थे। तब से अन्त समय तक जिस युद्ध में भी वे शामिल हुये, सदैव हरावल के अफसर रहे और प्राणपण से लड़े। उन्होंने खुर्रम को हराया, जुझारसिंह पर प्रहार किया, खाँजहाँ लोदी को बर्छी से मारा और बल्ख के दुर्ग की वीरता के साथ रक्षा की। संक्षेपतः शाहजहाँ के समय की प्रत्येक लड़ाई में उन्होंने सबसे अधिक वीरता का कार्य किया। नीति निपुण इतने थे कि उन्होंने पहले खुर्रम को हराया, और कैद किया, और फिर उसी से गौरव और सम्मान प्राप्त किया। कन्धार के घेरे में शाहजहाँ ने उनको कई बार लाहोर बुला कर परामर्श किया था, जिससे उनकी नीतिज्ञता और रणनिपुणता प्रकट होती है। माधोसिंहजी की स्वामिभक्ति भी इतनी दृढ़ और अचल थी कि वे जुझारसिंह पर प्रहार करते हुये भी नहीं झिझके, और कर्त्तव्यपाश से जकड़े होनें से एक राजपूत भाई के परिवार का सर्वनाश और धर्म का घोर अपमान अपनी आँखों से देखा। रावरतन इनकी वीरता के कारण इनसे बहुत प्रेम करता था, और आज्ञाकारी पुत्र होने के कारण ये इस प्रेम के पात्र भी थे। माधोसिंहजी पर रावरतन का प्रेम इसलिये भी बढ़ गया होगा कि गोपीनाथ के कुकृत्य के कारण इनको बहुत दुःख हुआ था। अपने पिता का प्रेम भी माधोसिंहजी के अभ्युदय का एक कारण था। ये केवल पितृभक्त ही नहीं थे मातृभक्त भी थे। राजा बनने के बाद जब वे अपनी राजधानी कोटे में रहने लगे तो इनकी माता जो अरण्डखेड़े के ठाकुर की पुत्री थी, इनके साथ कोटे आई और आजन्म वहीं रही। उनकी

मृत्यु सम्वत् १७२७ में कोटा नगर में महाराजाधिराज जगतसिंहजी के शासन काल में हुई थी[१]।

संक्षेपतः माधोसिंहजी रण में, परिवार में और दरबार में सर्वत्र सफल पुरुष थे। वे लगभग ४८ वर्ष की अवस्था में ही परलोकवासी हो गये, परन्तु उनका अल्प जीवन अत्यन्त सफल और सार्थक था।

मुहूर्तं ज्वलनं श्रेयः
न च धूमायितं चिरम्।

**माधोसिंहजी का शासन**—माधोसिंहजी के राज्य काल में कुल ४३ परगने थे। इनमें से कुछ परगने सरकार गढ़ रणथम्भौर सूबा अजमेर के ताल्लुक थे और शेष सरकार गढ़ गागरोण सूबा उज्जेन के अन्तर्गत। बादशाह को प्रत्येक परगने के लिये मामलत दी जाती थी, जो सम्बन्धित सूबे की राजधानी में अर्थात् अजमेर या उज्जैन के शाही खजाने में जमा होती थी। प्रत्येक परगने में चौधरी, कानूँगो और एक ठाकुर, ये तीन अफसर रहते थे। चौधरी और कानूँगो बादशाह के द्वारा नियत किये जाते थे, और प्रायः वंशक्रमानुगत होते थे। ये लोग जमीन के रकबे का और लगान का हिसाब रखते थे, और कृषि को उन्नत करने का उपाय करते थे। आबादी को बढ़ाना इनका कर्त्तव्य माना जाता था। प्रजा के साथ बराबर का व्यवहार करने की और किसी पर जुल्म न करने की इनको सख्त हिदायत होती थी। अगर कोई जागीरदार इनके कहने पर अमल नहीं करता था तो बादशाह की सेवा में लिखित निवेदनपत्र भेजा करते थे। आय और व्यय का वार्षिक हिसाब भी

---

(१) वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २५४३।

ये लोग शाही दफ्तर में भेजते थे। 'हाकिम,' 'आलिम,' और 'जागीरदारान हाल' और आयन्दा होने वालों से उम्मीद की जाती थी कि चौधरी और कानूगोओं की उचित सलाह को और इनकी सेवा को सम्मान के साथ स्वीकार करें। पटेल, रिआया, काश्तकार और अन्य लोगों को भी ऐसी ही हिदायत की जाती थी[1]। कानूगो और चौधरी को तनख्वाह नहीं मिलती थी। जो भूमि कर ये लोग वसूल करते थे उसका कुछ प्रतिशत रसूम के नाम से इनको दिया जाता था। इस प्रकार ये लोग बादशाह के नियुक्त किये हुये अधिकारी थे, परन्तु जब अमुक परगना किसी राजा को देदिया जाता था तो ये लोग फिर उसकी आज्ञा का पालन करते थे; एवम् बादशाह और राजा दोनों की इनको मातहती करनी पड़ती थी। चौधरी और कानूगो को नियत करने का अधिकार किसी राजा को नहीं था। कारण यह था कि परगनों का वास्तविक स्वामी बादशाह माना जाता था, और राजा माना जाता था जागीरदार। अतः बादशाह जब चाहे कोई भी परगना छीनकर या तो साम्राज्य में या दूसरे राज्य की जागीर में मिला सकता था। इसलिये प्रत्येक परगने की आमदनी का हिसाब शाही दफ्तर में रहना जरूरी था, और इसी काम के लिये इन लोगों की नियुक्ति बादशाह द्वारा हुआ करती थी। ठाकुर पूर्णरूपेण राजा का नौकर होता था, जो परगने का शासन करता था और शान्ति रक्षा के लिये जिम्मेवर था।

**सेना**—माधोसिंहजी पंजहजारी मन्सबदार थे और २५०० सवारों के अफसर थे। इसके अतिरिक्त अपने देश की रक्षा करने के लिये उनके पास अलग सेना थी। सेना के प्रत्येक अंग का प्रबन्ध एक

(१) फरमान जहाँगीरी, सन् जलूस जहाँगीरी १२ जो लाला भँवरलाल कायस्थ कानूगो के पास है।

अफसर के सुपुर्द था। फीलखाना, शुतुरखाना आदि सेना के अंग थे। सेना के ऊपर कितना खर्च होता था इसका अनुमान इस बात से हो सकता है कि प्रायः प्रत्येक हाथी को दो सेर घी, तीन सेर गुड़ तथा पेंतीस सेर आटा रोज दिया जाता था[१]।

**आर्थिक**—राज्य का बहुत सा हिस्सा छोटी २ जागीरों में बँटा हुआ था। राज्य की रक्षा के लिये और अपने साथ लड़ाई में लेजाने के लिये उस समय जागीरदारों की निरन्तर आवश्यकता थी। माधोसिंहजी का राज्य नया था, और उनको प्रायः सदैव बादशाह की सेना के साथ रहना पड़ता था, जिसमें मन्सबदारी की आमदनी से भी अधिक खर्च हो जाया करता था। अतः माधोसिंहजी नन्दवाने बोहरों से १) रु० प्रतिशत प्रतिमास के ब्याज पर बहुतसा रुपया उधार लिया करते थे। भारी ब्याज के अतिरिक्त बोहरों के सन्तोष के लिये गाँव रहन करने पड़ते थे। इन गाँवों में शासन तो राज्य का ही रहता था, परन्तु प्रबन्ध व्यय को घटाने के बाद जो कुछ आमदनी बचती थी, वह राज्य के खजाने में जमा न होकर सीधी बोहरों के यहाँ जमा होजाया करती थी। बोहरों को राज्य की ओर से जो दस्तावेज लिखकर दी जाती थी, वह उसी प्रकार लिखी जाती थी जैसे साधारण कर्जदार लिखा करते थे[२]।

**इमारतें**—इनके समय में बड़ा महल, राजमहल के आगे का हौज, बौलसरी की ड्योढ़ी, नक्कारखाने का दरवाजा, सैलारगाजी का दरवाजा, राजधानी का किला, शहरपनाह अर्थात् कैथूनीपोल, पाटनपोल, और किशोरपुरा दरवाजे के कोट का निर्माण हुआ। उस समय

---

(१) कागजात सम्वत् १६९२।

(२) कागजात सम्वत् १६९७, सीगा मुतफर्रिकात।

किशोरपुरा दरवाजा भीलवाड़ी पोल कहलाता था। कोटे से बारह कोस के फासिले पर माधोसिंहजी ने एक मधुकरगढ़ नामक छोटा सा नगर भी बसाया था जहाँ पर्वतश्रेणी को नगर प्राचीर में परिणत करके दरवाजे बनाये गये थे। ये सब इमारतें, दीवारें और बुर्ज वास्तुकला की दृष्टि से साधारण हिन्दू शैली की हैं। इनमें कोई विशेषता न होते हुये भी यह बात अवश्य है कि मुगल कला की उन पर कोई छाप नहीं है।

---

# राव मुकुन्दसिंहजी

**राव मुकुन्दसिंहजी**—सम्वत् १७०६ (सन् १६४९) में माधोसिंहजी के देहान्त के पश्चात् मुकुन्दसिंहजी कोटे की राजगद्दी पर बैठे।

**अभिषेक के पूर्व**—माधोसिंहजी का लगभग ४८ वर्ष की अवस्था में देहान्त हुआ था। मुकुन्दसिंहजी उनके ज्येष्ठ पुत्र थे। अतः अभिषेक के समय उनकी अवस्था अधिक से अधिक ३० वर्ष की होगी। यह पता नहीं चलता कि अपने पिता के साथ मुकुन्दसिंहजी किसी लड़ाई में लड़ने गये थे या नहीं। बल्ख और बदख्शाँ के आक्रमण में इनके छोटे भाई मोहनसिंहजी और किशोरसिंहजी माधोसिंहजी के साथ थे, परन्तु मुकुन्दसिंहजी का कहीं जिक्र नहीं आया; तो भी यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि युद्धविद्या से मुकुन्दसिंह जी अपरिचित नहीं थे। अभिषिक्त होने से पहिले या तो मुकुन्दसिंह जी अपने पिता के साथ कई लड़ाइयों में शामिल हुये होंगे या घर पर ही उन्होंने घोड़े की सवारी और शस्त्रप्रयोग में निपुणता प्राप्त की होगी।

**अभिषेक और सम्मान**—राजगद्दी पर बैठने के बाद मुकुन्दसिंहजी को मुगल सम्राट् शाहजहाँ ने खिलत दी और वे तीन हजार के मन्सबदार और २००० सवारों के अफसर बनाये गये[1]। माधोसिंहजी को गद्दी पर बैठते समय केवल २००० का ही मन्सब मिला था क्योंकि वे नये ही राजा बने थे और अभिषेक के समय उनके

---

(१) मुंशी मूलचन्द, पृष्ठ ९७।



राव मुकुन्दसिंहजी
(१७०६-१७१४ वि०)

राज्य में केवल १४ परगने थे। जब मुकुन्दसिंहजी गद्दी पर बैठे तो माधोसिंहजी के शौर्य्य, साहस और पराक्रम से कोटे के राज्य में ४३ परगने सम्मिलित हो चुके थे जो प्रायः सब उपजाऊ और अच्छे आबाद थे। कोटा राज्य की प्रतिष्ठा भी अच्छी जम चुकी थी। अतः मुकुन्दसिंहजी को किसी विशेष कार्य के उपलक्ष में नहीं किन्तु माधोसिंहजी के पुत्र होने, और कोटे की गद्दी पर बैठने के कारण ही ३००० का मन्सब और २००० सवारों की अफसरी दी गई।

**कन्धार के घेरे**—(सम्वत् १७०६–१७१०, सन् १६४९–१६५३) मुकुन्दसिंहजी के गद्दी पर बैठने के बाद कन्धार शाहजहाँ के हाथ से जाता रहा। अतः उसको पुनः हस्तगत करने के लिये शाही सेना रवाना की गई और अप्रैल सन् १६४९ ई० में स्वयम् बादशाह शाहजहाँ ने काबुल को कूँच किया। तीन मास और बीस दिन तक कन्धार का घेरा जारी रहा परन्तु शाही सेना विफल होकर लौट आई। सन् १६५२ में पुनः औरंगजेब के नेतृत्व में ही घेरा डाला गया परन्तु फिर भी विफलता ही हुई। सन् १६५३ में तीसरा घेरा डाला, चार बार हमले किये, परन्तु सात महीने के बाद शाही सेना को पुनः निराश होकर लौटना पड़ा। इन चढ़ाइयों में साथ जाने वाले हिन्दू नरेशों में मिर्जा राजा जयसिंह और राजा विट्ठलदास का तो उल्लेख है परन्तु मुकुन्दसिंहजी का जिक्र नहीं है[1]। यह अवश्य लिखा है कि ५० से अधिक रईस और मन्सबदार शाहजादे औरंगजेब के साथ और गये। कन्धार की चढ़ाइयों का वर्णन करने वाला इनायतखाँ स्वयम् घटनाओं का द्रष्टा नहीं था। उसने अपना ग्रन्थ अधिकांश अब्दुल हमीद लाहौरी के बादशाहनामे के आधार पर लिखा था, और

(१) इनायतखाँ: शाहजहाँनामा, E. & D. पृष्ठ ८८

शेष दूसरे लोगों से सुनी हुई घटनाओं के आधार पर लिखा होगा। मुकुन्दसिंहजी उस समय तीन हजारी मन्सबदार थे और दो हजार सवारों के अफसर थे। अतः यह सम्भव नहीं है कि इतने बड़े मन्सबदार को औरंगजेब या दाराशिकोह के साथ न भेजा जाता। विशेष कर जब दाराशिकोह के साथ बहुत बड़ी सेना भेजी गई थी और मुकुन्दसिंहजी के कुल की स्वामिभक्ति पर शाहजहाँ को पूरा विश्वास था।

**राज्यप्रबन्ध**—अपने १७ साल के शासन काल में माधोसिंहजी लगभग १० साल तक निरन्तर शाही सेना के साथ दक्षिण, बुन्देलखण्ड, कन्धार और बल्ख बदख्शाँ में लड़ते रहे। बीच में कभी कभी अपनी राजधानी में आते थे, परन्तु शासनसंगठन करने का उनको पर्याप्त अवसर नहीं मिल सका। मुकुन्दसिंहजी अपने पिता के साथ शाही जंगों में शामिल तो हुये होंगे, परन्तु फिर भी उनको राजधानी में रहने का अवसर काफी मिलता था। अतः राज्य की शासन आवश्यकताओं का उनको अच्छा अनुभव प्राप्त हो गया था। बल्ख और बदख्शाँ के आक्रमण में जाते समय माधोसिंहजी उनको राजगद्दी पर विधिपूर्वक बिठा ही गये थे, और चार साल तक उन्होंने ही शासन का संचालन किया था। अतः गद्दी पर बैठने के बाद मुकुन्दसिंहजी ने सेना, जागीर, माल, जकात, इमारत, आदि शासन के अङ्गों का पुनः प्रबन्ध किया और राज्य को दृढ़ किया।

**सेना**—फीलखाना, शुतुरखाना, तोपखाना आदि सेना के अङ्गों का माधोसिंहजी ने अच्छा संगठन कर दिया था परन्तु मुकुन्दसिंह जी ने उसको और सुदृढ़ किया। तीन हजारी मन्सबदार होने के कारण ३०० सवार, ९० हाथी, और २०० गाड़ियाँ, खच्चर, आदि

रखना तो उनके लिये आवश्यक था ही[१]। परन्तु अपने देश की रक्षा के लिये उनको इससे कहीं अधिक सेना रखनी पड़ती थी। तत्कालीन हिन्दू नरेशों ने भी एक प्रकार से मुगलों की मन्सब प्रथा का अनुकरण किया था। इसके अनुकूल मुकुन्दसिंहजी ने कितने ही राजपूतों को घुड़सवारों की चाकरी के लिये जागीरें दे रक्खी थीं। प्रत्येक जागीरदार को समय पड़ने पर घोड़ों की नियत संख्या के साथ कोटा राज्य की सेना में सम्मिलित होना पड़ता था। जागीर देते समय इन लोगों के साथ शर्त की जाती थी कि कितने और किस प्रकार के घोड़े रखने होंगे। किसी के साथ यह भी शर्त की जाती थी कि काम पड़ने पर अटक के पार जाना पड़ेगा।

**सेना व्यय**—तीन हजारी मन्सब और २००० सवारों के लिये लगभग डेढ़ लाख रुपये वार्षिक शाही खजाने से मिलते थे। सैनिक सेवा के लिये मुकुन्दसिंहजी ने कई लाख की जागीरें दे रक्खी थीं। इस प्रकार राज्य की आमदनी का अधिकांश भाग सेना पर खर्च हुआ करता था। उस समय राजा का कर्त्तव्य था अपनी और देश की रक्षा करना, तथा सम्राट् की सैनिक सेवा करना। इसलिये देश में और अपने साथ में हिन्दू नरेशों को बहुत बड़ी सेना रखनी पड़ती थी।

**जागीर**—सैनिक सेवा के लिये जागीर प्रायः राजपूतों को दी जाती थी जिनमें अधिकांश हाड़ा राजपूत नहीं किन्तु सोलंकी, कछवाहा राठोड़, चन्द्रावत, सीसोदिया, तँवर, पवाँर, बड़गूजर, झाला, आदि राजपूत थे। इनके अतिरिक्त गूजर, मीणे, अहीर, भील, सहरिया, और मुसलमानों को भी कई गाँव जागीर में दिये हुये थे[२]। अधिकांश

(१) आइने अकबरी, जिल्द १, पृष्ठ २४८ (Blochmann)।

(२) अ—कागजात सम्वत् १७०४, १७०५।

ब—तकसीम सम्वत् १७११, परगना उरमाल, करवार, रायपुर, सोईत आदि।

जागीरें सैनिक सेवा के लिये दी जाती थीं। ऐसे प्रत्येक जागीरदार को नियतसंख्यक सवारों के साथ शर्त के अनुकूल राज्य के अन्दर, बाहर या अटक पार नौकरी करनी पड़ती थी। मुकुन्दसिंहजी को और उनके बाद किसी कोटा नरेश को मुगल सेना के साथ अटक पार जाने का काम नहीं पड़ा। माधोसिंहजी को लगभग चार वर्ष तक बल्ख और बदख्शाँ में रहना पड़ा था। अतः मुकुन्दसिंहजी का भी अनुमान था कि अपने पिता की भाँति उनको भी शायद कभी अटक पार नौकरी करनी पड़े। उस समय भारतीय सीमा को उलाँघना धर्म विरुद्ध माना जाता था, अतः जागीरदारों से अटक पार जाने की शर्त करली जाती थी[1]। कुछ जागीरदारों के साथ नियतसंख्यक प्यादे रखने की शर्त की जाती थी। कभी कभी जागीरदार के निवेदन करने पर उसको घोड़ों के बजाय प्यादे रखने की इजाजत मिल जाती थी[2]।

**साधारण कामों के लिये जागीरें**—अहलकार, चारण, नट, ब्राह्मण, खवास, पासवान, गुणीजन, भाट, आदि लोगों को भी उनकी नौकरी के एवज में जागीरें दी जाती थीं[3]। उस समय नकदी के बजाय जागीरें देने में अधिक सुविधा थी। जागीरदार स्वयम् लोगों से कर संग्रह कर लेता था और अपने गांव का अन्य प्रबन्ध करने का भार भी उसी पर होता था। ऐसी ही प्रथा मुगल राज्य में प्रचलित थी। हिन्दू नरेशों ने भी उसी का अनुकरण किया था।

---

(१) तक़सीम सम्वत् १७०६–०७।
जेठ बुदी ११, जागीर इन्द्रभान नाथावत।
आषाढ़ सुदी ११, जागीर दुर्जनसिंह सीकरवाल।

(२) तकसीम सम्वत् १७०६–०७, पौष बुदी ११, जागीर नाहरखाँ भाँकरोत।

(३) तकसीम सम्वत् १७११, परगना रायपुर, घाटी मधुकरगढ़ और गागरोण।

**जागीरों की संख्या**—मुकुन्दसिंहजी के समय में राज्य का अधिकांश भाग जागीरदारों के हाथ में था। परगना कोटा में कुल १९५ गाँव थे जिनमें से १२१ गाँव जागीरदारों के हाथ में थे। परगना उरमाल के ९२ गाँवों में से ६६, परगना रायपुर के २६ गाँवों में से २१, परगना सोईत के ३२ गाँवों में से २३, और परगना गागरोण के ३९ गाँवों में से २२ गाँव जागीर में दिये हुये थे[1]।

**राजपूत जागीरदारों की श्रेणियाँ**—सेवा की दृष्टि से जागीरदार दो श्रेणियों में विभक्त थे, जागीरदार देसथी, और जागीरदार हजूरथी। सरकारी कागजों से यह पता नहीं चलता कि प्रत्येक श्रेणी के जागीरदार का क्या विशेष कर्तव्य था। परन्तु इनके नाम इतने स्पष्ट हैं कि इनके कर्तव्य के उल्लेख की आवश्यकता नहीं। जागीरदार देसथी राज्य में प्रायः अपने अपने स्थान पर रहते थे। उनका काम यह था कि अपने और निकटस्थ गाँवों में विद्रोह खड़ा न हो, लूटमार न हो और शांतिभंग न हो। यदि बाहर से कोई शत्रु राज पर चढ़ आवे तो उस समय भी ये लोग कम से कम कुछ काल के लिये तो उसको रोक सकते थे। जागीरदार हजूरथी दरबार के साथ मुगल सेना में सम्मिलित होते थे। उन दिनों में राजपूत नरेशों को प्रायः शाही सेना के साथ देश विजय के लिये रहना पड़ता था। अपने मन्सब का जाब्ता तो इनके साथ रहता ही था परन्तु इसके अतिरिक्त वीर और विश्वासपात्र जागीरदार भी अपने अपने सैनिकों सहित साथ रहते थे। सेना संचालन प्रायः भारतवर्ष के अन्दर ही हुआ करता था, परन्तु अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन काल में काबुल, कन्धार और बदख्शाँ में शाही सेनायें भेजी गई थीं।

---

(१) तकसीम सम्वत् १७११।

इस आशंका से कि कहीं अटक पार जाने का काम पड़ जावे मुकुन्दसिंहजी ने अपने राज्य में ऐसे भी जागीरदार रक्खे थे जिनके साथ विशेषरूप से अटक पार करने की शर्त थी। ऐसी शर्तें उन जागीरदारों के साथ ही की गई थीं जिनको नौकरी के एवज में ही जागीरें दी गई थीं। पलायथा, कोटड़ा, कोयला और सांगोद, इन चार माधानी ठिकानों के साथ ऐसी शर्तों का कोई प्रश्न ही नहीं था। इनको जागीरें इसलिये दी गई थीं कि ये राजकुमार थे और अपने पैतृक राज्य में उनका हिस्सा था।

**जागीरदारों की हैसियत**—जागीरदारों की हैसियत घोड़ों की संख्या पर निर्भर थी। जो कम घोड़े रखता था उसको कम जागीर मिलती थी और जो अधिक घोड़े रखता था उसको अधिक। जागीरदारों के पट्टों में इस बात का उल्लेख किया जाता था कि घोड़े तुर्की हों, ताजी हों या अरबी। जागीरदारों के पास अपने पट्टे के अनुसार घोड़े रहते थे या नहीं इसकी देखभाल परगने के हाकिम करते थे। कुछ जागीरों के गाँवों में तो राज और जागीरदार दोनों के आदमी रहा करते थे। राज के आदमी शान्तिरक्षा करते थे और गाँवों को बरबाद होने से बचाते थे। कृषकों की उपज में जागीरदार का कितना हिस्सा होता था यह बात राजकर्मचारी तय करते थे। कारण यह था कि राजनियन्त्रण के बिना जागीरदार कृषकों की कमाई का मनमाना हिस्सा अपने माल हासिल के रूप में लेलिया करते थे[१]।

(१) "प्रतापसिंह गौड़ की जागीर का गाँवाँ में आदमी दो अइठा जागीरदार का राखज्यो अर आदमी दो खालसा का राखज्यो अर गाँव को जापतो करवाज्यो अर लाटो होव ज्यो रावला आदमियाँ मूँडा आगे करा ज्यो नाज जागीरदार ही लेबा दीज्यो"। —तालीक सम्वत् १७१८।

**जागीरदारों से कर**—जागीर के गाँवों में राहदारी, जकात आदि कर तो राज वसूल करता ही था, परन्तु माल हासिल का भी कुछ अंश राज लिया करता था। जब राज्य का अधिकांश भाग जागीरदारों के हाथ में था तो उनसे कर लिये बिना शासन का खर्च कैसे चल सकता था[1]? जागीरदारों से 'मसादती' नामक एक कर वसूल किया जाता था। यह पता नहीं कि यह कर किस हिसाब से लिया जाता था, परन्तु सरकारी कागजों से अनुमान होता है कि प्रत्येक परगने से कई हजार रुपये वसूल किये जाते थे[2]। यह भी स्पष्ट है कि इस कर के वसूल करने में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं की जाती थी। जो जागीरदार समय पर इस कर को जमा नहीं करते थे, उनसे ४) प्रतिशत प्रतिमास ब्याज लिया जाता था[3]। इसकी वसूली हवालगीर के द्वारा हुआ करती थी। इस कर का नाम 'मसादती' क्यों पड़ा, इसका पता नहीं चलता। परगने के चबूतरे अर्थात् कचहरी पर जो खर्च होता था वह 'मसादती' खर्च कहलाता था। उन दिनों में पुलिस, जुडीशल, माल, जंगलात, जकात सब परगने के अफसरों के ताल्लुक थे। अतः 'मसादती' खर्च एक प्रकार का शासन खर्च था। इस दृष्टि से जो जागीरदारों से 'मसादती' कर वसूल किया जाता था वह शासनकर कहा जा सकता है।

---

(१) परगना आटोण में मौजा अरलिया एक मुसलमान सरदार की जागीर में था। उसके लिये हवालगीर और चौधरी के नाम यह हुक्म था कि जो कुछ लटाई का नाज वसूल हो उसका $\frac{१०}{१२}$ जागीरदार को दिया जावे और $\frac{२}{१२}$ खालसा किया जावे।

(२) परगना आटोण के जागीरदारों में इस कर के १२७३) रुपये वर्ष के अन्त में बाकी थे जिनको वसूल करने के लिये आटोण के हवालगीर के नाम हुक्म हुआ था। इससे पता चलता है कि पूरी रकम कई हजार होगी।

(३) कागजात सम्वत् १७०७।

**भूमि-कर**—मुकुन्दसिंहजी ने राज्य प्रबन्ध का अच्छा संगठन किया था। प्रत्येक गाँव की हकत जमीन और उसके लगान का विधि-पूर्वक हिसाब रक्खा जाता था और लगान वसूल करने में शिथिलता नहीं की जाती थी। यही कारण था कि सम्वत् १७११ में जो खालसे के गाँवों से भूमिकर वसूल हुआ वह सम्वत् १७०१ के भूमिकर से ४ गुना था[1]। उस समय जिस खेत में अन्न पैदा होता था उसके कड़ते में अन्न ही वसूल किया जाता था। इस प्रकार जो अन्न इकट्ठा होता था, उसको बेच कर खजाने में रुपया जमा कर दिया जाता था। जिन खेतों में कपास, सण, मक्का, तम्बाकू, तरकारी और राला आदि चीजें बोई जाती थीं उनका कड़ता नकद वसूल किया जाता था[2]। माल हासिल बाँटा कहलाता था। जब खेत में फसल खड़ी रहती थी तो सरकारी आदमी लटाई करते थे अर्थात् यह अनुमान लगा कर कि प्रति बीघा कितनी पैदावार होगी, राज का हिस्सा या बाँटा नियत करते थे। यह पैदावार के अनुकूल पौन तीसरा, तीसरा, या सवा तीसरा लिया जाता था। उदाहरणार्थ किसी खेत में तीन मन गेहूँ उत्पन्न हुये तो तीस सेर, एक मन या सवा मन गेहूँ माल हासिल के लिये जाते थे[3]। कपास पर प्रति बीघा लगभग १=), सण पर १), मक्का पर १=) और इसी कदर तम्बाकू, तरकारी और राले पर कड़ता लिया जाता

(१) कागजात सम्वत् १७११ की जमाबन्दी, सीगा मुतफरिकात, नाल का भण्डार।

(२) जमाबन्दी मौजा देवली, परगना आटोण सम्वत् १७१२।

(३) मौजा देवली, परगना आटोण में सम्वत् १७१२ में कुल २६५५ मन गेहूँ उत्पन्न हुये थे जिनमें से ८६८ मन कड़ते के रूप में सरकार में जमा किये गये थे।

कागजात सम्वत् १७१२, जमाबन्दी मौजा देवली, परगना आटोण।

तालीक सम्वत् १७०७, नाल का भण्डार, कार्तिक सुदी ११।

था। सिद्धान्त यह था कि सण, कपास, तरकारी आदि यदि कड़ते में लिये जाते तो उनका बेचना कठिन था और न बिकने की दशा में अधिक अर्से तक उनको सुरक्षित भी नहीं रक्खा जा सकता था[1]।

**भूमि-प्रबन्ध**---प्रति वर्ष फसल के समय माल हासिल का तखमीना किया जाता था। पटेल, पटवारी, हवालगीर और चौधरी कृषकों के साथ प्रत्येक गाँव के प्रत्येक खेत को देखते थे। सब के सामने उपज को कूँत कर (अनुमान लगा कर) बाँटा नियत करते थे। इस बात का खयाल रक्खा जाता था कि लोगों में असन्तोष न हो, और गाँव बरबाद न होजायँ। जागीरदारों को ताकीद की जाती थी कि उनके राजपूतों के घोड़े फसल को नष्ट न करें[2]। जिन किसानों को बीज नहीं मिलता उनको राज की ओर से दिलाया जाता था[3]। जब किसी गाँव में राज कर्मचारियों की कठोरता के कारण या जागीरदारों की निरंकुशता से या अन्य किसी कारण से असन्तोष बढ़ जाता था तो उचित प्रबन्ध करके उस गाँव के निवासियों के नाम दिलासा अर्थात् सन्तोष का पट्टा जारी किया जाता था[4]। राजा और प्रजा के सम्पर्क को स्थित रखने के लिये आषाढ मास में सब पटेलों को पगड़ियाँ और अँगोछे पहरावणी के रूप में दिये जाते थे। परगने के वार्षिक बजट में इस काम के लिये खर्च मन्जूर किया जाता था। पहरावणी देना प्रायः परगने के अधिकारियों के सुपुर्द था[5]। कई गाँवों में सरकारी खेती

(१) कागजात सम्वत् १७१२, जमाबन्दी मौजा देवली, परगना आटोण।
तालीक सम्वत् १७०७, नाल का भण्डार, कार्तिक सुदी ११।

(२) तालीक सम्वत् १७०७, नाल का भण्डार, कार्तिक सुदी ११।

(३) कागजात सम्वत् १७०७।

(४) कागजात सं. १७०७, आषाढ़ बुदी ३, कस्बा बमोरी को पट्टो दिलासा को

(५) कागजात सम्वत् १७०७।

होती थी। सम्वत् १७०६ में मौजा धाकड़खेड़ी, देवली, मंडानियाँ, टहला, अरनियाँ, रसूलपुर, चोमा मन्त्री, भोजपुर आदि में सरकारी हवाले थे। किसानों को दुर्भिक्ष में और अन्य अवसरों पर आवश्यकता पड़ने पर तकावी अर्थात् रुपया उधार दिया जाता था[1]।

**मुकाता**—जमीन का लगान सीधा किसानों से वसूल किया जाता था, परन्तु कभी २ कुछ गाँव मुकाते पर भी देदिये जाते थे। एक व्यक्ति से गाँव का निश्चित लगान वसूल करके उसको यह अधिकार दे दिया जाता था कि कृषकों से वह स्वयम् लगान वसूल करले[2]। इस विधि से मुकातेदार को और राजा को तो लाभ होता था, परन्तु कृषकों को हानि उठानी पड़ती थी, और शायद तंग भी अधिक होना पड़ता था। मुकाते की प्रथा राज्य में विशेष प्रचलित नहीं थी। किसी किसी परगने में केवल दो चार गाँव इस प्रकार मुकाते पर दिये जाते थे।

**ऋण**—मुकुन्दसिंहजी के शासन काल में भी सरकार की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी, अतः लोगों से भारी ब्याज पर रुपये उधार लेकर गाँव रहन कर दिये जाते थे[3]। कभी कभी सरकारी अन्न गिरवी रखकर कर्ज लिया जाता था। इस प्रकार गाँव दूसरे लोगों के सुपुर्द करने से प्रजा को कष्ट और राज्य के शासन में असुविधा होती होगी।

**अन्य कर**—माल हासिल के अतिरिक्त निम्न लिखित २५ कर और जारी थे:—

नेगा, कँवर मटकी, खड़पा, अहीठी, पटेल, खूँटी, कमीण, पटवारी, कुम्हार, बलाई, फरोई, गज बँधती, कंसारी, सराई, बारबाई, छापो, नापो,

(१) कागजात सम्वत् १७०६।
(२) तकसीम सम्वत् १७११, परगना उरमाल।
(३) कागजात सम्वत् १७०७, सीगा मुतफर्रिकात, आटोण के चौधरी के नाम परवाना।

घाणी, कलाली, बेसक, सींगोटी, नाव, खूँट, जामदारी, और घरीजना[१]। इनमें नेगा, खड़पा, अहीठी, कंसारी, बारबाई आदि के विषय में तो अनुमान भी नहीं किया जा सकता कि ये कर क्यों लिये जाते थे, और इनके नाम क्या द्योतित करते हैं। 'कँवरमटकी' शायद राजकुमार के खर्च के लिये लिया जाता था। 'पटेल', 'खूँटी', 'पटवारी', 'बलाई', 'गजबँधती' प्रत्यक्षतः पटेल, चौकीदार, पटवारी, बलाई और हाथी के खर्च के लिये वसूल किये जाते होंगे। 'सराई' सरकारी मकानों को सराने के लिये लिया जाता था। 'नापा' इस समय भी जारी है। 'छापा' शायद छीपों से लिया जाता था। नावें ठेके पर दी जाती थीं। 'कलाली' कर शराब की भट्टियों पर वसूल किया जाता था। 'घाणी' और 'सींगोटी' नाम से ही स्पष्ट हैं। कुम्हार, चमार, कीर, गूजर, खाती, मेहर आदि से राज्य में शान्तिपूर्वक कमाई करने के बदले में कर लिये जाते थे। एक कर 'जामदारी' नामक था जो कुछ अर्से पहले ही बन्द हुआ है। यह राजपूत, पटेल और ब्राह्मणों से नहीं लिया जाता था[२]। भैंस, गाय, बकरी और ऊँट आदि पशुओं पर वार्षिक कर लगता था। प्रति भैंस ढाई टका, प्रति गाय दो टका, प्रति ऊँट तीन टका और प्रति बकरी एक टका इसका परिमाण था[3]। इस साधारण कर से राज को अच्छी आय होजाती थी। सम्वत् १७११ में मौजा कनवास के ८०३ पशुओं पर १६४४ टके वसूल किये गये थे। इस मद की आमदनी का इससे अनुमान किया जा सकता है। विवाह और पुनर्विवाह (नाता) पर भी कर लिया जाता था। इन करों को जकाती वसूल करता था।

(१) कागजात सम्वत् १७१२ और १७०९, सीगा मुतफर्रिकात।

(२) कागजात सम्वत् १७१४, सीगा मुतफर्रिकात।

(३) कागजात सम्वत् १७११, सीगा मुतफर्रिकात।

**जकातों की जाँच**—जकातों की दैनिक आमदनी के हिसाब की जाँच होती थी और जाँच करने वाला दैनिक हिसाब पर अपने हस्ताक्षर करता था[1]। यह पता नहीं चलता कि जाँच करने वाले का ओहदा क्या कहलाता था। सम्भवतः परगने का अफसर ही यह जाँच करता होगा या करवाता होगा। जकात के कागजों पर सरकारी छाप होती थी। परगना गागरोण की जकातों के कागजों पर यह छाप फारसी में होती थी और अन्य परगनों की जकातों पर हिन्दी में।

**जकात की आय**—अधिकांश जकातों पर राज के नियत किये हुए जकाती रहते थे, परन्तु कोई २ जकातें मुकाते पर भी दे दी जाती थीं[2]। मुकातेदार निश्चित किया हुआ रुपया किसतों द्वारा अदा करता था। यदि अनुमान से आय बहुत कम होती थी तो प्रार्थना करने पर मुकातेदार को छूट दी जाती थी[3]। जकात की आमदनी माल हासिल से दूसरे दर्जे की थी। उपरोक्त लगभग ३० करों से तो विपुल आमदनी होती ही थी। इसके अतिरिक्त माल की आमद और बरामद पर जो कर लिया जाता था, उससे बहुत आमदनी होती थी। जहाँगीर और शाहजहाँ का शासन मुगल-काल का स्वर्ण-युग था। उस समय देश का व्यापार सम्पन्न अवस्था में था। माल की आमद और निकासी का इस बात से अनुमान किया जा सकता है कि सम्वत् १७११ में माघ बुदी १ से चैत्र सुदी ११ तक अर्थात् लगभग ५ सप्ताह में भूपाहेड़े की जकात पर होकर रूई के १८९ गाड़े, १००५ ऊँट और

(१) रोजनामचा जकात, कस्बा कोटा, सम्वत् १७०९।

(२) कागजात सम्वत् १७०७।

(३) कागजात सम्वत् १७१२, सीगा मुतफर्रिकात।

२००० बैल निकले थे[१]। एक रूई के गाड़े पर ४।-) जकात ली जाती थी।

**केन्द्रीय शासन**—सम्वत् १७०७ में राज श्री जगतसिंहजी गौड राजमन्त्री थे। राजाज्ञाओं के अन्त में "विद्यमान हजूर राज श्री जगतसिंहजी गौड़" लिखा जाता था। परगने के अफसरों के नाम जो आज्ञायें होती थीं, वे सब दरबार के नाम से हुआ करती थीं और आरम्भ में "महाराजाधिराज श्री मुकुन्दसिंहजी बचनात्" ऐसा लिखा जाता था। हवालगीर और दीवान के बीच में कोई बड़ा अफसर नहीं था। दरबार के हुक्म सीधे हवालगीर और चौधरी के नाम जाया करते थे। खर्च करने और किसी को नियत करने का अधिकार परगने के अफसरों को नहीं था। जो खर्च पहले से चला आता था उसकी भी परगने के अफसरों को प्रति वर्ष इजाजत लेनी पड़ती थी। चौंतरा अर्थात परगने की कचहरी में कागज, स्याही, जाजम, बस्ते आदि पर जो खर्च होता था, उसकी मन्जूरी भी प्रति वर्ष दरबार से हुआ करती थी[२]। परगने की कचहरी के सिपाही, चपरासी आदि नियत करके कोटे से भेजे जाते थे[३]।

**परगना-प्रबन्ध**—परगने का प्रबन्ध वैसा ही था जैसा माधोसिंहजी के समय में। माधोसिंहजी ने भी इस विषय में कोई नई बात जारी नहीं की थी। पहले से जो प्रबन्धविधि चली आती थी, वही उन्होंने जारी रक्खी थी। मुकुन्दसिंहजी को भी उसमें हेर फेर करने की आवश्यकता नहीं हुई। हर एक परगने में एक चौधरी, एक कानूगो

(१) कागजात सम्वत् १७११, सीगा मुतफर्रिकात।

(२) कागजात सम्वत् १७०७, सीगा मुतफर्रिकात।

(३) उपरोक्त।

और एक हवालगीर रहता था। पहले लिखा जा चुका है कि हवालगीर प्राय: राजपूत होता था और दरबार से नियत किया जाता था। परगने में एक फोतेदार होता था। अन्य नौकरों की संख्या परगने की आबादी और क्षेत्रफल पर अवलम्बित होती थी। परगना आटोण में सम्वत् १७०७ में २२ आदमी नियत किये गये थे। इससे अनुमान होसकता है कि अन्य परगनों में कितने आदमी रहते होंगे। हवालगीर, चौधरी आदि टहलुवा कहलाते थे। ठाकुर अर्थात् हवालगीर को लगभग १०) मासिक वेतन मिलता था। सिपाहियों का वेतन ३) मासिक था। इतना कम वेतन इसलिये था कि उस समय जीवन की आवश्यकतायें सस्ताई के कारण बहुत थोड़े ही रुपयों से पूर्ण होजाया करती थीं। सस्तेपन का अन्दाजा इससे होसकता है कि मुकुन्दसिंहजी के शासन काल में ज्वार का भाव ६।।) माणी था, और गन्ने का भाव १) प्रति हजार।

**दण्ड, पुण्य आदि**—जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में कठोर दण्ड की प्रथा प्रचलित थी। छोटे छोटे अपराधों में हाथ-पैर काट लिये जाते थे और भारी अपराधों के लिये आजन्म कारावास या प्राणदण्ड दिया जाता था। तत्कालीन योरूपीय यात्रियों ने शाहजहाँ के समय की और भी अधिक भयंकर दण्ड विधियों का वर्णन किया है[1]। कोटे में भी दण्डप्रणाली ऐसी ही कठोर होगी, परन्तु सरकारी कागजों से इस विषय का कुछ पता नहीं चलता। जो कागजात इस समय सुरक्षित हैं वे सब प्राय: हिसाब से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिये उनमें प्राणदण्ड आदि का इन्दराज नहीं मिल सकता। सम्वत् १७०७ के कागजों में केवल कस्बा कोटा से दण्ड के ५,५९९) जमा हैं। इससे

(१) पीटरमंडी—बरनियर, एडवर्ड टेरी आदि।

स्पष्ट है कि दण्डनीति नरम नहीं थी। उस समय कोई व्यवस्थित दण्ड-विधि नहीं थी, अतः पुरानी प्रथाओं और रिवाजों को दृष्टि में रख कर ही न्याय किया जाता था। सम्वत् १७१४ में बांस्याहेड़ी गांव के २१ निवासियों से व्यभिचार के अपराध में ७००) दण्ड के वसूल किये गये थे। मुकुन्दसिंहजी के समय में कई मन्दिर और बगीचों का निर्माण हुआ और मन्दिरों तथा देवरों के लिये पुण्यर्थ जारी हुआ। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि परम वैष्णव होते हुये भी ये इस्लाम धर्म पर बड़ी कृपा रखते थे। यही कारण है कि गागरोण में मिट्ठेजी की मस्जिद के निर्वाह के लिये " खड़िया " नामक गाँव जागीर में बख्शा गया था।

**राज्य विस्तार**—मुकन्दसिंहजी के समय में कोटा राज्य में पाँच परगने और बढ़े। इस प्रकार इनके राज्य में ३७ परगने होगये। इनमें से कुछ परगनों का सम्बन्ध मामलत के लिये सरकार गढ़ रणथम्भौर सूबा अजमेर से था, और कुछ का सम्बन्ध सरकार गढ़ गागरोण सूबा मालवे से। गागरोण का परगना माधोसिंहजी के समय में ही कोटा राज्य में सम्मिलित था और मुकुन्दसिंहजी के समय में कस्बा गागरोण में कोटा राज्य की जकात थी, परन्तु गागरोण का किला कोटा राज्य के अधिकार में नहीं था। कोटा राज्य के दक्षिण भाग में अपनी सेना और जाब्ता रखने के लिये मुगलों ने इस किले को अपने ही अधिकार में रख छोड़ा था। यह सरकार गढ़ गागरोण का प्रधान स्थान था और यहां का मुगल हाकिम शाही हित की दृष्टि से अपने सरकार के परगनों पर निगरानी रखता था।

**राजलोक**—मुकुन्दसिंहजी की माता का नाम बागमदे था और वे उदयपुर के महाराणा की पुत्री थीं। मोहनसिंहजी की माता का नाम श्याम जोधी था, जो महाराजा जोधपुर की पुत्री थीं। माधोसिंहजी

की सात विधवा पत्नियों में से चार अपने पुत्रों के साथ उनके ठिकानों पर चली गई थीं। शेष तीन राणियां और छः विधवा खवासें मुकुन्दसिंहजी के साथ कोटे में ही रहीं[1]। मुकुन्दसिंहजी की दस पत्नियों का सरकारी कागजों में उल्लेख है। जिनमें चार राठौड़, दो झाला, एक जादौन, एक सीसोदिया, एक बड़गूजर और एक भाँकरोंत थीं[2]। इनमें जोधपुर राठौड़ जी को परगना घाटोली में नीमोदा, नगपुरा, और सुदेला जागीर में दिये हुये थे[3]। अन्य पत्नियों को भी शायद जागीरें दी हुई हों। सम्वत् १७०७ में राजलोक पर २२,०६७ रुपये खर्च हुये थे। जागीरें इससे अलग थीं। मुकुन्दसिंहजी के मृगावती और राजकँवर नाम की दो पुत्रियां भी थीं।

**अबला मीनी**—मुकुन्दसिंहजी की एक खवास का नाम अबला था जो जाति से मीणी थी। पण्डित रामकरण ने इसके विषय की किंवदन्तियों के आधार पर निम्नलिखित वृत्त लिखा है:—

"इस गाँव (मुकन्दरा) को महाराज मुकुन्दसिंहजी वालिये कोटा ने आबाद किया था जिसका मुख्तसिर जिक्र यह है कि वह एक दफा इस दरे में शिकार खेलने को आये थे। यहाँ एक औरत कौम मीणा अबला नामी जो खैराबाद की रहने वाली और निहायत हसीन थी, महाराजा के नजर आई जिस पर वह आशिक हो गये और ख्वाम-ख्वाह उसको अपने हरम में दाखिल की और यहाँ यह गाँव बसा कर और महल, बाग और शिकारगाहें बनवाकर रहने लगे। एक रात अबला का शोहर कटार लेकर मुकुन्दसिंहजी के पास गया जिसको उन्हों

(१) कसार के राणीसंग की किताब से।

(२) कागजात सम्वत १७०७।

(३) कागजात सम्वत १७०७, तकसीम परगना घाटोली।

ने कुछ जागीर देकर राजी कर लिया और यह हक भी मुकर्रर कर दिया कि जो मुसाफिर इस दरे में होकर निकले उससे ऊँट, घोड़े, गाड़ी का महसूल ले लिया करे[1] "।

जनरल सर कनिंगहम ने लिखा है कि:—

"अबला मीणी ने मुकुन्दसिंहजी के पास रहना स्वीकार करते हुये यह शर्त की थी कि दरे के पहाड़ पर उसके लिये महल बनवाया जावे और उस पर प्रति रात्रि ऐसा चिराग जलाया जावे जो अबला के गाँव वालों को दिखाई दे सके। इस समय भी यह दीपक जलाया जाता है[2] "।

इस समय न दीपक जलाया जाता है और न दरे की नाल में किसी मीणे को महसूल वसूल करने का अधिकार है।

अबला के महल, जो मुकन्दरे में पहाड़ी के शिखर पर बने हुये हैं और इस समय नष्ट होते जाते हैं, साधारण इमारत है जिसमें कोई उल्लेख योग्य बात नहीं है। अबला के रहने का दो मंजिला मकान है, जिसमें नीचे आमने सामने दो चौबारे और उनके बीचमें एक तिबारी है। यही ऊपर की मंजिल में है। शेष दास दासियों और नौकरों के रहने के लिये मकान हैं। चारों ओर रक्षा के लिये दीवार बनी हुई है, जिसके दो दरवाजे हैं। दूर से देखने में वह छोटी सी गढ़ी मालूम होती है। कोटा नगर में इस महिला ने एक बावड़ी बनवाई थी और एक बाग लगवाया था। बावड़ी इस समय मौजूद है परन्तु बाग बड़े बाग में मिला दिया गया है इससे उसकी सीमा का पता नहीं लगता। यह आश्चर्य की बात है कि जिस काल में भारतवर्ष में ताजमहल और

(१) पं० रामकरण: अहवाले रियासत कोटा, पृष्ठ ६१।

(२) रिपोर्ट ऑफ इन्डियन आरक्योलोजीकल सर्वे, जिल्द २३, पृष्ठ १३२

मोती मस्जिद का निर्माण हो रहा था उस समय मुकुन्दसिंहजी ने अपनी भोग्य पत्नी के लिये इतना साधारण मकान बनाया जिसमें कला और सुन्दरता का कोई चिन्ह नहीं है।

सूर्यमल्ल ने इस खवास के विषय में मुकुन्दसिंहजी की बहुत निन्दा की है[१]।

**मुन्कदरा**—सम्वत् १७०८[२] में मुकुन्दसिंहजी ने दरे की किलेबन्दी की और दरे की घाटी (नाल) में दरवाजा बनवाया। सैनिक दृष्टि से यह किला उस समय बड़े महत्त्व का था। यह मालवा और हाड़ोती को विभक्त करता है और दो सेनाओं में मुठभेड़ होने के लिये एक खास स्थान था। जसवन्त राव होल्कर से हार कर कर्नल मॉनसून इस घाटी में होकर ही भागा था। सम्वत् १७०८ में जब कोटा राज्य को स्थापित हुये लगभग ३० वर्ष ही हुये थे तो साम्राज्य के प्रधान मार्ग पर इस प्रकार अधिकार स्थिर करना राजैनतिक दृष्टि से असाधारण काम था। उस समय हिन्दू नरेशों को किले बनवाने की इजाजत नहीं दी जाती थी अतः नवस्थापित राज की सीमा पर और शक्तिशाली सम्राट् शाहजहाँ के शासन काल में मुकुन्दसिंहजी का किला बनवाना जाहिर करता है कि मुगल दरबार में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। मुकुन्दसिंहजी के नाम पर इस किले का और पास ही बसाये हुये गाँव का नाम 'मुकन्दरा' रक्खा गया। तब से इस पहाड़ की श्रेणियों का नाम भी 'मुकन्दरा' होगया।

**मुगल साम्राज्य में भूचाल**—मुकुन्दसिंहजी केवल ७ वर्ष ही राज्य करने पाये थे कि मुगल साम्राज्य में ऐसा भूचाल आया जिसने

(१) वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ ६३२–३३

(२) ठाकुर लक्ष्मणदान

सुविस्तृत राज्य को जड़ तक हिला दिया। शाही तख्त डाँवाडोल होने लगा और शाहजहाँ का जीवन संकटमय बन गया। शाही परिवार में कलह का भीषण नृत्य होने लगा। एक शाहजादा दूसरे शाहजादे के खून का प्यासा बन गया और सारे देश में भय और अशान्ति फैल गई। इस भयंकर भूकम्प का धक्का कोटे तक पहुँचे बिना कैसे रह सकता था? शाहीपरिवार के कलह में मुकुन्दसिंहजी को भी सम्मिलित होना पड़ा और सम्वत् १७१७ में स्वामिभक्ति की बलिवेदी पर उनको प्राणों की आहुति दे देनी पड़ी।

**शाहजहाँ के चार पुत्र**—सम्राट् शाहजहाँ के चार पुत्र थे। दाराशिकोह, शुजा, औरंगजेब और मुराद। दारा सब से बड़ा था। इसको शाहजहाँ बहुत चाहता था। वह पंजाब का सूबेदार था, परन्तु अधिकतर अपने पिता के साथ दिल्ली में रहा करता था और शाहजहाँ इसको अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। शासन के कई अंग इसके सुपुर्द थे और सब देश को यही आशा थी कि दाराशिकोह भावी सम्राट् होगा। वह फारसी का अच्छा विद्वान था और सूफी सम्प्रदाय की ओर झुका हुआ था। इसलिये इसने फारसी भाषा में उपनिषदों का अनुवाद कराया था और अपने उदार विचारों के कारण यह हिन्दुओं से प्रेम करता था। अतः राजपूत लोग इसको बहुत चाहते थे।

शुजा बंगाल का सूबेदार था। वह फारसी का विद्वान, पराक्रमी, वीर और बुद्धिमान् तो था, परन्तु उसका अधिकांश समय अंतःपुर और मद्यपान में व्यतीत हुआ करता था। औरंगजेब शाहजहाँ का सब से योग्य पुत्र था। उसका हृदय अनुदार था और मन में कपट भरा रहता था, परन्तु उस काल और परिस्थिति में जिन गुणों की आवश्यकता थी वे सब उसमें विद्यमान् थे। उसको राजनीति का अच्छा ज्ञान था, राजप्रबन्ध

का अनुभव था, वह बात को बहुत गुप्त रख सकता था और सेना संचालन में बड़ा दक्ष था। कट्टर मुसलमानों को दारा के विरुद्ध वह बहुत आसानी से भड़का सकता था।

मुराद बलवान और बहादुर था परन्तु राजनैतिक ज्ञान से नितान्त शून्य था। न वह किसी बात को गुप्त रख सकता था, न गहरी चालों को समझ सकता था। उसका हृदय उदार था और लोगों के साथ वह बहुत अच्छा व्यवहार करता था। साथ ही वह विलासप्रिय इतना था कि कभी कभी अत्यन्त आवश्यक काम के लिये भी वह अन्तःपुर से बाहर नहीं निकला करता था[१]।

**शाहजहाँ की बीमारी**—सम्वत् १७१४ में शाहजहाँ बीमार पड़ा और एक सप्ताह में ही उसका हिलना चलना बन्द होगया। अपने अमीर और उमरावों के सामने उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र दारा को अपना उत्तराधिकारी नियत किया और उसको भलीभाँति राज्य करने का उपदेश किया। दारा ने शासन सूत्र तो अपने हाथ में ले लिया परन्तु अपने भाइयों के भय से शाहजहाँ की बीमारी का हाल गुप्त रख कर वह अपने पिता के नाम पर ही राज्य करने लगा। लेकिन यह बात कहाँ तक निभ सकती थी? सारे देश में सम्राट् की बीमारी का हाल फैल ही नहीं गया बल्कि यह भी चर्चा होने लगी कि शाहजहाँ मर गया। बहुत अर्से तक बीमार रह कर जलवायु परिवर्तन के लिये वह आगरा गया और फिर अपने जीवन में आगरे के किले से बाहर

---

(१) जे. एन. सरकार : हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, प्रथम खण्ड, पृष्ठ २९४-३००।

ईश्वरीप्रसाद :— ए शोर्ट हिस्ट्री ऑफ मुसलिम रूल इन इण्डिया, पृष्ठ ६१५ – १८।

न निकल सका। दिल्ली से प्रस्थान करते समय क्या उसने कभी इस बात की कल्पना भी की होगी कि उसका शेष जीवन एक बन्दी की भाँति कटेगा?

**शाहजादों की चढ़ाइयाँ**—ज्योंही शाहजहाँ के देहान्त की अफवाह देश में फैली त्योंही सर्वत्र अशान्ति की ज्वाला धधकने लगी। दारा ने राजमन्त्रियों से स्वामिभक्ति के बचन लिये और शाहजहाँ के मरजाने की झूठी खबर को रोकने के लिये बंगाल और दक्षिण के मार्ग बन्द कर दिये। इससे झूठी अफवाह और भी अधिक फैली। मुराद और शुजा अपने अपने सूबों में सम्राट् की उपाधि धारण करके युद्ध की तैयारियां करने लगे। परन्तु औरंगजेब बड़ी चतुरता के साथ स्थिति का निरीक्षण करता रहा। अन्त में मुराद और औरंगजेब दोनों मिल गये और दारा को 'काफिर' घोषित करके परस्पर यह ठहराया कि विजय प्राप्त होने पर साम्राज्य के दो भाग कर दिये जावें। पंजाब, अफगानिस्तान, काश्मीर और सिंध पर मुराद राज्य करेगा और शेष देश पर औरंगजेब। इस निश्चय के पश्चात् दोनों भाइयों की संयुक्त सेना उत्तर की ओर बढ़ी और उज्जैन के निकट धर्मत * नामक गाँव के पास खेमे डाल कर दारा की सेना की प्रतीक्षा करने लगी[1]।

---

(१) (i) सर जे. एन. सरकार: हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, प्रथम भाग पृष्ठ ३०६-०७, ३१२-१३, ३१५,३२६,३३५,३३६,३३९ और ३७६।

(ii) आलमगीर नामा, पृष्ठ २७,२८,४३,५३–५६,८४।

* धर्मत २३ उ० ७५.४३ पू० पर स्थित है। यह दीपलपुर से १२ मील उत्तर की ओर है। दीपलपुर २२.५० उ० ७५.३६ पू० पर स्थित है। फतहाबाद के रेलवे स्टेशन से धर्मत २ मील दक्षिण पश्चिम में है और उज्जैन से १४ मील दूर अधिकतर दक्षिण की ओर झुकता हुआ पश्चिम में है।

—इन्डियन एटलस शीट नं० ३७।

**शुजा का पराजय**—शुजा राजमुकुट धारण करके दिल्ली की ओर बढ़ा परन्तु दारा के पुत्र सुलेमानशिकोह ने और जयपुर के महाराजा जयसिंहजी ने उसको बनारस के पास हरा दिया और वह बंगाल की तरफ भाग गया। इसके बाद शुजा ने राज्य प्राप्ति के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया।

**मुकुन्दसिंहजी को रणनिमन्त्रण**—औरंगजेब और मुराद की कूँच के समाचार दारा को मिल ही चुके थे और उनको रोकने के लिये एक बहुत बड़ी शाही सेना रवाना करने का आयोजन हो रहा था। मुकुन्दसिंहजी के नाम शाही सेना में सम्मिलित होने के लिये फरमान आया और वे ५००० सवारों के साथ रवाना हुये। उन्हीं के साथ उनके चारों भाई मोहनसिंह, जुझारसिंह, कन्हींराम और किशोरसिंह ने भी प्रस्थान किया। उधर कासिमखाँ और जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंहजी के नेतृत्व में शाही सेना कूँच के लिये सुसज्जित हो चुकी थी। इसमें मुकुन्दसिंहजी सम्मिलित हुये। यह सेना उज्जैन पहुँची और क्षिप्रा नदी के तट पर खेमे डाले गये।

**रण-प्रतीक्षा**—दो दिन तक औरंगजेब और जसवन्तसिंह में सन्धि की बातचीत होती रही परन्तु कासिमखाँ औरंगजेब से पहले ही मिल चुका था। इसलिये औरंगजेब ने इस सन्धि की कोई चिन्ता नहीं की। इस अर्से में उसको विपक्ष दल की परिस्थिति का भी पूर्ण परिचय होगया था। उसको पता लग चुका था कि वहाँ पारस्परिक द्वेष, सन्देह और विभिन्न ध्येयों का ताण्डव होरहा है। कासिमखाँ दारा के उदार विचारों से सहमत नहीं था। साथ ही दारा ने यह भी प्रकट नहीं किया था कि सेना का नायक जसवन्तसिंह है या कासिमखाँ। सेना में राजपूतों का प्राधान्य था और ये लोग अपने अपने सरदारों के अतिरिक्त दूसरों

का हुक्म मानना अपना अपमान समझते थे। इसके अतिरिक्त मुसलमान अपने तरीके से लड़ना चाहते थे और राजूत लोग अपनी परम्परागत विधि से[१]।

**रण-भेरी**—कासिमखाँ के मिल जाने से औरंगजेब को विजय प्राप्ति का पूरा भरोसा था। उधर जसवन्तसिंहजी भी अपमानजनक शर्तें मान कर सन्धि करने के लिये तैयार नहीं थे। दो दिन तक दोनों सेनायें प्रतीक्षा में खड़ी रहीं। औरंगजेब का खयाल था कि जसवन्तसिंह लड़े बिना ही रणक्षेत्र से हट जायगा। उधर जसवन्तसिंहजी भी समझते थे कि परिवार के विनाश का विचार करके शायद औरंगजेब हट जावेगा। परन्तु अन्त में अनिष्ट होना ही था। रण-भेरी बजी और १५ अप्रेल सन् १६५८ (सम्वत् १७१४) को प्रातःकाल रणचंडी का नृत्य होने लगा।

**हरावल में मुकुन्दसिंहजी**—जसवन्तसिंहजी ने अपनी दस सहस्र सेना को दो भागों में विभक्त किया था। एक भाग का अफसर कासिमखाँ को बनाया, दूसरे का मुकुन्दसिंहजी को। उनके साथ ६ राजपूत सरदार और थे। प्रधान सेना की दायीं ओर रायसिंह सीसोदिया, और बायीं ओर इफ्तिखारखाँ अपनी अपनी फौजों के साथ नियत किये गये थे। बीच में स्वयम् जसवन्तसिंहजी दो हजार राठौड़ों के साथ सेना का नेतृत्व कर रहे थे[२]। मुकुन्दसिंहजी अपने चार भाई और राजपूत

---

(१) (i) आलमगीर नामा, पृष्ठ ५६–७८।
(ii) सर जे. एन. सरकार : हिस्ट्री आफ औरंगजेब, जिल्द २, पृष्ठ १-८।

(२) (i) ब तरतीवे लश्कर व सफ आराइये अफवाजे नुकबत असर लेश पर-दाख्ता कासिमखाँ रा सरदारे हरावल साख्त। व जमये अज राजपूतान उम्दये नामी जिलादत शआर मिस्ले मुकुन्दसिंह हाड़ा व राजा सुजानसिंह बुन्देला व अमीरसिंह चन्द्रावत व रतन राठौड़ व

वीरों के साथ सेना के अग्रभाग में रौद्र रूप धारण किये हुये शस्त्र-सम्पात की प्रतीक्षा कर रहे थे।

**मुकुन्दसिंहजी की रणक्रीड़ा**—दोनों सेनायें तोप और बन्दूकों से गोले और गोलियाँ बरसाती हुईं एक दूसरे की ओर बढ़ने लगीं। औरंगजेब की सेना राजपूतों पर विशेष रूप से वार करने लगी। मुकुन्दसिंहजी को इधर उधर मुड़ कर वार करने के लिये स्थान नहीं था। उनकी फौज चारों ओर से चपेट में आगई थी और उनके आदमी प्रतिक्षण धड़ाधड़ धराशायी होने लगे। यह स्थिति देखकर मुकुन्दसिंहजी और दूसरे राजपूत सरदारों से नहीं रहा गया। उन्होंने अपने राजपूतों के साथ 'राम राम' का रणनिनाद करते हुये घोड़े आगे बढ़ाये और शत्रुओं पर शेरों के समान टूट पड़े। औरंगजेब के तोपखाने ने गोलों की भयंकर वर्षा की परन्तु रणोन्मत मुकुन्दसिंहजी आगे बढ़ते ही गये। गोलों की मार से अनेक राजपूत वीर धराशायी हुये और तोपखाने के सैनिकों ने अद्भुत वीरता से राजपूतों का सामना किया। परन्तु राजपूतों का जोश फिर भी कम नहीं हुआ। अंत में तोपखाने का अफसर मुर्शिदकुलीखाँ वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया और उसके अनुयायी हिल गये। इस प्रकार तोपखाने को चीरते हुये प्राणों की बाजी लगा

---

अर्जुन गौड़ व दयालदास झाला व मोहनसिंह हाड़ा व दीगर अ आजमे राजपूतान व खुशहाल बेग काशगरी व सुलतान हुसैन वल्द असालतखाँ मरहूम व दीगर बंदहाय मौतबर बादशाहे व मर्दुमे कारतलब सिपाहे दर आँ फौज तअय्युन कर्द।

—आलमगीरनामाह पृष्ठ ६५।

(ii) सर जे. एन. सरकार हिस्ट्री ऑफ ओरंगजेब, जिल्द २, पृष्ठ १२–१३।

कर मुकुन्दसिंहजी औरंगजेब की हरावल पर टूट पड़े[1]। यहाँ पर भयंकर लड़ाई हुई। एक शूरवीर दूसरे से भिड़ गया और औरंगजेब की हरावल का अफसर जुलफिकारखाँ भारतीय वीर की भाँति हाथी से उतर कर लाशों से भरे हुये मैदान में रणोन्मत्त होकर लड़ने लगा। परन्तु उसके अद्भुत आत्मोत्सर्ग से भी राजपूतों की रणतरंग रुक न सकी। दो घातक घावों से वह धराशायी होगया और राजपूत उन्मत्त होकर ललकारते हुये और आगे बढ़े[2]। औरंगजेब के लिये यह नाजुक घड़ी थी। अगर राजपूतों की बढ़ती हुई बाढ नहीं रुकती तो औरंगजेब का साम्राज्य स्वप्न सत्य नहीं होता। राजपूतों की जीत होती जाती थी और उनका जोश प्रतिक्षण बढता जाता था। परन्तु भाग्य ने पलटा खाया और संग्राम का स्वरूप एक दम बदल गया। औरंगजेब की हरावल के दूसरे अफसरों ने धैर्य्य और वीरता के साथ लड़ाई की। अपने हाथियों

---

(१) दर ईं असना अज हरावल आँ मोकबे इदबार जमये कसीर अज राजपुताने मुतहव्वर मकहूर जलादतखू।

नजम

हमा सरकशो जाहिलो जंग जू, चु शमशीर आहिन दिलो सख्त रू।
ब बहरे वुगा जुम्लगी हमकदम, हमाँ बस्ता चूं मोजेदामाँ बहम॥

मिसले मुकुन्दसिंह हाड़ा व रतन राठौड़ व दयालदास झाला व अर्जुन गौड़ व दीगर उम्दहा व रऊसाय आँ कौम बे बाक जलालत केश बा तमाम अतबाअ व सिपाह खेश रायते जॅहल व तहव्वुर अफराश्ता दस्ते तअल्लुक अज जां बरदाश्ता ब यक बारगी जिलो अन्दाखतन्द व जंगो सितेज परदाख्तन्द। मुर्शिद नखुस्त ब तोपखानए हुमायूँ रसीदा ब जंगो सितेज परदाख्तन्द। मुर्शिद कुली खाँ............मरदाना वार नकद जांनिसार नमूदा ब गुलगूनए शहादत चॅहर ए सआदत बर अफरोख्त—आलमगीर नामा, पृष्ठ ६६–६७.

(२) राजपूताने बद गुहर जहालत परवर अज वकूए ईं हाल खीरःतर शुदः व अज तोपखाने हुमायूँ गुजश्ता......बर हरावल मोकबे मंसूर ताख्तन्द ......जॅंगे अजीम दर पेवस्त। —आलमगीर नामा, पृष्ठ ६७।

(ii) सर, जे. एन. सरकार: हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जि॰ २, पृष्ठ १४–१५

पर चट्टानों की भाँति डटे हुये वे राजपूतों से लड़ने लगे। इतना घोर संग्राम हुआ कि रणखेत खून से रंग गया। राजपूत अनेक भागों में विभक्त थे। हाड़ा, राठौड़, गौड़ सब अपने अपने सरदारों के नेतृत्व में लड़ रहे थे। ये लोग अपने अपने ढंग से औरंगजेब की सेना पर वार कर रहे थे परन्तु विभक्त होने के कारण इनके आक्रमण में कमजोरी थी। इसके अतिरिक्त जब औरंगजेब के तोपखाने को चीरते हुये राजपूत आगे बढ़ कर औरंगजेब की हरावल में घुस पड़े तो तोपखाने के अफसरों ने सँभल कर उनको जसवन्तसिंहजी की सेना से अलग कर दिया, इसलिये मुकुन्दसिंहजी अपने चारों भाई और दूसरे राजपूत सरदार और सैनिकों के साथ शत्रुओं से घिर गये।

इस समय औरंगजेब ने राजपूतों का भयंकर आक्रमण देखा और वह स्वयम् उनकी ओर बढ़ा। सामने औरंगजेब था और दायीं तथा बायीं ओर से औरंगजेब के दो बड़े अफसर सफशिकनखाँ और शेखमीर धैर्य्य और चतुरता से वार कर रहे थे। तोपखाने के कारण पीछे से राजपूतों को सहायता भी नहीं पहुँच सकती थी। अपनी जान को हथेली पर रख कर मुकुन्दसिंहजी और दूसरे राजपूत सरदार वीरता पूर्वक लड़ते रहे[1]।

**मुकुन्दसिंहजी की वीरगति**—अन्त में मुकुन्दसिंहजी की आँख में तीर लगा और उन्होंने वीरगति प्राप्त की। उनके भाई मोहनसिंहजी भी बड़ी वीरतापूर्वक लड़ते हुये अपने भाई के पास ही मारे गये। जुझारसिंहजी और कन्हींरामजी ने भी अपने भाई की बलिदान भूमि पर ही प्राणोत्सर्ग किया। किशोरसिंहजी अगणित घावों से आहत होकर अचेत अवस्था में लाशों के ढेर में गिर पड़े। मुकुन्दसिंहजी के

---

(१) (i) सर जे. एन. सरकार : हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जि० २, पृष्ठ १५–१७।
(ii) आलमगीर नामा, पृष्ठ ६८–६९, ७०।

साथी अन्य छः राजपूत सरदारों ने भी वीरतापूर्वक मृत्यु का आलिंगन किया। मुकुन्दसिंहजी के ५०० वीर सैनिक अपने स्वामी के साथ ही रणक्षेत्र में जूझ मरे। इस भाँति अपने चार भाइयों के साथ रणक्षेत्र में वीर की भाँति गिर कर मुकुन्दसिंहजी ने अनुपम स्वामिभक्ति का परिचय दिया[1]।

---

(१) (i) दर ई रुस्तखेज बला व सितेज मर्द आजमा मुकुन्दसिंह हाड़ा व सुजानसिंह सीसोदिया व रतनसिंह राठौड़ व अर्जुन गौड़ व दयालदास झाला व मोहनसिंह हाड़ा के अज सरदाराने मौतबर व उम्दहा व आयाने आँ लश्कर बूदन्द ब तेगे आबदार आतिशबार मुजाहिदान जफर शिआर मर्दानावार सर दर जेबेअदम कशीदन्द व जमए कसीर व फिरकए अम्बोह अज नाम आवरान आँ गरोहे बातिल पिजोह हमराही आँ सालिकान मसालिके फना गजीदन्द।

—आलमगीर नामा, पृष्ठ ७०।

(ii) अगर्चे राजपूतान नीज मानिंद तेगे आबदार बकार जार दर आमदन्द व बे मुहाबा अज सर जाँ दर गुजश्ता व अजल दस्तो गरेबाँ शुदन्द ब मुसाअदत हिम्मत कारगर व कार फरमाये जिलादत दर अंदक फुरसत गलबा नमूदा जमए रा जरीह व कतील व बाजे रा मनकूब व मगलूब ब वादिए फरार अन्दाख्तन्द। चुनाँचे मुकुन्दसिंह हाड़ा व अर्जुन गौड़ दर ऐन गर्मिये हंगामए कारजार अज सरे कुदरत ब कुव्वते तमाम ब हम्लए शेराना अज जा दर आम्दा अज सरे तहव्वुर व रुए तजल्लुद अफवाजे आली रा तारोमार नमूदा अज फील सवारी ए खासा पेश गुजश्तन्द व बजर्बे तेगे जाँ सिताँ व नेजए सीना दोज हक्के दिलेरी व दिलावरी चुनाँचे हक्के मुकाम बूद बजा आवुर्दा कारिस्तानी दर अरसए मसाफ बरूँए कार आवुर्दन्द के साल हाय दराज जीनते सफहे अय्याम ख्वाहद बूद अम्मा चूँ अफवाज अज तरतीब उफ्तादा व सरदाराने बे सबात ब मदद आँहा न पर्दाख्तन्द लाचार आखिरकार बाद अज नुमायश दस्त बुर्दे नुमायाँ व तरुद्दात शायाँ बा पानसद तन दरहि खुदावंद जमीनो जमाँ जान रा निसार नमूदा नेक नामी ए अबद एवज गिरफ्तन्द।

—अमल-ए-सालेह, जिल्द ३, पृष्ठ २८६ व २८७

(ii) वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २६६७।

जसवन्तसिंहजी आहत होकर जोधपुर चले गये और कासिमखाँ के विश्वासघात के कारण औरंगजेब ने विजयी होकर शाही सेना के खेमों को खूब लूटा। अपनी विजय की स्मृति में औरंगजेब ने इस स्थान का नाम फतेहाबाद रक्खा। रणक्षेत्र पर एक गाँव बसाया, बाग लगाया और मस्जिद तथा एक सराय बनवाई। रतनसिंहजी राठौड़ (रतलाम) के उत्तराधिकारियों ने उनके दाह स्थान पर एक स्मारक बनवाया था परन्तु कालान्तर में वह नष्ट होगया। अब उसके स्थान पर श्वेत पत्थर का एक भव्य स्मारक बनवाया गया है। वास्तव में यह आश्चर्य की बात है कि मुकुन्दसिंहजी जैसे वीर नरेश का उस उत्सर्ग भूमि पर कोई स्मारक नहीं है। भाटों की पुस्तकों में और चारणों की कविता में मुकुन्दसिंहजी की वीरता का बहुत वर्णन है, परन्तु मोहम्मद सालीह काम्बू और मिर्जामोहम्मद काजीम ने जो मुकुन्दसिंहजी और मोहनसिंहजी की रणक्रीड़ा का वर्णन किया है, वह इन दोनों वीरों और इन दोनों लेखकों के लिये गौरव की बात है।

**कोटे में खबर और १७ सतियाँ**—लाशों के ढेर में से जब मुकुन्दसिंहजी और उनके भाइयों के शवों को दाह-कर्म के लिये उठाया जारहा था तो पता लगा कि किशोरसिंहजी में अभी प्राण शेष हैं। उचित उपचार करने से उनको चेत हुआ और घावों से भरे हुये वे बचे हुये सैनिकों के साथ अपने चार भाइयों की मृत्यु के दुखद समाचार और विजयी औरंगजेब की अवश्यम्भावी अप्रसन्नता की आशंका के साथ कोटा लौटे। किशोरसिंहजी ४२ घावों से क्षतविक्षत थे। अवशिष्ट सेना अपने चार सूरमा रईसों को और पाँच सौ वीर सैनिकों को खो चुकने के कारण विवर्णबदना थी। मुकुन्दसिंहजी के पुत्र जगतसिंहजी उस समय केवल १४ वर्ष के थे। शोक समाचार को पाकर मुकुन्दसिंहजी की दस रानियों और ७ खवासों ने सहगमन किया। कोटा राज्य के

राजपरिवार में इससे अधिक क्लेश का दिन और क्या हो सकता था ? मुकुन्दसिंहजी और उनके तीन भाई मारे जाचुके थे। किशोरसिंहजी अपने अगणित घावों के कारण अभी जीवन और मरण की सन्धि में थे। कोटा राज्य के उत्तराधिकारी की अवस्था केवल चौदह वर्ष की थी और उनकी सब मातायें परलोक में अपने पति के साथ की अभिलाषा से चिता में अपने प्राणों की आहुतियाँ दे चुकी थीं। उधर औरंगजेब धर्मत और समूगढ़ में विजय प्राप्त करके राजमुकुट धारण कर चुका था। उसने अपनी आँखों से देखा था कि किस प्रकार मुकुन्दसिंहजी और मोहनसिंहजी उसकी सेना को काटते चीरते हुये विकराल काल के जोड़े की भाँति उसकी ओर बढ़ रहे थे। पारिवारिक नाश और राजनैतिक भय को धैर्यपूर्वक सहन करना चौदह वर्षीय जगतसिंहजी के लिये कितनी भयंकर परीक्षा थी !

**समूगढ़ की लड़ाई**—धर्मत में विजयी होकर औरंगजेब और मुराद आगरे की ओर बढ़े। २१ मई सन् १६५८ को वे ग्वालियर पहुँचे और उसी दिन चम्बल पार करके आगे कूँच किया। दारा ने चम्बल के उन तमाम स्थानों को रोक रक्खा था जहाँ से सेना उतर सकती थी परंतु औरंगजेब ने दूसरी जगह से अपनी सेना उतार ली और आगरे से लगभग ८ मील पूर्व की ओर रामपुर की थाग से एक मील की दूरी पर समूगढ़ नामक ग्राम के मैदान में उसने अपनी सेना का केम्प लगाया[1]।

**शाही हरावल में बूँदीपति शत्रुशाल जी**—दाराशिकोह ने अपने पिता शाहजहाँ से आँखों में आँसू भर कर पहले ही विदा ले-ली थी। धौलपुर के पास वह औरंगजेब की सेना को चम्बल पार करने

(१) i औरंगजेब नामा, पृष्ठ ७५–७६।
ii सर जे. एन. सरकार : हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द २, पृष्ठ ३०।

से नहीं रोक सका था। अब ५०,००० सेना के साथ समूगढ़ के रणक्षेत्र में औरंगजेब के साथ लड़ने के लिये वह तैयार हुआ। सेना के आगे तोपखाने की एक लम्बी पंक्ति जमाई गई। इसके पीछे कई हजार पैदल बन्दूकें लेकर खड़े हुये। तीसरी पंक्ति में ५०० ऊँटों का जम्बूरखाना जमाया गया और इसके पीछे कई सौ हाथी खड़े किये-गये और इन सब के पीछे हजारों घुड़सवार अपने अपने सरदारों के नेतृत्व में भारतीय सैनिक प्रणाली के अनुसार व्यवस्थित किये गये। हरावल में हाड़ा, राठोड़, सीसोदिया, और गौड़ राजपूत रक्खे गये, जिनका नेतृत्व बूँदी के शत्रुशालजी के सुपुर्द किया गया[१]। इनकी वीरता मुगल सेना में बहुत प्रसिद्ध थी और दारा को इन पर बड़ा भरोसा था।

**शत्रुशाल जी का मुराद पर आक्रमण**—दारा का मुसलमान जनरल खलील उल्ला तो विश्वासघात करके लड़ने का केवल नाट्य करने लगा परन्तु शत्रुशालजी तोपखाने को चीरते और मुराद की सेना को पार करते हुये ठीक उसके हाथी के पास पहुँच गये। मुराद भी धीरता और वीरता के साथ लड़ता रहा और कई घाव लगजाने पर उसने अपना हाथी पीछे हटाया। तब शत्रुशालजी ने अन्य राजपूत वीरों के साथ औरंगजेब पर आक्रमण किया और लोमहर्षण वीरता के साथ लड़े। औरंगजेब और उसके अनुयायियों ने भी धैर्य नहीं छोड़ा और वीरता के साथ राजपूत योद्धाओं से भिड़ गये। बहुत देरतक घमासान युद्ध हुआ, जिसमें अन्य राजपूत रईसों के साथ शत्रुशालजी धराशायी हुये। उनके पीछे अनेक राजपूत सैनिकों ने अपने आक्रमण से मुसलमानों को चकित करते हुये प्राणोत्सर्ग किया[२]। शत्रुशालजी के साथ उनके पुत्र

(१) सर जे. एन. सरकार : हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द २, पृष्ठ ४१।
(२ उपरोक्त, पृष्ठ ४९–५१।

भरतसिंहजी, भाई मोहकमसिंहजी, उनके दो पुत्र और उदयसिंहजी नामक एक भतीजे सब इसी लड़ाई में मारे गये। शत्रुशालजी के मारे जाने पर औरंगजेब चिल्ला कर बोला वह फतेहाबाद नहीं यह फतेहाबाद है। इस प्रकार धर्मत और समूगढ़ के रणक्षेत्रों में दस हाड़ा रईसों ने और कितने ही हाड़ा सैनिकों ने स्वामिभक्ति का अपूर्व परिचय देते हुये अपने प्राण न्यौछावर कर दिये[1]।

(१) टॉड: राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५२६।

## राव जगतसिंहजी

**राज्याभिषेक**—जगतसिंहजी मई सन् १६५८ ( सम्वत् १७१५ ) में राजगद्दी पर बैठे होंगे। मुकुन्दसिंहजी ने १५ अप्रेल सन् १६५८ को धर्मत के रणक्षेत्र में वीरगति प्राप्त की थी। आहत किशोरसिंहजी को और मुकुन्दसिंहजी की अवशिष्ट सेना को वापिस कोटा आने में कुछ दिन लगे होंगे। अतः मई के आरम्भ में (अर्थात् ज्येष्ठ मास में ) जगतसिंहजी का राज्याभिषेक हुआ होगा।

**किशोरावस्था और घोर परिस्थिति**—ठाकुर लक्ष्मणदान ने लिखा है कि राज्याभिषेक के समय जगतसिंहजी की अवस्था १४ वर्ष की थी। स्वर्गारोहण समय मुकुन्दसिंहजी की अवस्था लगभग ३८ वर्ष की थी। अतः यह आयु बिल्कुल ठीक मालूम होती है। कोटा राज्य के स्वामी और उनके तीन भाइयों के मारे जाने के बाद, तथा जब औरंगजेब विजयी होकर दिल्ली के तख्त पर बैठनेवाला था तो किशोरवयस्क जगतसिंहजी का शासन भार अपने हाथ में लेना घोर परिस्थिति में प्रवेश करना था। वे स्वयं १४ वर्ष के थे। धर्मत के मैदान में ५०० से अधिक शूरवीर मारे जा चुके थे। मऊ मैदाना का परगना शाहजहाँ बूँदी नरेश शत्रुशालजी को पहले ही दे चुका था, जिससे और धर्मत की लड़ाई से राज्य में आर्थिक समस्या खड़ी हो रही थी। उधर औरंगजेब का पूरा भय था। औरंगजेब धर्मत को भूल नहीं सकता था। मऊ के परगने की लौटाफेरी के कारण बूँदी और कोटे में माधोसिंहजी के जमाने में ही वैमनस्य हो गया था, जो उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता था। ऐसी विकट स्थिति में राज्य को और परिवार को सम्हालना जगतसिंहजी के लिये वास्तव में प्रशंसा का कार्य था।



राव जगतसिंहजी
(१७१४-१७४० वि०)

**दिल्ली में बुलाना**—समूगढ में विजय प्राप्त करके औरंगजेब ने आगरे के किले को घेर लिया और निर्दयतापूर्वक अपने पिता शाहजहाँ को उसी किले में कैद कर दिया। यहाँ वह आजन्म कारावास की यातना भोगता रहा। औरंगजेब ने अब शाही चिन्ह धारण कर लिये और साम्राज्य का शासनसूत्र अपने हाथ में ले लिया। यह देख कर मुराद को उससे ईर्ष्या होने लगी परन्तु औरंगजेब ने उसको एक दावत में बुला कर खूब शराब पिलाया और जब वह सो गया तो छलपूर्वक उसे बन्दी बना कर ग्वालियर के किले में भेज दिया। तदुपरान्त एक हत्या का उस पर अपराध लगा कर उसका बध करवा डाला[१]। दारा आगरा छोड़ कर दिल्ली पहुँचा और वहाँ से उसने लाहोर की ओर प्रयाण किया। औरंगजेब भी आगरे से कूँच करके दिल्ली पहुँचा और ज्योतिषियों के मुहूर्त्त के अनुकूल २१ जौलाई सन् १६५८ को दिल्ली के तख्त पर बैठा। राजमुकुट अपने मस्तक पर धारण करते हुये औरंगजेब जसवन्तसिंहजी और मुकुन्दसिंहजी के विरोध को भूल तो नहीं सकता था परन्तु अभी उसका मार्ग निष्कण्टक नहीं हुआ था, अतः राजपूतों के साथ और अधिक विरोध बढ़ाकर अपने विरोधी भाइयों के पक्ष को वह प्रबल नहीं करना चाहता था। इसलिये तख्त पर बैठते ही उसने जसवन्तसिंहजी, जगतसिंहजी और भाऊसिंहजी (बूँदी) को दिल्ली बुलाया। बुलावा भेजने के बाद औरंगजेब दिल्ली नहीं ठहर सका। उसको अभी दारा का भय था, अतः सेना साथ लेकर शीघ्र ही उसका पीछा करने के लिये रवाना हुआ।

**सतलज पर मुलाकात और सम्मान**—जगतसिंहजी फरमान मिलते ही दिल्ली के लिये रवाना हुये। दिल्ली पहुँचे तो मालूम हुआ कि बादशाह उत्तर की ओर रवाना हो चुका है, अतः शीघ्र गति से

(१) सरकार : हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द २ पृष्ठ ९५–१००।

जगतसिंहजी भी उसके पीछे रवाना हुये। सतलज के तट पर जगतसिंह जी और अन्य हिन्दू राजा औरंगजेब से मिले। अन्य नरेशों के साथ साथ जगतसिंहजी का भी सम्मान किया गया और उनको आश्वासन दिलाया कि उनके साथ दुर्व्यवहार नहीं होगा। जगतसिंहजी को दो हजार का मन्सब और खिलत दिया गया[1]। यह मुलाकात अगस्त सन् १६५८ (श्रावण सम्वत् १७१५) में हुई होगी। इस समय जगतसिंह जी को कोटे की गद्दी पर बैठे हुये केवल तीन महीने हुये थे।

**औरंगजेब को राजपूतों का डर और दिल्ली में जगतसिंहजी**–जगतसिंहजी, जसवन्तसिंहजी और भाऊसिंहजी आदि हिन्दू नरेशों को औरंगजेब ने खिल्त, खिताब और मन्सब देदिये थे, और उनका सब प्रकार सन्तोष कर दिया था, फिर भी उसको यह भय था कि कहीं ये लोग दारा से या शुजा से न मिल जायँ। अतः उसने सब हिन्दू नरेशों को दिल्ली में ठहरने का हुक्म दिया। राजधानी में विपुल शाही सेना थी और हिन्दू नरेशों की गति–विधि को देखते रहनेवाले अनेक गुप्तचर थे। वहाँ पर सब नरेश अर्से तक एक प्रकार की बन्दी अवस्था में ठहरे रहे। थोड़े दिन बाद स्थिति ने पलटा खाया और औरंगजेब को दारा का पीछा छोड़ कर वापिस दिल्ली आना पड़ा और इन हिन्दू नरेशों को साथ लेकर पूर्व की ओर कूँच करना पड़ा[2]।

**शुजा का प्रयत्न**—शाहजहाँ के देहान्त की अफवाह सुन कर शुजा का राजमुकुट धारण करना और दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने के लिये पश्चिम की ओर बढना तथा दारा के पुत्र सुलेमानशिकोह

---

(१) i- आलमगीरनामा, पृष्ठ १६३–६४।
ii- वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २७३८।
iii- टॉड : राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५५४।

(२) आलमगीरनामा,

और जयपुर नरेश जयसिंहजी की सेनाओं से हार कर पीछा बंगाल की तरफ भागने का उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस घटना के कुछ ही दिन बाद धर्मत के रणक्षेत्र में औरंगजेब को विजय प्राप्त हुई। जब सुलेमानशिकोह ने यह खबर सुनी तो उसका साहस भंग होगया और वह उत्तर की ओर औरंगजेब से बचने के लिये तथा भागते हुये अपने पिता से मिलने के लिये भागा। जयपुर के महाराजा जयसिंहजी ने भागते हुये शाहजादे का साथ छोड़ दिया और वे अपने राज्य को लौट आये। उधर औरंगजेब दारा का पीछा करता हुआ लाहोर होकर मुलतान पहुँचा। जब शुजा ने देखा कि औरंगजेब बहुत दूर निकल गया है तो उसने आगरे पर आक्रमण करने की तैयारी की। इस खबर को सुन कर औरंगजेब को बड़ी चिन्ता हुई। एक तरफ दारा और दूसरी ओर शुजा। वास्तव में औरंगजेब के लिये बड़ी समस्या थी, परन्तु दाराशिकोह अब निःसहाय था और राजधानी से बहुत दूर था। प्रमुख हिन्दू नरेश सब दिल्ली में मौजूद थे, अतः उनके दारा से मिल-जाने की भी सम्भावना नहीं थी। मुल्तान से लौट कर औरंगजेब दिल्ली आया और उसने शुजा का सामना करने का आयोजन किया।

**जगतसिंहजी औरंगजेब के साथ**—दिल्ली से औरंगजेब ने पूर्व दिशा में कूँच किया। साथ में जसवन्तसिंहजी, जगतसिंहजी और भाऊसिंहजी को लिया। जगतसिंहजी की अवस्था इस समय १५ वर्ष से भी कम थी। उन्होंने कोटे से अपने काका किशोरसिंहजी को बुलाया, जिनके धर्मत की लड़ाई के ४२ घाव अभी पूरे भरे भी नहीं थे। जगतसिंहजी और किशोरसिंहजी ने औरंगजेब के साथ कूँच किया। औरंगजेब ने शाहजादा सुलतान मोहम्मद के नेतृत्व में एक सेना पहले ही रवाना कर दी थी। दूसरी सेना जुलिफकार खाँ के नेतृत्व में,

जिसमें अधिकांश राजपूत थे, शाहजादे से जा मिली थी, इसी में किशोरसिंहजी थे[1]। पीछे से औरंगजेब भी २ जनवरी सन् १६५९ को कोड़ा के मुकाम पर अपने बेटे से जा मिला[2]।

**जगतसिंहजी और किशोरसिंहजी हरावल में**—३ जनवरी १६५९ के दिन लड़ाई के लिये औरंगजेब ने अपनी सेना की व्यवस्था की। यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि हरावल में किसको रक्खा जावे ? मुसलमान बादशाहों को हिन्दू नरेशों पर पूरा विश्वास कभी नहीं होता था। परन्तु साथ ही वे राजपूतों की वीरता को भी स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते थे। वे जानते थे कि अपनी जान को हथेली पर रख कर लड़ना और शत्रुसेना के व्यूह में तीर के समान प्रवेश करना राजपूतों के लिये साधारण बात थी, हरावल में लड़ना वे गौरव समझते थे और रणक्षेत्र में मरना स्वर्ग का खुलाहुआ द्वार। शाही फौजों के हरावल में सदैव राजपूत ही रहा करते थे। हम देख चुके हैं कि बुन्देलखण्ड, दक्षिण, बल्ख बदख्शाँ, धर्मत, समूगढ़ आदि सब स्थानों में सेनाग्र भाग के अफसर राजपूत नरेश थे, और उनमें से कितनों ही ने अद्भुत वीरता के साथ लड़ते हुये अपने प्राण त्यागे थे। इसी नीति का अनुकरण करते हुये औरंगजेब ने खजुहा के मैदान में राजपूतों को हरावल में नियुक्त किया था। १५ वर्षीय जगतसिंहजी कवच धारण किये हुये सेनाग्र भाग में अभिमन्यु की भाँति खड़े हुये। उनके साथ किशोरसिंहजी थे। आसपास वीर हाड़ा राजपूतों की सेना थी। केवल रणदुन्दुभि की प्रतीक्षा थी। रौद्ररूप धारण किये हुये सम्पूर्ण राजपूत अपने प्राणों की बाजी लगाने के लिये उतावले होरहे थे[3]।

---

(१) आलमगीरनामा, पृष्ठ २२६, २३४, २३५।

(२) उपरोक्त, पृष्ठ २३५, २३८, २४१।

(३) उपरोक्त, पृष्ठ २४५–५०।

**जसवन्तसिंहजी का विश्वासघात**— जसवन्तसिंहजी ने औरंगजेब का विरोध अब तक नहीं भुलाया था। धर्मत में जो उसने अपमानजनक उत्तर भेजा था, वह उनके हृदय में अब तक बाण की भाँति चुभ रहा था और वे बदला लेने के लिये अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा में थे। ३ जनवरी को सेना सुसज्जित होकर आगे बढ़ी। उधर शुजा की सेना भी आगे आने लगी। दोनों सेनाओं के बीच में केवल १ मील का अन्तर रहगया। इसी अर्से में रात होने लगी। दोनों सेनायें तोपखाने की आड़ में विश्राम करने लगीं। सब सैनिक कवच पहने हुये अपने अपने स्थान पर रात बिता रहे थे। प्रातः काल होने वाला था और औरंगजेब तहज्जुद * की नमाज पढ़ रहा था। उस समय एकाएक केम्प में शोर हुआ और सब सेना में गड़बड़ मच गई। लोगों ने आकर बादशाह को सूचना दी कि महाराजा जसवन्तसिंह अपने १४,००० सैनिकों के साथ शाही केम्प को लूट कर भाग गया। इस लूट में जसवन्तसिंहजी ने बादशाह के डेरे को तो क्या परन्तु बूँदी और कोटा के नरेशों के डेरों को भी नहीं छोड़ा। बहुत सारा माल लूट कर वे भाग गये[1]।

**जगतसिंहजी की स्वामिभक्ति**—इस गड़बड़ में बहुत से लोग जसवन्तसिंहजी के साथ भाग गये और बहुत से शुजा से जा मिले जिससे औरंगजेब का पक्ष बहुत निर्बल होगया। यदि शुजा तत्क्षण औरंगजेब की सेना पर आक्रमण कर देता तो औरंगजेब बहुत संकट में पड़ जाता और सम्भवतः प्राप्त किया हुआ साम्राज्य खो बैठता। ऐसी विषम स्थिति में जगतसिंहजी और किशोरसिंहजी ने औरंगजेब का साथ

---

* आधी रात के बाद की।

(१) i- वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २७६८-६९।
ii- सर जे. एन. सरकारः हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जि० २, पृष्ठ १३३-३४।

नहीं छोड़ा और एक बार फिर कोटा नरेश ने उसी अविचल स्वामिभक्ति का परिचय दिया, जिसका रोमाञ्चकारी प्रदर्शन कुछ मास पूर्व धर्मत के रणक्षेत्र में किया गया था। औरंगजेब ने पुनः अपनी सेना को व्यवस्थित किया और लड़ने के लिये तैयार हुआ।

**जगतसिंहजी की वीरता**—जगतसिंहजी और किशोरसिंहजी को पुनः हरावल में नियत किया गया। जब शुजा की सेना ने आक्रमण किया तो इन दोनों ने बड़ी वीरता के साथ लड़ाई की। शुजा की सेना खेत छोड़ भागी। बहुत से सैनिक औरंगजेब से आ मिले। रण समाप्त होगया और औरंगजेब बहुत सी लूट के साथ विजयी होकर वापिस आया[1]। इस लड़ाई में बूँदी नरेश भाऊसिंहजी भी हरावल में बड़ी वीरता से लड़े थे जिसका विस्तृत वर्णन सूर्यमल्ल ने किया है[2]।

**औरंगजेब और दारा**—खजुहा के रणक्षेत्र में हार कर शुजा बंगाल की ओर भाग गया और लापता होगया। उधर दारा अनेक रोमाञ्चकारी विपत्तियों को सहता हुआ और लाहोर, मुलतान, सक्कर, सेहवाँ, टट्टा और गुजरात में मारा मारा फिरकर अन्त में अजमेर पहुँचा। वहाँ जसवन्तसिंहजी ने उसका साथ नहीं दिया और वह ३ दिन तक लड़ाई करने के बाद हारकर रणक्षेत्र से भाग गया। भाग कर मेड़ता पहुँचा और फिर वहाँ से अहमदनगर। अहमदनगर में उसको किलेदार ने नहीं घुसने दिया और ऐसा ही व्यवहार कच्छ के किलेदार ने उसके साथ किया। महाराजा जयसिंहजी उसका पीछा कर रहे थे। साथ ही उसकी कठिनाइयाँ और विपत्तियाँ भी उत्तरोत्तर बढ़ रही थीं। मरता पचता वह दादर में मलिक जीवन पठान के यहाँ पहुँचा, जिसने विश्वास-

---

(१) आलमगीर नामा, पृष्ठ २६३–६५।

(२) वंशभास्कर तृतीयभाग, पृष्ठ २७७०।

घात करके उसको औरंगजेब के सुपुर्द कर दिया और औरंगजेब ने उस को निर्दयतापूर्वक मरवा डाला[1]।

**औरंगजेब और शिवाजी**—अपने पिता को कैद करके और एक भाई को दर दर का भिखारी बना कर तथा दो भाइयों का बध करवाकर भी औरंगजेब निश्चिन्त होकर शाही तख्त पर नहीं बैठ-सका। दक्षिण में शिवाजी ने अपने बाहुबल और पराक्रम के द्वारा राज्य स्थापित करके औरंगजेब का विरोध करना आरम्भ किया और चौथ ग्रहण करने के लिये उनकी सेना मुगल साम्राज्य के इलाकों को खूँदने लगी। उनका दमन करने के लिये औरंगजेब ने शाइस्ताखाँ को भेजा लेकिन वह आहत और विफल होकर वापिस आगया[2]। महाराजा जसवन्तसिंह को यह समाचार मार्ग में मिला और वे भी वापिस चले गये। तदनन्तर जयपुर के महाराजा जयसिंहजी को इस कार्य के लिये नियत किया गया। उन्होंने विपुल सेना के सहित दक्षिण को कूँच किया और वृहद् आयोजन करके शिवाजी के कई किलों को लेकर अन्त में पुरन्धर का घेरा डाला। शिवाजी विवश होकर कुछ शर्तों के साथ आगरा आये, परन्तु औरंगजेब ने उनके साथ यथोचित व्यवहार नहीं किया, जिससे खिन्न होकर चतुरता के साथ वे आगरे से खिसक कर स्वदेश लौट गये।

**औरंगजेब का राजपूतों से युद्ध**— १० दिसम्बर सन् १६७८ को जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंहजी की पेशावर में मृत्यु होजाने पर औरंगजेब ने जोधपुर को खालसा कर लिया। औरंगजेब स्वयम् अजमेर पहुँचा और मारवाड़ के साथ युद्ध करने की भारी तैयारी आरम्भ

(१) सर जे. एन. सरकार: हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जि० २, पृष्ठ ११०-२२०।

(२) उपरोक्त, पृष्ठ ४७-५१।

हुई। औरंगजेब ने जोधपुर में बहुत से मन्दिर तुड़वाये, शाही शासन स्थापित कर दिया और जसवन्तसिंहजी के पुत्र अजीतसिंहजी को राजा मानने से इन्कार किया। मेवाड और मारवाड़ ने मिल कर ५ वर्ष तक निरन्तर प्राणपण से आतमरक्षार्थ युद्ध किया। औरंगजेब का पुत्र अकबर राजपूतों से मिल गया और अन्त में बादशाह ने कूटनीति के साथ उसके प्रति राजपूतों में अविश्वास उत्पन्न कर दिया, जिससे वह निःसहाय होकर दक्षिण की ओर भाग गया, और उसने सम्भाजी की शरण ली। औरंगजेब और राजपूतों ने थक कर १४ जून १६८१ को राजसमुद्र में सन्धि करली जिससे मारवाड़ अजीतसिंहजी को मिलगया और औरंगजेब को दक्षिण की ओर कूँच करने का अवकाश मिला।

**हिन्दू मन्दिर तोड़े गये**—राजपूतों के साथ युद्ध करते समय औरंगजेब ने मारवाड़ और मेवाड़ में अनेक मन्दिर तुड़वाये थे। इन दोनों राज्यों के साथ तो उसकी लड़ाई थी परन्तु अन्य राज्यों में भी वह मन्दिरों को तुड़वाया करता था। हिन्दू मन्दिरों का विध्वंस करना और देव प्रतिमाओं को तुड़वाना वह बहुत बड़ा धर्म समझता था। २ जून सन् १६८० को उसने आमेर का मन्दिर समूल नष्ट करवा दिया था और इस बात की बिल्कुल परवाह नहीं की थी कि जयपुर नरेश जयसिंह मुगल साम्राज्य का स्वामिभक्त सहायक है[1]।

**औरंगजेब का अजमेर से दक्षिण की ओर प्रयाण और मन्दिरों का विध्वंस**— राजपूतों की ओर से निश्चिन्त होकर जब औरंगजेब ने बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्यों को नष्ट करने के लिये तथा मराठों का दमन करने के लिये दक्षिण की ओर प्रयाण किया, मार्ग में आसपास के मन्दिरों को तुड़वाता हुआ जाता था। जहाँ पर

(१) सर जे. एन. सरकारः हिस्ट्री ऑफ ओरंगजेब, जिल्द ३, पृष्ठ ३०४।

लश्कर का केम्प लगता था उसके चारों ओर कई कोस तक के मन्दिर नष्ट कर दिये जाते थे। उसके कूँच की खबर बहुत दूर दूर तक पहले ही पहुँच गई थी। जिधर होकर उसके जाने का मार्ग था, उधर के लोग त्रस्त होगये थे। मन्दिरों के पुजारी और रक्षक भयभीत होकर काँपने लगे थे।

**कोटा राज्य में भय**—अजमेर से बुरहानपुर जाने का रास्ता कोटा राज्य में होकर था। जिधर होकर उसके जाने की सम्भावना थी उधर लोग त्राहि त्राहि कर रहे थे। विशेष डर वहाँ के लोगों को था जहाँ बड़े शिखरबन्ध और प्रसिद्ध मन्दिर थे। कोटा नगर में गोरधन-नाथ जी का मन्दिर उस समय प्रसिद्ध था। जब औरंगजेब के कूँच की खबर कोटे पहुँची तो इसके पुजारी जगतसिंहजी के पास गये, जो उस समय औरंगाबाद में थे। उनसे मौखिक वृतान्त सुन कर तथा मन्दिर के अधिकारियों का निवेदनपत्र पढ़कर जगतसिंहजी को मन्दिर के विषय में बहुत चिन्ता हुई।

**मन्दिर के विषय में जगतसिंहजी का पत्र**—जगतसिंहजी ने कोटे के अधिकारीवर्ग विजयराम, राय द्वारकादास और चौधरी रणछोड़दास को इस विषय में पत्र लिखा कि बादशाह बूँदी कोटे के मार्ग से माँडू आरहा है, इसलिये जब तक उसका लश्कर न निकल जावे या यह निश्चय न होजाय कि नहीं आवेगा, तब तक श्रीनाथजी के सेवक रायपुर में छिपा कर रक्खे जावें और श्रीनाथ जी की प्रतिमा बोराँबा पधराई जावे। यदि यह निश्चय ही हो जावे कि बादशाह माँडू आरहा है तो श्रीनाथजी की प्रतिमा बोराँबा से भी अधिक सुरक्षित स्थान में अर्थात बिसलपुर पधरा दी जावे। यह काम ऐसी तरकीब से

किया जावे कि किसी को कुछ पता नहीं लगे[१]।

**जगतसिंहजी दक्षिण में**—उपरोक्त चढ़ाइयों में जगतसिंहजी शाही सेना के साथ थे। केवल इतना पता लगता है कि वे दक्षिण में पहुँचे थे। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वे किसी के साथ थे या अकेले। मुसलमान लेखक हिन्दू नरेशों के ज्वलन्त कार्यों का भी उल्लेख करते हुये हिचकते हैं। अतः जगतसिंहजी के विषय में फारसी तवारीखों से बहुत कम पता चलता है।

**हैदराबाद में जगतसिंहजी**—दक्षिण में औरंगजेब ने मरहठों का दमन करने के लिये खाँजहाँ बहादुर को एक बड़ी शाही सेना का अफसर बनाकर भेजा। उसकी मदद के लिये जगतसिंहजी भी उसके साथ गये। औरंगाबाद के पास मरहठों पर कई आक्रमण किये-गये जिनमें कितने ही मरहठे मारे गये। बहुत अर्से तक ये चढ़ाइयाँ जारी रहीं। मरहठे हार कर हैदराबाद में शरण लिया करते थे। हैदराबाद बीजापुर के सुल्तान के राज्य में था। इसलिये औरंगजेब आदिल-

---

(१) सिद्धि श्री महाराजाधिराज श्री जगतसिंहजी वचनात्—

विजयराम, राय द्वारकादास, चौधरी रणछोड़ दी से सुप्रसाद बंच्या अठा का समाचार श्रीजी की कृपा करी भला छ आपणा दीज्यो अपरंच श्री गोरधननाथजी का सेवगाँ का आदमी म्हाँके नखे आया छ अर प्रसाद माला लाया छ अर श्री परमेश्वरजी का बिराज में ही लिख्यो छ सो अठमलजी की अरजदास्त म्हाँप आई छ जी म लिख्यो छ सो पातसाहीजी माँडू आवा मँ ही फरमाई छ अर या फरमाई छ जो बूँदी कोटा की राह होई माँडू जास्याँ सो या बात सुणताँ म्हारे फिकर होयो अब जेते पातसाहीजी का आबा जाबा की पेका देखी होई चुके जेते श्रीनाथजी का सेवगाँई तो रायपुर राखज्यो श्रीनाथजी हीं बोराँबा पधरावज्यो अर कदाचत् पातसाहजी को आबो माँडू तहकीक होव अर बूँदी राह आवता जाणो तो श्रीनाथजी हीं बिसलपुर पधराज्यो अर अश्यो जतन करज्यो जो कहीं जाहरी न होव। मिति.................सम्वत् १७२८।

शाही बादशाह से बहुत क्रुद्ध हुआ और खाँजहाँ बहादुर को आदेश किया कि हैदराबाद को बिल्कुल नष्ट कर दिया जावे। खाँजहाँ बहादुर ने जगतसिंहजी के साथ हैदराबाद की ओर कूँच किया और मलकापुर में सेना का केम्प लगाया। इसी स्थान पर शाहजादा खुर्रम ने बुरहानपुर को घेरने से पहले अपने डेरे डाले थे और वहीं पर माधोसिंहजी ने अपने शौर्य और पराक्रम का प्रथम परिचय दिया था। घेरे के लिये शाही सेना व्यवस्थित की गई, खाइयाँ खोदी गईं और तोपखाना जमाया गया। उधर हैदराबाद का किलेदार भी सामना करने को तैयार होगया। अर्से तक दोनों सेनाओं में मुठभेड़ होती रही परन्तु पूर्ण विजय दोनों में से किसी को प्राप्त नहीं हुई[१]।

**शाही सेना में शिथिलता**—बहुत दिन तक घेरा जारी रहा। तब हैदराबाद के सेना नायक मुहम्मद इब्राहीम ने एक चाल चली। प्रत्यक्ष रूप से उसकी सेना ने लड़ाई करने में कुछ शिथिलता शुरू की। रात्रि के समय जो गुप्तचर घूमा करते थे, वे भी शायद बन्द करदिये गये। इससे शाही सेना में भी शिथिलता आने लगी और खाँजहाँ बहादुर युद्ध-संचालन में इतना शिथिल होगया मानो वह हैदराबाद का अथिति हो। सेना के अन्य अफसर शिथिल होगये। शाही सेना में चौपड़ और शतरंज के खेल होने लगे। एक रात सब निश्चिन्त सो रहे थे। हाथी, घोड़े सब बँधे हुये थे। सेना नायक और अन्य अफसर कवच उतार कर साधारण कपड़े पहने हुये पड़े थे। इतने ही में एकाएक मुहम्मद इब्राहीम खाँ ने आक्रमण कर दिया और शाही सेना में गड़बड़ मच गई। खाँजहाँ बहादुर लड़ने के लिये तैयार हुआ और सेना को सामना करने के लिये व्यवस्थित किया, उससे पहले मुहम्मद

(१) मुन्शी मूलचन्द, पृष्ठ ११०।

इब्राहीम खाँ ने कितने ही शाही सैनिकों को और अफसरों को मार-डाला। ऐसा मालूम होता था कि शाही सेना का उच्छेद ही होने वाला है।

**जगतसिंहजी की सतर्कता और वीरता**—जिस समय सम्पूर्ण शाही सेना अचेत पड़ी हुई थी तो जगतसिंहजी सचेत, सतर्क और शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित थे। मुहम्मद इब्राहीम ने ज्योंही आक्रमण किया, वे शाही सेना की रक्षा करने के लिये डट गये। शेख मिनहाज से उनका मुकाबला हुआ। यह हैदराबादी सेना में बड़ा शूरवीर हाकिम था। बहुत अर्से तक दोनों में संग्राम होता रहा। उधर शाही सेना में आर्तनाद हो रहा था, इधर शत्रुसेना के एक भाग में जगतसिंहजी त्रास उत्पन्न कर रहे थे। हैदराबादी सेना के एक बाजू को जगतसिंहजी ने छिन्न भिन्न कर दिया। इसी अर्से में उधर खाँजहाँ बहादुर ने सँभल-कर शत्रुओं का सामना करना आरम्भ किया। वह मुहम्मद इब्राहीम-खाँ से जा भिड़ा और अन्त में जब शाही सेना की सहायता के लिये और सेना आगई तो खाँजहाँ बहादुर विजयी हुआ, परन्तु इस संग्राम में शाही सेना की घोर क्षति हुई और खाँजहाँ बहादुर की घोर निन्दा[1]। औरंगजेब ने इसको पदच्युत कर दिया और वापिस बुला लिया। फारसी तवारीखों में जगतसिंहजी का नाम मारे जाने वाले अफसरों में नहीं है, परन्तु कर्नल टॉड ने लिखा है कि उन्होंने दक्षिण में लड़ाई करते हुये वीरगति प्राप्त की थी। बहुत सम्भव है जगतसिंहजी इसी युद्ध में धराशायी हुये हों[2]।

---

(१) i- मुन्शी मूलचन्द, पृष्ठ १११-१२।
ii- वाकाए नियामतखाँ आली।

(२) टॉडः राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५५४।

**जगतसिंहजी दक्षिण में**—सम्वत् १७३७ और १७४० (सन् १६८० और ८३) के बीच में जगतसिंहजी प्रायः निरन्तर दक्षिण में रहे थे। कभी वे औरंगाबाद में और कभी बुरहानपुर में रहा करते थे। जहानाबाद भी कभी कभी जाते थे। औरंगाबाद में जगतसिंहजी की हवेली थी और बुरहानपुर में भी अवश्य होगी। इस अर्से में एक बार वे दक्षिण से कोटे भी आये थे। बुरहानपुर में जगतसिंहजी ने एक दीक्षित ब्राह्मण को एक हाथी दान दिया था, जिसका नाम 'गजगणेश' था। वहीं कार्तिक सुदी ९ सम्वत् १७३८ को उन्होंने शाहजादा मुहम्मद अजीम को २७ मोहरें और उसकी बेगम को १८ मोहरें भेंट की थीं। शाहजादा के खोजों को और उसके बख्शी अजगरखाँ को भी मोहरें इनाम दी गईं थीं। औरंगाबाद के नवाब सरबुलन्दखाँ और जहानाबाद के नवाब बहादुरखाँ को जगतसिंहजी ने सम्वत् १७३८ में एक एक हाथी भेंट किया था। इसी अवसर पर औरंगाबाद में २७५) रु० में एक हाथी खरीदा था। औरंगाबाद और जहानाबाद के नवाबों से जगतसिंहजी का अच्छा मेलजोल था। नवाब बहादुरखाँ का खजाना जगतसिंहजी ने ऊँटों पर लदवा कर औरंगाबाद मँगवाया था। इस विषय का हुक्म कोटे के राजकर्मचारियों के नाम औरंगाबाद की हवेली से हुआ था। औरंगाबाद जाते समय जगतसिंहजी ने मार्ग में हाथी, घोड़े, ऊँट और गायें ब्राह्मणों को दान दी थीं। प्रति गौ के साथ एक मोहर दक्षिणा में दी गई थी। मार्ग में बालद के मुकाम पर जौहरी सौभागचन्द मोतीचन्द से २०,०००) रु० का जेवर खरीदा था और कीमत चुकाने के लिये कोटे के कर्मचारियों के नाम परवाना जारी किया गया था। देहान्त से कुछ दिन पूर्व जगतसिंहजी ने औरंगाबाद में बहुत सा कपड़ा खरीदा था। आसोज सुदी १ सम्वत् १७४० को औरंगाबाद

में हुसैन नामक एक फर्राश नौकर रक्खा था, जिसकी जमानत एक मुसलमान सरदार ने दी थी। जमानतनामे के आरम्भ में लिखा है:– " बरसरकार जगतसिंह हाड़ा[1] "।

उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि जगतसिंहजी औरंगाबाद में कई साल तक रहे। इस नगर पर मराठों का हमला सम्वत् १७३८ में हुआ था और बुरहानपुर में सम्वत् १७३७ में। इन्हीं दिनों में जगतसिंहजी बुरहानपुर और औरंगाबाद में रहते थे। शिवाजी महाराज का इस समय देहान्त हो चुका था और सम्भाजी राज कर रहे थे। सम्वत् १७४० के लगभग औरंगजेब ने अधिक तैयारी और जोर के साथ लड़ाई शुरू की थी। इसी समय बीजापुर राज्य में भी शाही सेना के आक्रमण हुआ करते थे[2]। इसी वर्ष कार्तिक शुक्ला पंचमी को जगतसिंहजी का देहान्त हुआ था[3]। इससे स्पष्ट है कि जगतसिंहजी औरंगाबाद और बुरहानपुर के आस पास किसी लड़ाई में–अधिक सम्भव है कि हैदराबाद के युद्ध में शेखमिनहाज से लड़ते हुये–मारे गये होंगे।

**माधोसिंहजी का सा पराक्रम**—माधोसिंहजी प्रथमवार चौदह वर्ष की अवस्था में अपने पिता रावरतन के साथ साथ दक्षिण में मलिक अम्बर के विरुद्ध लड़े थे। जगतसिंहजी लगभग १५ वर्ष की अवस्था में खजुहा के रणक्षेत्र में औरंगजेब ने हरावल में नियत किये थे। उस अवसर पर उन्होंने क्षत्रियोचित वीरता का परिचय देकर औरंगजेब को चकित किया था तथा जसवन्तसिंहजी का साथ न दे कर औरंगजेब को अपनी स्वामिभक्ति के विषय में विश्वास दिलाने की कोशिश की थी, परन्तु औरंगजेब जहाँगीर और शाहजहाँ से बहुत

(१) कागजात सम्वत् १७३८ और १७४०, सीगा मुतफर्रिकात।
(२) सर जे. एन. सरकार: हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जि० ४, पृष्ठ २४७, २५८–६२।
(३) कागजात सम्वत् १७४०, सीगा मुतफर्रिकात।

भिन्न था और हिन्दुओं की वीरता पर मुग्ध होना तथा उसका प्रतिफल देना उसने नहीं सीखा था। बुरहानपुर और औरंगाबाद जगतसिंहजी के पूर्वजों की अप्रतिम पराक्रम की रंगभूमि थी। वहाँ पर रावरतन और माधोसिंहजी ने खुर्रम को हरा कर दिल्ली के तख्त की रक्षा की थी। उसी प्रदेश में लड़ते हुये प्राणत्याग करना जगतसिंहजी के लिये गौरव की बात थी।

**केन्द्रीय शासन**—जगतसिंहजी गौड़ जो मुकुन्दसिंहजी के राजमन्त्री थे, वे ही जगतसिंहजी के शासनकाल में कुछ वर्ष राजमन्त्री रहे, और फिर इस पद पर उदयराम नियत हुआ। उस समय राज-मन्त्री 'प्रधान' कहलाता था और वह राज्य का सर्वोच्च राजकर्मचारी था। मन्त्री के साथ ठाकुर, चौधरी और हवालगीर काम करते थे। परगने के अफसर भी चौधरी और हवालगीर कहलाते थे, परन्तु उनके अधिकार संकुचित होते थे, और प्रधान के साथ काम करने वाले चौधरी आदि अधिक शक्तिशाली होते थे तथा उनके अधिकार भी प्रधान से कुछ ही कम होते थे। दरबार की ओर से जो पट्टे परवाने जारी किये जाते थे, उन पर प्रधान आदि सब के नाम लिखे जाते थे। हुक्म इस प्रकार आरम्भ होता था:—

'अमल सरकार महाराजाधिराज श्रीजगतसिंहजी देव प्रधान राज श्रीउदयरामजी ठाकुर श्रीद्वारकादास चौधरी रणछोड़दासजी, अहत-माल हवालगीर अनूपसिंहजी'। इससे स्पष्ट है कि शासन के लिये उपरोक्त सब कर्मचारियों का संयुक्त उत्तरदायित्व माना जाता था। पर-गनों का प्रबन्ध पूर्ववत् था। कुछ पट्टों में "विद्यमान राज्य श्रीउदय-रामजी" लिखा जाता था। जगतसिंहजी के समय में धाभाई लोग भी बहुत शक्तिशाली थे। सम्वत् १७३० के बाद एक धाभाई मन्त्रि-

मण्डल में भी शामिल था। शायद इसी कारण धाभाइयों का जोर बढ़ गया था और धाभाइयों की कई लड़कियों को जमीन माफी में दी गई थी।

**राजनैतिक स्थिति**—शाही दरबार में जगतसिंहजी की उतनी प्रतिष्ठा नहीं थी जितनी माधोसिंहजी और मुकुन्दसिंहजी की थी। इसका कारण यह था कि मुकुन्दसिंहजी औरंगजेब के विरुद्ध लड़े थे और उन्होंने प्राणपण से स्वयम् औरंगजेब पर प्रहार करने का प्रयत्न किया था। औरंगजेब ने अपना मतलब बनाने के लिये जगतसिंहजी को दिल्ली बुलाकर माफी अवश्य दे दी थी, परन्तु मन्सब उनको सिर्फ २,००० का ही दिया था। खजुहा के रणक्षेत्र में उनकी १५ वर्ष की अवस्था में अद्भुत वीरता और अविचल स्वामिभक्ति को देखकर भी औरंगजेब ने उनका विशेष सम्मान नहीं किया था। दक्षिण में भेजते समय मऊ मैदाना का प्रदेश औरंगजेब ने जगतसिंहजी को वापिस दे दिया था, परन्तु इसकी अधिकांश आमदनी मामलत के तौर पर शाही खजाने में जमा की जाती थी जिससे कोटा राज्य को केवल नाम मात्र का लाभ होता था। औरंगजेब के हृदय में मुकुन्दसिंहजी के विरोध के कारण और अपने धार्मिक पक्षपात के कारण जगतसिंहजी के प्रति शायद अप्रसन्नता ही बनी रहती थी। यही कारण था कि जगतसिंहजी शाहजादे को और औरंगाबाद तथा जहानाबाद के नवाबों को नजर और भेंट द्वारा प्रसन्न रखने का प्रयत्न किया करते थे। एक बार कोटा राज्य में होकर शाही सेना भी निकली थी जिसके आतिथ्य में २०५ मन घी खर्च हुआ था[1]।

**राजकोष**—जगतसिंहजी के गद्दी पर बैठते समय राजकोष

(१) कागजात सम्वत् १७३८, सीगा मुतफर्रिकात।

की दशा शोचनीय थी। यों तो माधोसिंहजी और मुकुन्दसिंहजी के समय में भी नन्दवाने बोहरों से रुपया उधार लिया जाता था और गाँवों का माल हासिल गिरवी रखकर काम चलाया जाता था, . परन्तु उस समय बादशाह की कृपा और मन्सब की आय से आर्थिक समस्या कभी विकट नहीं हुई थी। जब जगतसिंहजी गद्दी पर बैठे तो बहुत सारी सेना धर्मत के युद्ध में नष्ट हो चुकी थी। औरंगजेब का भय था कि कहीं कोटे पर सेना न भेजदी जाय। उच्च शाही कर्मचारियों को और अनुकूल बनाने के लिये धन की आवश्यकता थी। जगतसिंहजी को मन्सब भी सिर्फ २,००० का मिला था, जिससे आमदनी केवल दो लाख रुपये सालाना के लगभग होती थी। खजुहा और दक्षिण की लड़ाइयों में जाने के लिये तथा पीछे से राज्य की रक्षा करने के लिये पहले से भी अधिक सेना की आवश्यकता थी। इन सब कारणों से आर्थिक समस्या ने बड़ा विकट रूप धारण कर लिया था।

**बराड़ और चौथान**—गद्दी पर बैठने के एक वर्ष बाद ही परगना मधुकरगढ़ और परगना घाटोली के बलाइयों से १८५३) रुपये दण्ड के वसूल किये गये थे। ऐसा जान पड़ता है कि यह दण्ड नहीं किन्तु गद्दीनशीनी के समय आर्थिक कठिनाई को निवारण करने के लिये कर या बराड़ संग्रह किया गया था। यह कर इन दो परगनों से ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण राज्य से वसूल किया गया होगा। उस समय राज कर्मचारियों को दो महीने में वेतन मिलता था और उसका चतुर्थांश राजकर के रूप में काट लिया जाता था। जागीरदारों से भी इसी प्रकार का कर लिया जाता था और उसकी वसूली के लिये बड़ी ताकीद की जाती थी। इस कर का नाम चौथान था[1]।

---

(१) कागजात सम्वत् १७१६, १७२२, सीगा मुतफर्रिकात।

**भोम हासिल**—"भोम हासिल" या भूमिकर के दो सीगे थे। खालसा और जागीर। खालसा से भूमिकर बटाई या लटाई द्वारा वसूल किया जाता था। इस प्रकार संग्रह किये हुये अन्न को बेच कर रुपया खजाने में जमा कर दिया जाता था। जो अन्न नहीं बिकता था वह परगनों के खाई खासों में सुरक्षित रहता था और उसका परगनेवार हिसाब बन कर राजधानी में आता था। जागीरदारों से कर नकदी में वसूल किया जाता था। जो जागीरदार अनुपस्थित रहता था उससे उन दिनों के रुपये वसूल किये जाते थे। ऐसा रुपया जागीरदार पर एक प्रकार का ऋण माना जाता था जो किसी किसी जागीरदार का कई साल का इकट्ठा होजाया करता था[1]।

**खर्च और बजट**—परगने के अफसरों को वार्षिक बजट के अनुसार परगने की आय में से खर्च करने का अधिकार था। इस प्रकार खर्च होने के बाद जो रुपया बचता था, वह कोटे के खजाने में भेज दिया जाता था। आय और व्यय का हिसाब परगने की कचहरी में रहता था और प्रति वर्ष कोटे भेजा जाता था[2]।

प्रति वर्ष खर्च का बजट बनाया जाता था। सम्वत् १७३७ के एक कागज में वार्षिक बजट का एक अंश मिलता है। कागज के फट-जाने से बजट के तमाम आंकड़ों का तो पता नहीं चलता, परन्तु जो आंकड़े बच पाये हैं, वे बड़े रोचक हैं। यह खण्ड इस प्रकार है :—

पुण्यर्थ—१०८३) रुपये।

दरगाही—९६०२१) रुपये।

हजुरी का तन—१,१२,२८०) रुपये।

---

(१) कागजात सम्वत् १७३० और ३६, सीगा मुतफर्रिकात।

(२) कागजात सम्वत् १७३०, जमा खर्च, सीगा मुतफर्रिकात।

महलाहित, राजलोक—५,६७०) रुपये।

कारखाना—२७,२४८) रुपये।

बोहरों का देना—२७,२४८) रुपये।

देश का खर्च—२४,२२६) रुपये हैं।

अटाला महक्मा—

अम्बार महक्मा—

यदि उपरोक्त कागज नहीं फटा होता तो मालूम हो सकता था कि उस समय खर्च की कौन कौन सी मदें थीं[1]।

**बाराँ और मऊ के परगने**—बल्ख और बदखशाँ में वीरता पूर्वक लड़ने के फलस्वरूप बाराँ और मऊ के परगने माधोसिंहजी को मिल-चुके थे, परन्तु जब औरंगजेब और मुराद मिलकर उत्तर की ओर बढ़ने लगे और उनको रोकने के लिये दारा के साथ सम्राट् शाहजहाँ ने बूँदी नरेश शत्रुशालजी को भेजा तो उनको विदा करते समय उपरोक्त दोनों प्रदेश राव मुकुन्दसिंहजी से छीन कर वापिस शत्रुशालजी को दे दिये थे[2]। शत्रुशालजी समूगढ़ की लड़ाई में वीरतापूर्वक लड़ते हुये मारे गये। इनके बाद भाऊसिंहजी बूँदी की गद्दी पर बैठे। औरंगजेब इनसे इनके पिता के कारण अप्रसन्न था। भाऊसिंहजी के छोटे भाई भगवन्तसिंहजी पहले से ही औरंगजेब की तरफ थे, अतः तख्त पर बैठने के बाद औरंगजेब ने बाराँ और मऊ के परगने भाऊसिंह-जी से छीन कर भगवन्तसिंहजी को देदिये और २,५०० सवारों का मन्सब देकर उनको अलग मऊ का राजा बना दिया[3]। थोड़े दिन बाद

(१) जमाखर्च सम्वत् १७३६ और १७३४, सीगा मुतफर्रिकात।

(२) वंशप्रकाश, पृष्ठ १३७।

(३) उपरोक्त, पृष्ठ १३९।

भगवन्तसिंहजी का देहान्त होगया[1]। तब औरंगजेब ने ये परगने वापिस बूँदी वालों को नहीं दिये और जगतसिंहजी को मुकाते पर देदिये[2]। सम्वत् १७३० में परगना मऊ पर जगतसिंहजी का अधिकार था, यह बात सरकारी कागजात से प्रमाणित होती है। इस वर्ष परगना मऊ की आमदनी ४,६६,०००) रुपये थी। इसमें से ३,५५,०००) रुपये शाही खजाने में जमा करने पड़े थे। ये रुपये ऊँटों पर लाद कर आगरा, जहानाबाद, या जहाँ तलबी होती थी, वहाँ भेजे जाते थे। इसके अतिरिक्त मालवा के नवाब के आतिथ्य में भी इस परगने से बहुत खर्च हुआ करता था। यह परगना कोटा राज्य में नया ही सम्मिलित हुआ था, और इसमें लगभग एक हजार गाँव तथा जलवाड़ा, आवाँ, इकलेहरा, खानपुर, हरीगढ़ आदि बड़े २ कस्बे थे। इसलिये लगभग १९०००) रु० चौंतरे पर अथात् परगने की कचहरी पर खर्च करने पड़ते थे। कारण यह था कि नये परगनों को दबाये रखने के लिये वहाँ पर जाब्ता अधिक रखना पड़ता था।

जगतसिंहजी ने खजुहा की लड़ाई में जो अद्भुत वीरता दिखाई थी, उसके उपलक्ष में मऊ का परगना उनको मुकाते में देना औरंगजेब की अनुदारता प्रकट करता है क्योंकि इस परगने से जगतसिंहजी को नाममात्र का लाभ था।

इस परगने का प्रबन्ध बहुत व्यवस्थित और ऊँचे दर्जे का था। सरकारी चबूतरे पर चौधरी, फोतेदार, कारकुन, हवालगीर, बख्शी और जकाती नियत थे। कोतवाली चबूतरा इससे अलग था और परगने के चबूतरे का मातहत था। पुण्यर्थ, अम्बार, मरम्मत मकानात, खरीद

(१) वंश प्रकाश, पृष्ठ १४१।
(२) कागजात सम्वत् १७३०, सीगा मुतफर्रिकात।

घोड़ा, ऊँट वगैरह, नाल बँधाई आदि मद्दें परगने के वार्षिक बजट में शामिल थीं। अहलकारों में अधिकतर कायस्थ थे। मुसलमान और राजपूत सवार और सिपाहियों में थे[1]।

**आर्थिक दशा**—जगतसिंहजी के शासन काल में नाज वैसा ही सस्ता था जैसा मुकुन्दसिंहजी के समय में। घी १) रुपये का पाँच सेर से अधिक मिलता था[2], परन्तु कपड़ा महँगा था। सम्वत् १७२२ में खादी के ६० थानों की कीमत ३६०) रुपये दर्ज है[3]। अर्थात् १ थान की कीमत उस समय ६) रुपये थी, जो वर्तमान मूल्य से कई गुनी है। अधिकतर लोग उस समय खादी पहनते थे, परन्तु धनवान परिवारों में बढ़िया कपड़े का भी बहुत उपयोग होता था, जो प्रायः सब स्वदेशी होता था। कुछ कपड़ा ईरान और योरुप से भी आने लग गया था। सम्वत् १७३९ में औरंगाबाद में जगतसिंहजी ने कई हजार रुपये का कपड़ा खरीदा था। उसकी निम्नलिखित सूची से तत्कालीन रुचि, मूल्य और कपड़ों के प्रकार का पता लगता है:—

मखमल बूँटादार सुनहरी झालर।

टोपी बूँटादार।

बुरका।

परदा अतलस छायादार।

धोती रेशमी।

धोती पाट की।

पशमीना बूँटादार तख्त के वास्ते।

मोजा जोड़ी।

---

(१) जमाखर्च सम्वत् १७३०, सीगा मुतफर्रिकात।

(२) कागजात सम्वत् १७३८।

(३) कागजात सम्वत् १७२२।

चीरा जरी का।

थान लहँगा को बूँटादार, चीणो, लाल, सफेद, सब्ज, गुलाबी।

थान झलमल।

चीरा चिकन का।

मूठड़ा को थान।

गेंदादार थान।

जरीबूँटा को थान।

अतलस सब्ज और लाल, ३० गज का ४३॥-) रुपये।

जरी की साड़ी लाल, दर ५५।) रुपये।

दुपट्टा, दर ४०) रुपये।

रजाई, दर २७॥) रुपये।

जर बकूत ( जर बफ्त )।

दाराई।

अमरी, ५ थान का २०) रुपये।

मखमल, २२ गज का ९६) रुपये।

महमूदी चिकन, ४ थान १५०) के रुपये।

रजाई शाल की, ७२) रुपये।

श्री साक।

मसरू बूँटीदार।

इलायचा।

छींट मुलतान की।

मसरू चिकन की।

महमूदी चँदेरी।

उपरोक्त सूची से स्पष्ट है कि मर्दाने और जनाने दोनों कपड़े

उस समय भी बढ़िया मिल सकते थे। मोठड़े का थान ढाके की मलमल पर बना हुआ होगा। जनानी कुर्तियों की जरी का थान ८) रुपये प्रति गज मिलता था। समपन्न परिवारों की महिलायें जरी की साड़ियाँ, जरी की कुर्तियाँ और बूँटेदार कई रंग के कपड़ों के लँहगे पहनती थीं। जनाने कपड़ों में दूसरी जगह ५०) रुपये की जरीदार सूथन और बुर्के का उल्लेख है जो खवासजी के लिये खरीदे गये थे जिससे स्पष्ट है कि कोई मुसलमान महिला जगतसिंहजी की खवास थी[1]। उस समय ताँबा, पीतल, चाँदी और सोने के बर्तनों के अतिरिक्त पत्थर, चीनी, और काँच के बर्तनों का भी अमीर घरों में उपयोग होता था। बिल्लौर के कटोरों का सम्पन्न लोगों में फैशन था। मऊ से जहानाबाद खजाना पहुँचाने के लिये जो ऊँट किराये किये गये थे, उन पर २०) रुपया प्रति ऊँट किराया दिया गया था, जिससे स्पष्ट है कि उस समय मजदूरी विशेष सस्ती नहीं थी। बादशाह या सूबेदार की तरफ से खिराज की ताकीद के लिये अहदी और गुर्जबरदार आया करते थे। उनको दो या चार रुपये इनाम दिये जाते थे। राजकोष में रुपयों की कमी के कारण प्रजा के सम्पन्न लोगों से १२) रुपया प्रतिशत प्रतिवर्ष पर ऋण उधार लेलिया जाता था, परन्तु प्रजा की भी आर्थिक अवस्था बहुत अच्छी नहीं थी। यही कारण था कि २०) रुपये में लड़की मोल ली जा सकती थी[2]। जागीरदारों में राजपूतों के अतिरिक्त दूसरी अनेक जातियों के लोग थे। राजकोष में धनबाहुल्य न होते हुये भी बख्शिश बहुत उदारता के साथ दी जाती थी। सम्वत् १७२२ में दरबार ने जोखें लगवाई जिसके लिये बाबर को ६०८ बीघे जमीन बख्शी गई थी।

(१) कागजात सम्वत् १७४०, १७३९, १७३४।

(२) रोजनामचा भादवा सम्वत् १७४०, सीगा मुतफर्रिकात।

धाभाई और उच्च कर्मचारियों की लड़कियों को माफी में जमीनें दी गई थीं। यहाँ तक कि एक गाड़ीवान के लड़के के ब्याह में २०) रुपये बख्शिश दिये गये थे[1]। हाथी, घोड़े और गौओं के दाम का उल्लेख पहिले ही किया जा चुका है।

**राजलोक**—यह पता नहीं चलता कि जगतसिंहजी के विवाहित स्त्रियाँ कितनी थीं? इनका देहान्त होने पर दो रानियों ने सहगमन किया था[2]। सम्वत् १७२० के कागजात में छः खवासों के भी नाम दर्ज हैं[3]।

**जगतसिंहजी का चरित्र**—औरंगजेब के क्रूर और पक्षपातमय शासन में १४ वर्षीय जगतसिंहजी का सफलतापूर्वक राज करना उनकी नीतिज्ञता का प्रमाण है। जिस समय वे गद्दी पर बैठे तो चारों ओर अन्धकार था। परिवार का प्रायः सर्वनाश हो चुका था। बादशाह से विरोध था, सेना कट चुकी थी और राजकोष खाली था। ऐसे भयंकर समय में धैर्य रखना और १४ वर्ष की अवस्था में औरंगजेब की हरावल में खड़े होजाना तथा जसवन्तसिंहजी के चक्कर में न आकर अपने कर्त्तव्यपथ पर दृढ़ रहना जगतसिंहजी के लिये अपूर्व धैर्य्य, दुर्दम्य वीरत्व और उच्च चरित्र की बात थी। अपने चरित्रबल से औरंगजेब जैसे अनुदार और कपटी सम्राट् को सन्तुष्ट करके उन्होंने मऊ और बाराँ के परगने वापिस लौटा लिये थे। वे दानशील इतने थे कि साम्पत्तिक संकट में पड़े हुये भी हाथी, घोड़े और गौएँ दान किया करते थे, तथा दक्षिणा में मोहरें दिया करते थे। दुर्भिक्ष के समय उचित छूट दिया करते थे और सम्वत् १७३८ में जब एक

(१) कागजात सम्वत् १७२२, सीगा मुतफर्रिकात।
(२) ठाकुर लक्ष्मणदान।
(३) कागजात सम्वत् १७२०, फहरिस्त जेवरात।

गाँव डाकुओं ने लूट लिया तो ग्रामवासियों को राजकोष से पर्याप्त सहायता देकर संतुष्ट किया गया था।

**पेमसिंहजी**—जगतसिंहजी के कोई सन्तान नहीं थी। कहा जाता है कि मोहनसिंहजी और जुझारसिंहजी ने राजपद ग्रहण नहीं किया इसलिये ठिकाना कोयले के आप पेमसिंहजी को जो धर्मत की लड़ाई में मारे जाने वाले कन्हींरामजी के पुत्र थे, गद्दी पर बिठाया गया। ये शासन करने के लिये योग्य नहीं थे और समय था औरंगजेब का। अपनी अयोग्यता को छिपाने के लिये औरंगजेब के प्रभावशाली दरबारियों को लाखों रुपये देकर काम चलाया, परन्तु आखिर यह उपाय कब तक निभ सकता था? एक वर्ष के अन्दर ही शासन में शैथिल्य आगया और चारों ओर बरबादी दिखाई देने लगी। अतः दशहरे के अवसर पर जब सब उमराव इकट्ठे हुये तो निश्चय किया गया कि इनको गद्दी से उतार दिया जावे। पेमसिंहजी गद्दी पर एक वर्ष भी न बैठ पाये थे कि कार्त्तिक शुक्ला द्वितीया सम्वत् १७४१ के दिन किशोरसिंहजी का राजतिलक कर दिया गया और पेमसिंहजी को वापिस कोयला भेज दिया गया[1]।

---

(१) ठाकुर लक्ष्मणदान।

# राव किशोरसिंहजी

(सन् १६८४–१६९६)

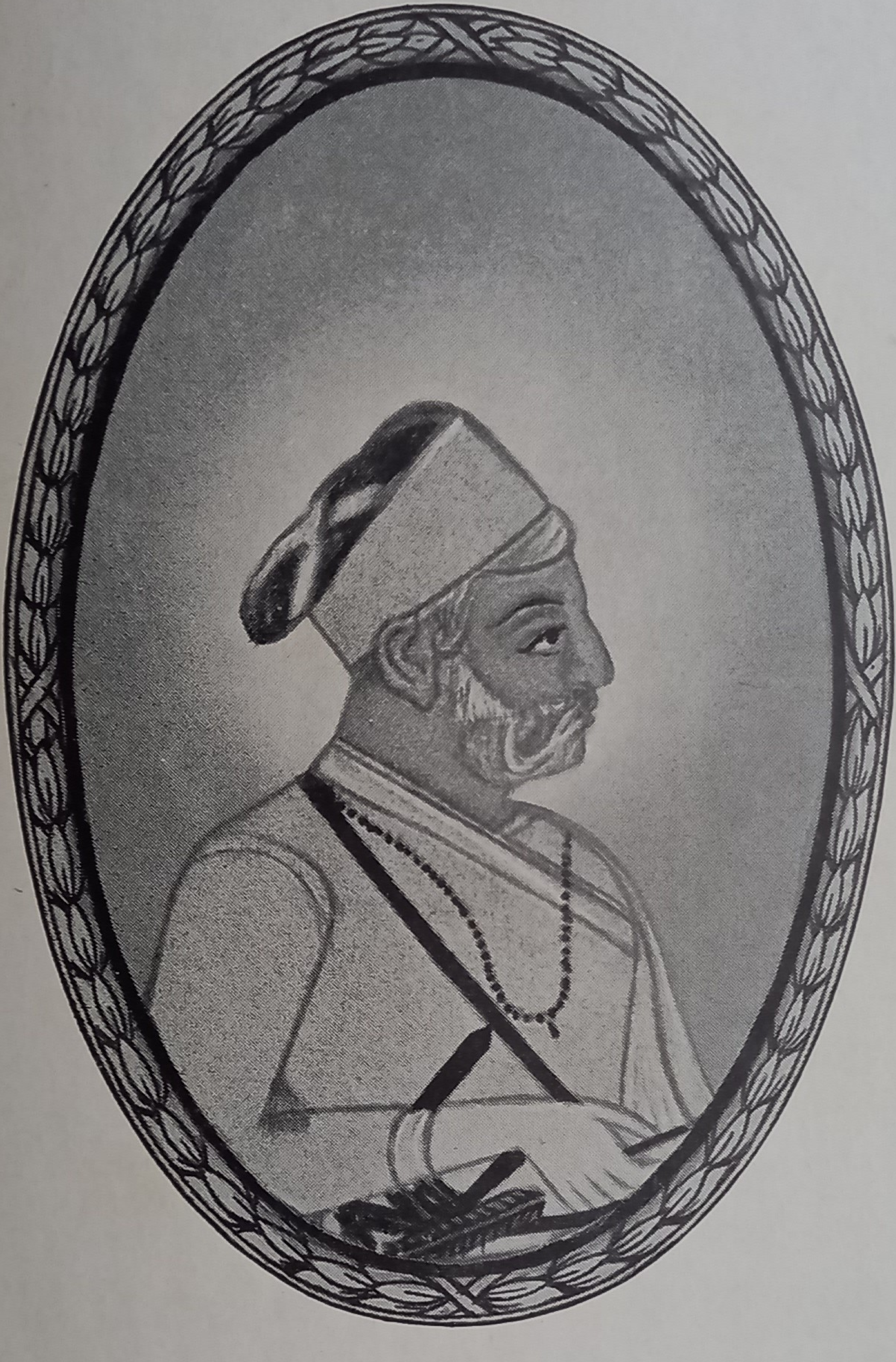
**प्रारम्भिक जीवन**--किशोरसिंहजी राव माधोसिंहजी के सबसे छोटे पुत्र थे, जिनको अपने पिता से २४ गाँव सहित साँगोद की जागीर मिली थी[1]। शाहजहाँ के समय ये ४०० के मन्सबदार थे और बल्ख बदख्शाँ के युद्ध में अपने पिता के साथ थे[2]। अपने भाई मुकुन्दसिंहजी के राज्यकाल में ये कन्धार के घेरों में भी शाही सेना के साथ थे[3]। धर्मत की लड़ाई में औरंगजेब के विरुद्ध अपने भाइयों के साथ साथ लड़ते हुये अनेक घावों के कारण अचेत होकर ये रणभूमि में गिर पड़े थे। वहाँ से इनके साथियों ने जीवन की आशा से इनको उठाया था। भाग्यवश उपचार करवाने पर वे स्वस्थ होगये। इनके उपचार के विषय में एक मनोरंजक किंवदन्ति प्रचलित है:—

**युवती का उपचार**—कहा जाता है कि धर्मत के युद्ध में सख्त जख्मी होने के बाद अचेत अवस्था में जब किशोरसिंहजी अपने डेरे में लाये गये तो उनमें प्राणों का स्पन्दन मात्र था और जीवित रहने की कोई आशा दिखाई नहीं देती थी। उनकी मूर्छा को हटाने के लिये कुशल वैद्यों ने यह तजवीज की कि यदि कोई युवती उनके पास रहे तो उसके स्पर्श और संसर्ग से उनकी मूर्छा निवारण हो सकती है। उस समय एक डोड राजपूत सरदार इस शर्त पर अपनी कुमारी

(१) ठाकुर लक्ष्मणदान जी।

(२) मुंशी मूलचन्द, पृष्ठ ९६।

(३) उपरोक्त, पृष्ठ ११५।



राव किशोरसिंहजी
(१७४१–१७५२ वि०)

और युवती कन्या को किशोरसिंहजी के पास भेजने पर तैयार हो गया कि स्वास्थ्य लाभ होजाने पर उसका किशोरसिंहजी के साथ विवाह हो। उस युवती के स्पर्श से किशोरसिंहजी की मूर्छा हट गई और वह उनके पास रहने लगी, परन्तु शायद ब्राह्मणों ने या सामाजिक रूढ़ि ने उसको विवाहित पत्नी नहीं बनने दिया। कारण यह बतलाया गया कि विधिवत् पाणिग्रहण होने से पूर्व ही उसने किशोरसिंहजी को स्पर्श कर लिया था। इस समय कमोलर के जागीरदार इस महिला से उत्पन्न पुत्र के वंशधर कहे जाते हैं।

**खजुहा के रणक्षेत्र में**—धर्मत के युद्ध से आठ महीने बाद[१] किशोरसिंहजी को खजुहा के रणक्षेत्र में औरंगजेब की ओर से शुजा के विरुद्ध लड़ना पड़ा। इस युद्ध में भी वे हरावल में लड़े थे और जब जसवन्तसिंहजी विश्वासघात करके औरंगजेब के केम्प को लूटकर चले गये थे, तब किशोरसिंहजी ने औरंगजेब का साथ दिया था। इस युद्ध में किशोरसिंहजी राव जगतसिंहजी के साथ थे, परन्तु वे स्वतन्त्र रूप से शाही फौज में मन्सबदार भी थे[२]।

**दक्षिण में**—जगतसिंहजी और किशोरसिंहजी दोनों औरंगजेब की तरफ से दक्षिण में मराठों और बीजापुर तथा गोलकुण्डा के सुल्तानों के विरुद्ध लड़ने के लिये नियत किये गये थे। परन्तु औरंगजेब ने सावधानता के लिये दोनों को एक जगह पर नहीं रक्खा था। किशोर-सिंहजी बीजापुर के युद्ध में नियत किये गये थे और जगतसिंहजी बुरहानपुर तथा औरंगाबाद में मराठों को दबाने के लिये। हाड़ा राजपूतों ने कभी किसी बादशाह के साथ विश्वासघात नहीं किया था, परन्तु

(१) i धर्मत का युद्ध १५ अप्रैल १६५८।
ii खजुहा का युद्ध ३ जनवरी १६५९।
(२) आलमगीर नामा, पृष्ठ २४५-५०।

औरंगजेब इतना कपटी, अविश्वासी, और कूटनीतिज्ञ था कि किशोर सिंहजी और जगतसिंहजी को एक ही स्थान में नियत करना वह हितकर नहीं समझता था।

**जगतसिंहजी की मृत्यु के समय**—हैदराबाद की लड़ाई में सम्वत् १७४० के कार्तिक मास में जब जगतसिंहजी शेख मिनहाज के विरुद्ध घोर युद्ध करते हुये सम्भवतः धराशायी हुये तब किशोरसिंहजी बीजापुर की लड़ाइयों में व्यस्त थे। स्वामी और भतीजे जगतसिंहजी के स्वर्गवास पर शोक मनाने के लिये भी वे कोटे न आ सके। इस समय उनको १००० का मन्सब मिल चुका था और उनकी वीरता तथा दृढ़ स्वामिभक्ति के कारण औरंगजेब जैसा कट्टर बादशाह भी उन पर कुछ विश्वास करने लग गया था। ऐसी स्थिति में किशोरसिंहजी ने उचित नहीं समझा होगा कि कोटे आने के लिये औरंगजेब से छुट्टी माँगी जावे या सम्भव है, उनको छुट्टी मिली ही नहीं हो।

**पेमसिंहजी को गद्दी क्यों मिली ?**—जगतसिंहजी के कोई पुत्र नहीं था। अतः उनके स्वर्गवासी होने पर यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि राजगद्दी किसको मिले ? प्रत्यक्षतः ऐसी अवस्था में राजगद्दी के अधिकारी पलायथे के आप मोहनसिंहजी के उत्तराधिकारी थे। मोहन-सिंहजी शाही दरबार में और युद्धों में कीर्तिमान् सरदार थे, परन्तु उनको कोटे की गद्दी नहीं मिली इसका क्या कारण था ? ऐसी किंवदन्ति है कि उस समय पलायथे की जागीर काफी बडी थी और वहाँ पर कोई छोटा भाई भी नहीं था, परन्तु यह बात विश्वास के योग्य नहीं जँचती। पलायथा बड़ा अवश्य था। बोलचाल में उस समय "कोटा पलायथा" बोला जाता था। शाहजहाँ के फरमान में भी कोटा पलायथा के नाम से कोटा राज्य का उल्लेख किया जाता था। पलायथा चाहे

जितना बड़ा हो तो भी कोटा राज्य से तो बड़ा नहीं था और मोहन सिंहजी यशस्वी और प्रसिद्ध होते हुये भी मुकुन्दसिंहजी के समकक्ष नहीं थे। ऐसा अनुमान होता है कि उस समय पलायथे के ठिकाने पर कोई अल्पवयस्क जागीरदार होगा और इसीलिये उनको राजगद्दी के योग्य नहीं समझा गया होगा। इसी प्रकार किसी कारण से जुझार सिंहजी के वंशज भी राजगद्दी से वंचित रहे। उस समय औरंगजेब दक्षिण के युद्ध में अत्यन्त व्यस्त था, अतः कोटे की गद्दी के विषय में विचार करने की उसको फुरसत नहीं थी। ऐसा जान पड़ता है कि पेमसिंहजी को कोटे के अधिकारियों ने कुछ प्रपञ्च करके गद्दी पर बिठाया था। इस कारण उनके गद्दी पर बैठते ही कुछ उनकी अयोग्यता के कारण और कुछ दूसरे पक्ष के विरोध के कारण स्थिति नाजुक होगई। शाही सनद पेमसिंहजी को मिली ही नहीं थी, अतः कोटे के उमरावों ने पेमसिंहजी को गद्दी से उतार दिया[1]।

**किशोरसिंहजी को गद्दी क्यों मिली?**—इधर पेमसिंहजी अयोग्य सिद्ध हो चुके थे और उधर किशोरसिंहजी कई युद्धों में अपनी वीरता और दृढ़ता का परिचय देकर औरंगजेब के कृपापात्र तथा विश्वास-भाजन बन चुके थे। अभी वे केवल १,००० के मन्सबदार थे। उनकी वीरता को देखकर औरंगजेब उनको पुरस्कृत भी करना चाहता था। पेमसिंहजी की अयोग्यता ने इसके लिये सुवर्ण अवसर उपस्थित कर दिया और औरंगजेब ने खिलत तथा फरमान देकर किशोरसिंहजी को दक्षिण से अपने पिता की गद्दी पर बैठने के लिये कोटे रवाना किया[2]।

**राज्याभिषेक और दक्षिण को वापिसी**—किशोरसिंहजी

---

(१) वंशभास्कर, तृतीयभाग, पृष्ठ २८८९।

(२) उपरोक्त।

अनेक युद्धों में वीरता दिखा कर क्षत्रियों में ख्याति और शाही दरबार में सम्मान प्राप्त कर चुके थे। ऐसा वीर वास्तव में कोटे की गद्दी के योग्य था। उनके गद्दी पर बैठने से राज्य के उमरावों को सन्तोष हुआ और कोटा के राजवंश का गौरव बढ़ा। इस समय औरंगजेब बड़े जोर के साथ दक्षिण के युद्ध में लगा हुआ था, अतः किशोरसिंहजी को कोटे में रहने का अधिक अवकाश नहीं मिल सका। राज्याभिषेक का उत्सव समाप्त होते ही वे पुनः युद्ध में सम्मिलित होने के लिये दक्षिण चले गये।

**बिशनसिंहजी ने साथ जाने से इन्कार किया**---किशोरसिंहजी के इस समय चार पुत्र थे। बिशनसिंहजी, रामसिंहजी, अर्जुनसिंहजी और हरनाथसिंहजी[1]। दक्षिण जाते समय किशोरसिंहजी अपने साथ कुँवर बिशनसिंहजी को लेजाना चाहते थे परन्तु उन्होंने अपनी माता के कहने से साथ जाने से इन्कार कर दिया। उनके इन्कार करने से किशोरसिंहजी को बहुत क्रोध आया। वे औरंगजेब की कृपा के लिये अपने ज्येष्ठ पुत्र को साथ लिये हुये शाही सेना में लड़ कर विशेष कृतज्ञता प्रकट करना चाहते थे। अतः उन्होंने बिशनसिंहजी को उत्तराधिकार से वंचित कर दिया और दूसरे कुँवर रामसिंहजी को ज्येष्ठ पुत्र मान कर अपने साथ लेगये। बिशनसिंहजी को अधिकार की दृष्टि से कनिष्ठ पुत्र बना कर अन्ते की जागीर देदी[2]।

**निरन्तर रणक्षेत्र में**—किशोरसिंहजी ने सम्वत् १७४१ से सम्वत् १७५२ तक अर्थात् १२ वर्ष तक राज्य किया। इस अर्से में वे दो चार बार कोटे आये थे। परन्तु उनका अधिकांश समय दक्षिण

(१) कागजात सम्वत् १७४६, तकसीम।

(२) i ठाकुर लक्ष्मणदान।

ii टॉड: राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५५४।

में युद्धस्थल में ही बीता था और अनेक लड़ाइयों में अद्भुत वीरता दिखा कर अन्त में रणक्षेत्र में ही उन्होंने वीरगति प्राप्त की थी। रामसिंहजी को १,००० का मन्सब मिल गया था परन्तु वे निरन्तर अपने पिता के साथ दक्षिण में नहीं रहे। तीन वर्ष तक अर्थात् सम्वत् १७४१ से सम्वत् १७४४ के आरम्भ तक दक्षिण की लड़ाइयों में सम्मिलित रह कर वे कोटा वापिस आगये। किशोरसिंहजी के अन्य पुत्र भी छोटे छोटे मन्सबदार थे। वे अपने पिता के साथ दक्षिण में ही रहे[1]।

**किशोरसिंहजी मेवाड़ में**—जोधपुर के बालक महाराजा अजीतसिंहजी की तरफ से जब राठौड़ दुर्गादासजी ने स्वातन्त्र्य-संग्राम छेड़ा था और स्थिति को भयावह समझ कर स्वयम् औरंगजेब ने अजमेर में अपना मुकाम किया था तो किशोरसिंहजी शाही सेना के साथ थे। वे जोधपुर और मेवाड़ दोनों के विरुद्ध अवश्य लड़े होंगे। अन्त में शाहजादा अकबर के बागी होने पर सम्वत १७३७ के चैत्र मास में बादशाह और महाराणा में सुलह की बातचीत आरम्भ हुई। महाराणा और शाहजादा आजम की मुलाकात का दिन निश्चित हुआ। उस समय महाराणा का स्वागत करने के लिये किशोरसिंहजी बादशाह की ओर से नियत किये गये थे। श्रावण बुदी ३ सम्वत् १७३७ ( २४ जून सन् १६८१ ) को जो मुलाकात का दरबार हुआ, उसमें किशोरसिंहजी उपस्थित थे[2]।

**बीजापुर में**—किशोरसिंहजी बीजापुर की लड़ाई को छोड़ कर कोटे आये थे और पुनः वहीं जाकर सम्मिलित होगये। बीजापुर का घेरा कई वर्ष तक जारी रहा था। उसमें रामसिंहजी के साथ किशोरसिंहजी

(१) कागजात सम्वत् १७४७, हिसाब मन्सब का।

(२) ओझा: राजपूताने का इतिहास, तृतीयभाग, पृष्ठ ८९७।

ने कई बार बड़ी वीरता के काम किये जिससे औरंगजेब उनसे बहुत प्रसन्न रहा। उनको कई बार भारी पुरस्कार, हाथी, घोड़े, जेवर और खिलत बख्शे गये। इन पर बादशाह को इतना विश्वास होगया कि उन के बराबर के मुसलमान मन्सबदारों की अपेक्षा वह उनका अधिक सम्मान करता था। सितम्बर १६८५ में बीजापुर के किले पर औरंगजेब का अधिकार हुआ। जब बादशाह ने उल्लासपूर्वक दुर्ग में प्रवेश किया तो किशोरसिंहजी उसके साथ थे। विजयोत्सव मनाने के लिये जो दरबार हुआ, उसमें किशोरसिंहजी को पुनः खिलत, हाथी, घोड़े और जवाहरात इनाम में दिये गये[1]।

**इब्राहीमगढ़ विजय**—बीजापुर को जीतने के बाद औरंगजेब ने फीरोजजंग बहादुर के नेतृत्व में एक सेना इब्राहीमगढ़ को घेरने के लिये भेजी और किशोरसिंहजी को भी इसी के साथ रवाना किया। इस किले का घेरा कुछ ही दिन में सफल होगया और दुर्ग पर औरंगजेब का अधिकार स्थापित कर दिया गया। किले की रक्षा का समुचित प्रबन्ध करके फीरोजजंग बहादुर ने वहाँ से कूँच किया और औरंगजेब की सेना में जा सम्मिलित हुआ। इब्राहीमगढ़ के घेरे में किशोरसिंहजी बड़ी दृढ़ता और वीरता के साथ लड़े थे[2]।

**हैदराबाद के घेरे में**—फीरोजजंग और किशोरसिंहजी जनवरी सन् १६८६ को शाही लश्कर में जा सम्मिलित हुये। इस समय औरंगजेब की सेना का केम्प हैदराबाद से कुछ ही दूर पर था। दो दिन बाद घेरा शुरू हुआ। दोनों पक्ष से रोमाञ्चकारी वीरता का तथा अद्भुत युद्धकौशल का प्रदर्शन होने लगा। शाही सेना निरन्तर सुरंग

(१) नियामतखां 'आली'।
(२) उपरोक्त।

बना कर किले की दीवार को उड़ाने का प्रयास करती थी। उधर दुर्ग रक्षक पता लगते ही सुरंगों को पानी से भरदिया करते थे। इस नगर का घेरा पहले कई वर्ष से जारी था, परन्तु शाही सेना को सफलता प्राप्त नहीं होती थी। इसलिये अब औरंगजेब स्वयम् युद्धसंचालन के लिये यहाँ पर आया था। किशोरसिंहजी को अपनी वीरता दिखाने के लिये इससे अधिक उपयुक्त स्थान तथा अवसर और क्या मिल सकता था ? घेरा बहुत अर्से तक जारी रहा। शाही लश्कर में उत्तरोत्तर कठिनाइयाँ बढ़ने लगीं और दुर्भिक्ष तथा रोग का विकराल ताण्डव होने लगा। भूख और व्याधि से ग्रस्त होकर शाही लश्कर के हजारों सैनिक काल के ग्रास बन गये, परन्तु औरंगजेब कठिनाइयों से घबराने वाला पुरुष नहीं था। उसने दृढ़तापूर्वक घेरा जारी रक्खा। किशोरसिंहजी भी अविचलरूपेण उसका साथ देते रहे। अन्त में औरंगजेब और दुर्गरक्षक अब्दुल रज्जाकखाँ लासानी हैदराबादी दोनों इस अन्तहीन घेरे से ऊब उठे और दोनों ओर से मैदान में युद्ध करने का निश्चय कर लिया गया। किशोरसिंहजी के लिये रणक्षेत्र उत्सव का रंग मंच था। वे उल्लास के साथ औरंगजेब के साथ हुये। औरंगजेब अविचल धैर्य और दुर्दम्य साहस के साथ मध्य भाग में हाथी पर बैठ कर सैन्य संचालन करने लगा। बहुत देर तक लड़ाई हुई और अन्त में विजयलक्ष्मी औरंगजेब के हाथ लगी। इस युद्ध में भी किशोरसिंहजी ने अपनी स्वाभाविक वीरता का परिचय दिया[१]।

**मराठा युद्ध**—बीजापुर और गोलकुण्डा को नष्ट भ्रष्ट करके औरंगजेब ने मराठों का दमन करने का निश्चय किया। सन् १६८८ से १६९५ ई० तक वह महाराष्ट्र को दबाने का प्रयत्न करता रहा। इस

(१) नियामतखाँ 'आली'।

अर्से में किशोरसिंहजी कभी औरंगजेब के साथ और कभी शाही सेनापति जुल्फिकारखाँ के साथ मराठों के विरुद्ध लड़ते रहे। इसी बीच में जाटों के उपद्रव को दबाने के लिये मथुरा में और पहाड़सिंह गौड़ के बलवे को दबाने के लिये मालवे में भी किशोरसिंहजी को जाना पड़ा था।

**रायगढ़ की विजय**—सन् १६८९ में औरंगजेब की चढ़ाई बहुत सफल हुई। इसी वर्ष सम्भाजी को गिरफ्तार करलिया गया और अत्यन्त निर्दयता के साथ उनको मरवा डाला। तदनन्तर रायगढ़ को घेरा गया। मराठों ने वीरतापूर्वक कुछ अर्से तक दुर्ग की रक्षा की, परन्तु अन्त में उन्हें मार्गशीर्ष कृष्णा ६, सम्वत १७४७ विक्रम् को आत्मसमर्पण करना पड़ा और सम्भाजी का सम्पूर्ण परिवार गिरफ्तार होगया। इस घेरे में किशोरसिंहजी भी औरंगजेब के साथ लड़े थे[1]।

**बसन्तगढ़ का घेरा**—इन्हीं दिनों में अर्थात् २२ नवम्बर को शाही सेना ने बसन्तगढ़ के घेरा डाला था। इस सेना में भी कितने ही राजपूत सैनिकों के साथ किशोरसिंहजी सम्मिलित थे। इस दुर्ग में थोड़े से मराठे सैनिक थे। उधर शाही सेना ने बड़ी तैयारी के साथ इस गढ़ को घेरा था, अतः केवल तीन दिन तक ही मराठा लोग दुर्ग की रक्षा कर सके। २५ नवम्बर को शाही सेना ने उस पर अधिकार करके औरंगजेब का झण्डा स्थापित कर दिया। इस दुर्ग के पास इसी वर्ष तीन महीने बाद मराठों से एक और लड़ाई हुई थी, उसमें भी किशोरसिंहजी ने अच्छी वीरता दिखाई थी[2]। इसी वर्ष

(१) i सर जे. एन. सरकार: हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द ५, पृष्ठ ७।
ii कागजात सम्वत् १७४७, सीगा मुतफर्रिकात।

(२) i सरकार: हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द ५, पृष्ट १५।
ii कागजात सम्वत् १७४७, सीगा मुतफर्रिकात।

भावनगर का युद्ध हुआ था, जिसमें भी किशोरसिंहजी ने वीरता का काम किया था[1]।

**जाटों के साथ युद्ध**—अर्से तक दक्षिण की लड़ाइयों में औरंगजेब के व्यस्त रहने के कारण उत्तर भारत में कई प्रकार की अफ-वाहें फैलने लगीं। कोई कहता था " शाही सेना हार रही है, " कोई कहता था " बादशाह मर गया है "। दिल्ली से सेना और धन निरन्तर दक्षिण में मँगवाये जाते थे, जिससे इन अफवाहों की पुष्टि होती थी। उत्तर भारत का शासन शिथिल हो गया था और जहाँ तहाँ उत्पात होने लगे थे। इस स्थिति को अनुकूल समझ कर राजाराम के नेतृत्व में जाटों ने उत्पात मचाना शुरु किया। इन लोगों ने अपना संगठन करके अपनी सेना बनाली और शाही शासन की अवहेलना करने लगे। आगरे का सूबेदार विवश इन उत्पातों को देखता रहा, परन्तु कर कुछ नहीं सका। सन् १६८६ में औरंगजेब ने आजम को जाटों के दमन के लिये रवाना किया, परन्तु उसको मार्ग से ही वापिस बुला कर शाहजादा बेदारबख्त को इस काम के लिये नियत किया। जुलाई सन् १६८८ में एक घमासान युद्ध हुआ जिसमें राजाराम मारा गया, परन्तु जाटों की शक्ति फिर भी नष्ट नहीं हुई। इस युद्ध में बूँदी के रावराजा अनिरुद्धसिंहजी और कोटा नरेश किशोरसिंहजी अपने कई जागीरदारों के सहित सम्मिलित हुये थे[2]। इस युद्ध में से बूँदी के रावराजा अनिरुद्धसिंहजी भाग निकले, परन्तु किशोरसिंहजी ने

(१) कागजात सम्वत् १७४७।

(२) वंशभास्कर में इस युद्ध का सम्वत् १७४६ दिया हुआ है जो 'फतूहाते आलमगीरी' ( ईसरदास नागर ) में दिये हुये सम्वत् से ठीक मिलता है।

i सर जे. एन. सरकार: हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द ५, पृष्ठ २९९।

ii E. & D., जिल्द ७, पृष्ठ १९८।

वीरतापूर्वक लड़ना जारी रक्खा। इतना ही नहीं, जब उन्होंने अनिरुद्ध-सिंहजी को रण से विमुख होते हुये देखा तो उनको बड़ी लज्जा आई। वे इस बात को सहन नहीं कर सकते थे कि बूँदी नरेश जैसा एक प्रमुख हाड़ा सरदार रणक्षेत्र से हटकर हाड़ा वंश की शुभ कीर्ति में धब्बा लगावे। उनका रुख देख कर कोटे के उमराव राजगढ़ के जागीरदार आप गोरधनसिंहजी अनिरुद्धसिंहजी की ओर बढ़े, और उनका मार्ग रोक कर पुनः युद्धक्षेत्र में अविचल डटे रहने का आग्रह किया, परन्तु अनिरुद्धसिंहजी को पीछा मुड़ने का साहस नहीं हुआ। अन्त को बूँदी नरेश की पगड़ी गोरधनसिंहजी ने अपने सिर पर धारण की और उनके चँवरबरदार को साथ रखकर लड़ने लगे। इससे स्वपक्ष और विपक्ष के सैनिकों को यह विश्वास बना रहा कि अनिरुद्धसिंहजी अब तक लड़ रहे हैं। कोटा नरेश और उनके साथी सरदार बड़े साहस और वीरता के साथ लड़ते रहे। अन्त को विजयश्री बेदारबख्त के हाथ लगी[1]।

**किशोरसिंहजी आहत हुये**—किशोरसिंहजी के इस लड़ाई में २७ घाव लगे और उनका हाथी और घोड़ा मारा गया। स्वयम्

---

(१) i ठाकुर लक्ष्मणदान।

ii मोहनोत माधानी व्हाँ कोटा की चमू तैं कढ़ि,
काम आयो गोवर्द्धन मारि घनैं अति क्रोध।
वंशभास्कर, तृतीय भाग पृष्ठ २८८७।

धारन मैं धसिकैं अकेले धीर गोवर्द्धन,
राख्यो जस भागी बीर कोटा को अधिप राम।
वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २८८८।

हाड़े ओर भागे पै न भागो सुत मोहन को,
खेत पर्यो गोवर्द्धन जट्टन घनेंन खाइ।
वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २८९०।

किशोरसिंहजी भी अर्से तक बेहोश रहे। इस युद्ध में घाटी के रावत तेजसिंहजी, राजगढ़ के आप गोरधनसिंहजी, गेंता के कुँवर घासीरामजी, पानाहेड़ा के ठाकुर सुजानसिंहजी और तारज के ठाकुर राजसिंहजी आदि कई कोटे के वीर उमरावों ने वीरगति प्राप्त की।

सर जादुनाथ सरकार ने लिखा है कि अनिरुद्धसिंहजी शाहाबाद सूबा मालवे के फौजदार पहाड़सिंह गौड़ से लड़ते हुये भागे थे, परन्तु पहाड़सिंह का युद्ध सन् १६८५ में हुआ था और राजाराम जाट का युद्ध सन् १६८८ में। अतः ऐसा जान पड़ता है कि अनिरुद्धसिंहजी राजाराम जाट से लड़ते हुये भी भागे और पहाड़सिंह से लड़ते हुये भी भागे। ठाकुर लक्ष्मणदान ने लिखा है कि राजाराम के विरुद्ध लड़ने वाली शाही सेना का नायक आजम था। यह बात गलत है। इस सेना का नेतृत्त्व पहले आजम के सुपुर्द जरूर हुआ था, परन्तु फिर उसको वापिस बुला कर उसके पुत्र बेदारबख्त को इस पद पर नियुक्त कर दिया गया था[१]।

**करनाटक में**—कोटे में ऐसी किंवदन्ती है कि किशोरसिंहजी ने दक्षिण में किसी स्थान पर लड़ते हुये वीरगति प्राप्त की थी। कर्नल टॉड ने लिखा है कि वे अरकट के किले की दीवार पर चढ़ते हुये गिर कर मरे हैं। टॉड ने इनकी मृत्यु का सम्वत् १७४२ लिखा है[२], जो भूल है। सम्वत् १७४७ में किशोरसिंहजी का रायगढ़ और बसन्तगढ़ के घेरों में लड़ना और सम्वत् १७५२ में उनका देहान्त होना सरकारी कागजात से सिद्ध है। यह खेद की बात है कि कागजों में

(१) i वंशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २८८६।
ii खाफीखाँ, पृष्ठ ३१६, ३९५।
iii मआसिरे आलमगीरी, २९८, ३११।
(२) टॉड : राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५५४।

उनके देहान्त का स्थान नहीं लिखा हुआ है, परन्तु तत्कालीन फारसी की तवारीखों से सिद्ध होता है कि किशोरसिंहजी का देहान्त अरकट में ही हुआ है। ऐसा मालूम होता है कि सन् १६८९ की चढ़ाई के बाद किशोरसिंहजी जुल्फिकारखाँ के साथ नियत किये गये थे। सन् १६९५ में जब जुल्फिकारखाँ ने करनाटक में जिंजी के दुर्ग के घेरा डाला था तो किशोरसिंहजी उसके साथ थे। उस समय औरंगजेब की अवस्था ८० वर्ष के लगभग थी और प्रतिदिन यह अफवाह उड़ा करती थी कि उसका देहान्त होगया। इसलिये जुल्फिकारखाँ मन लगा कर युद्ध नहीं करता था और सम्राट् की मृत्यु की प्रतीक्षा किया करता था। इतना ही नहीं, उसको यह आशा थी कि औरंगजेब की मृत्यु के बाद जब शाहजादों में सल्तनत के लिये परस्पर संघर्ष होगा तो देश में अशान्ति तथा अराजकता फैल जायगी और अपने लिये एक अलग राज्य स्थापित करना कोई कठिन बात नहीं होगी। पाँडिचेरी के फ्रांसीसी और मदरास के अँगरेज प्रायः इस तरह की चर्चा किया करते थे और भीमसेन कायस्थ तक का यही अनुमान था[1]।

अक्टूबर १६९४ में जुल्फिकारखाँ ने जिंजी से ४२ मील दूर चंगामन दुर्ग के पास अपने डेरे डाले। यहाँ पर उसने मराठों को और मराठों ने उसको खूब सताया। फिर भी उसकी उदासीनता अधिकाधिक प्रकट होती जाती थी। किशोरसिंहजी को भी पता लग गया था कि जुल्फिकारखाँ की राजभक्ति शिथिल होगई है और वह युद्धसंचालन नहीं कर रहा है, बल्कि बादशाह को एक प्रकार से धोखा दे रहा है।

---

(१) i सर जे. एन. सरकार : हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द ५, पृष्ठ १००-१०१।

ii भीमसेन कायस्थ : नुस्खए दिलकश का लेखक।

**जुल्फिकारखाँ पर क्रोध**—किशोरसिंहजी को जुल्फिकारखाँ का प्रपञ्च कब पसन्द आसकता था ? वे अपने वचन पर दृढ़ थे। जय या पराजय की उनको इतनी चिन्ता नहीं थी जितनी प्रतिज्ञा पालन की। दृढ़प्रतिज्ञ होना उनका आनुवंशिक धर्म था। माधोसिंहजी, मुकुन्दसिंहजी और जगतसिंहजी ने प्राणपण से मुगल बादशाहों की सहायता की थी और साम्राज्य के विरोधियों का दमन करने में कोटा के नरेश हमेशा आगे रहे थे। जुझारसिंह, खाँजहाँ लोदी और खुर्रम तथा स्वयम् औरंगजेब बगावत करते समय हाड़ों के शस्त्र प्रहार का अनुभव कर चुके थे। अतः जब किशोरसिंहजी ने देखा कि जुल्फिकार खाँ लड़ता नहीं लेकिन लड़ने का बहाना कर रहा है तो उनका रक्त उबलने लगा और उन्होंने चाहा कि जिस प्रकार खुर्रम को उनके पूर्वज् माधोसिंहजी ने कैद करलिया था, उसी प्रकार उसको भी जंजीरों से बाँध कर बादशाह की सेवा में भेजा जावे[1]। ऐसा मालूम होता है कि किशोरसिंहजी तथा उनके अन्य दो मित्र दलपतराय बुंदेला और दाऊदखाँ के इस रुख को देखकर जुल्फिकारखाँ ने सचेत होकर पुनः सच्चे दिल से युद्ध करना शुरू किया और उसी वर्ष अक्टूबर में बैलोर को घेरा, परन्तु दिसम्बर के आरम्भ में ही जुल्फिकार खाँ को ऐसी खबर मिली जिससे वह घबरा गया।

**धना जादव**—सम्भाजी के मारे जाने पर और रायगढ़ में मुगलों का अधिकार स्थापित होजाने पर तथा राजाराम के सुदूर दक्षिण में भाग जाने पर लोगों का यह खयाल होने लगा था कि मराठों की शक्ति का अन्त हो चला, परन्तु ऐसा हुआ नहीं। ज्यों ज्यों विपत्तियों

---

(१) मदरास डायरी, १० नवम्बर सन् १६९४। हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द ५, पृष्ठ १०२ (सर जादूनाथ सरकार की हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द ५, पृष्ठ १०२ पर उद्धृत।)

की आग अधिकाधिक धधकती थी त्यों त्यों मराठे स्वर्ण सदृश तप तप कर अधिक खरे बनते जाते थे। जब सम्पूर्ण महाराष्ट्र और मराठा जाति नायकहीन प्रतीत होती थी उस समय दो ऐसे वीरों ने रणक्षेत्र में अवतरण किया, जिन्होंने अपनी अदम्य वीरता, अद्‌भुत युद्धकौशल और चमत्कारिक आयोजन से मुगलों के छक्के छुड़ा दिये। यह दो वीर थे धना जादव और सन्ता घोरपरे। दोनों ही साधारण श्रेणी के गरीब सैनिक थे जो संकटाकुल परिस्थिति के कारण एक दम ऊँचे उठ आये थे। ये दोनों वीर अपने नेतृत्त्व में मराठों की बड़ी बड़ी सेनायें लेकर इधर उधर घूमने लगे। कहीं कहीं मुगलों के हाथ में गये हुये किलों को वापिस लेते थे, कहीं मीलों तक अन्न और वृक्षों को नष्ट करके तथा कुओं के पानी को विषाक्त करके मुगलों की भारी सेना के संचालन में विघ्न उपस्थित करते थे और कभी अवसर पाकर आक्रमण भी कर डालते थे। दोनों वीर जिधर जाते थे उधर सफल होते थे, जिससे उनके नाम मात्र से मुगल सेना में आतंक होने लग गया था।

**बैलोर में धना जादव**—दिसम्बर के अन्त में धना जादव बैलोर के पास आ पहुँचा। उसके आने से जुल्फिकारखाँ त्रस्त होगया और फौरन घेरा उठाकर उसने अपना माल असबाब तथा परिवार अरकट भेज दिया तथा स्वयम् लड़ने के लिए तैयार हुआ। अरकट से कुछ दूरी पर उसने एक बार तो धना को हरा दिया और अरकट में पहुँच कर मराठों का सामना करने लगा, परन्तु मार्च सन् १६९६ में सन्ता घोरपरे भी अपनी सेना के साथ अरकट में आ प्रकट हुआ जिससे सम्पूर्ण स्थिति बिल्कुल बदल गई। मराठा सैनिकों के जत्थे सम्पूर्ण करनाटक में जहाँ तहाँ फैल गये और क्षीण मुगल सेना को अनुभव होने लगा कि अब करनाटक पर मुगल सम्राट् का अधिकार

नहीं रह सकता। जुल्फिकारखाँ विपत्ति में फँसा हुआ था और बहुत दूर होने के कारण औरंगजेब न उसके पास धन भेज सकता था न सैनिक। जुल्फिकारखाँ ने देश का कुछ हिस्सा गिरवी रखकर अँग्रेजों से एक लाख रुपये का ऋण लेना चाहा, परन्तु वे लोग निरन्तर इनकार ही करते रहे[1]।

**किशोरसिंहजी ने विपत्ति में साथ दिया**—ऐसी विकट परिस्थिति में भी किशोरसिंहजी ने जुल्फिकारखाँ का साथ नहीं छोड़ा। वे जानते थे कि औरंगजेब का अन्त निकट है, मराठे प्रबल हैं और जुल्फिकारखाँ निर्बल तथा शिथिल है। तो भी उनके सामने अपना कर्त्तव्यमार्ग निश्चित था। जिस पक्ष को वे अपनी सेवा का वचन दे चुके थे, उसका अन्त समय तक साथ देना वे अपना धर्म समझते थे। मार्च से अप्रेल तक जुल्फिकारखाँ कभी धनाजी जादव और कभी सन्ताजी घोरपरे से लड़ता रहा। अप्रेल सन् १६९६ में अरनी के पास उसने सन्ताजी को हराया भी। सम्भवतः इसी युद्ध में किशोरसिंहजी का देहान्त हुआ। उसकी मृत्यु से जुल्फिकारखाँ असहाय सा होगया और फिर वह प्रायः अरकट के किले में रहकर अपने प्राणों की रक्षा करता रहा[2]। जब धनाजी और सन्ताजी में परस्पर द्वेष बढ़ा तब जुल्फिकारखाँ की हिम्मत बढ़ी और उसने पुनः जिंजी के घेरा डाला[3]।

**सम्मान और राज्य विस्तार**—राजा बनने से पूर्व किशोर

(१) मदरास डायरी, ३ मार्च, १६९६।
(सर जादूनाथ सरकार की हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब जिल्द ५,
पृष्ठ १०३–०४ पर उद्धृत।)

(२) नुस्खए दिलकशा: भीमसेन कायस्थ कृत।
(सर जादूनाथ सरकार की हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द ५,
पृष्ठ १०४ पर उद्धृत।)

(३) सर जे. एन. सरकार: हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द ५, पृष्ठ १०४–०५।

सिहजी १,००० के मन्सबदार थे। पेमसिंहजी को गद्दी से उतार देने पर जब उनको कोटे की गद्दी पर बैठने के लिये फरमान और खिलत के साथ औरंगजेब ने रवाना किया था तो उनको ३,००० का मन्सब दिया गया था। बीजापुर की विजय के बाद शोलापुर के केम्प में किशोरसिंहजी को एक हाथी, पाँच घोड़े और बहुत से जवाहिरात भेंट किये गये थे [1]। सम्भव है इस समय ही उनका मन्सब बढ़ाया गया हो। सरकारी कागजात में किशोरसिंहजी के सात हजारी मन्सब का हिसाब दिया हुआ है परन्तु यह हिसाब आइने अकबरी में दिये हुये सात हजारी मन्सब के हिसाब से नहीं मिलता [2]। ऐसा मालूम होता है कि किशोरसिंहजी ४,००० जात के मन्सबदार थे और ३,००० सवारों के हाकिम। बीजापुर के युद्ध में कुँवर रामसिंहजी भी उनके साथ थे और ८०० के मन्सबदार थे [3]। बीजापुर के घेरे में अपने वीर कार्यों के उपलक्ष में किशोरसिंहजी को कुवाई का परगना मिला था [4]। जाटों से युद्ध करते हुये बूँदी के रावराजा अनिरुद्धसिंहजी तो रणक्षेत्र से भाग निकले थे और किशोरसिंहजी वीरतापूर्वक लड़ते रहे थे, इसलिये केशोराय पाटन का परगना बूँदी से छीन कर किशोरसिंहजी को दिया गया था [5]।

**अपने राज्य में शान्ति स्थापन**—पेमसिंहजी ने कुछ ही मास शासन किया था, परन्तु उनकी शिथिलता और अयोग्यता के कारण राज के कई परगनों में अशान्ति और असन्तोष फैल गया था

(१) मुन्शी मूलचन्द, पृष्ठ ११६।

(२) कागजात सम्वत् १७४७, सीगा मुतफर्रिकात।

(३) उपरोक्त।

(४) ठाकुर लक्ष्मणदान।

(५) वंशभास्कर, भाग ३, पृष्ठ २८८८, तथा ठाकुर लक्ष्मणदान।

तथा राजकोष में बड़ी कमी आगई थी। मऊ, बड़ौद, आदि परगनों में लूटमार होने लगी थी और छोटे छोटे भोमिये जहाँ तहाँ राजशासन की अवहेलना करने लग गये थे। वास्तव में यह समय सम्पूर्ण भारत वर्ष में अशान्ति, असन्तोष और अराजकता का था। फिर जगतसिंहजी प्रायः आजन्म रणक्षेत्र में ही रहे और पेमसिंहजी उनके बाद अयोग्य साबित हुये। इसलिये अशान्ति स्वाभाविक थी। परगना बाराँ पर राजा उत्तमराम गौड़ ने अपना अधिकार कर लिया था और मोड़क में एक बहुत बड़ा मुगल अफसर मार डाला गया था। मुगल सम्राट् को जो मतालबा देना पड़ता था, उसका बहुत बड़ा अंश बाकी था[1]। इसलिये गद्दी पर बैठते ही किशोरसिंहजी को राजनैतिक तथा साम्पत्तिक संकटों का सामना करना पड़ा। परगना बाराँ पर कुँवर रामसिंहजी के नेतृत्त्व में सेना भेजी गई और आसूजी नामक एक मराठा सरदार उनके साथ किये गये। रामसिंहजी ने उत्तमसिंह गौड़ को हरा कर परगना बाराँ पर अपना अधिकार तो स्थापित कर लिया, परन्तु ऐसा अनुमान होता है कि उनको छोटी बड़ी कई लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी होंगी, क्योंकि सेना संचालन में लगभग एक लाख रुपया खर्च हुआ था। परगना मऊ और बड़ौद पर भी इसी प्रकार अधिकार स्थापित किया गया था और इस काम में भी सवा दो लाख से ऊपर खर्च हुआ था[2]। इस परगने में शान्ति स्थापित करने के लिये इसी वर्ष कितने ही राजपूतों को तथा एक मुसलमान को जागीरें दीगईं थीं। मुसलमान जागीरदार से यह तय हुआ था कि १८ तुर्की घोड़ों से यह राज की नौकरी करेगा। माँगरोल, कैथून और इटावा के परगनों में शान्ति की रक्षा करने के

(१) कागजात सम्वत् १७४५ और १७४८, सीगा मुतफर्रिकात।

(२) उपरोक्त।

लिये गिरासिये नियत किये गये थे[1]।

**राजकोष**—बाराँ, बड़ौद और मऊ, आदि परगनों में शान्ति स्थापित करने के लिये सेनासंचालन में जो खर्च हुआ था, उसका अधिकांश वहाँ के निवासियों से टेक्स के रूप में वसूल किया गया था। परगना मऊ और परगना बड़ौद से सम्वत् १७४५ में दो लाख तीस हजार रुपये के लगभग 'हलौटी' और 'दुसाला' नामक करों के रूप में संग्रह किये गये थे। 'दुसाला' पटेलों से लिया गया था और 'हलौटी कृषकों से। इतना भारी टेक्स लगाने पर भी सेनासंचालन का सम्पूर्ण व्यय पूरा नहीं होसका। उधर राजकोष की हालत पहले ही अच्छी नहीं थी। इसलिये राज को बहुत सा रुपया भारी ब्याज पर प्रजा से उधार लेने की आवश्यकता हुई थी। अधिकांश ऋण नन्दवाने बोहरों से लिया गया था। रुपयों के अतिरिक्त बहुत सा अन्न भी उधार लिया गया था। ब्याज की दर १२) रुपया प्रतिशत प्रति वर्ष थी और ऋण को चुकाने के लिये कभी कभी बोहरों के सुपुर्द गाँव कर दिये जाते थे। किशोरसिंहजी ने अपने समय का ऋण तो चुकाया ही था, परन्तु उन्होंने इसके अतिरिक्त पुराने कर्ज का भी फैसला किया था। सम्वत् १७४७ में जब किशोरसिंहजी का मुकाम दिल्ली में था, तो पद्मनाभ नामक एक गुजराती ने सम्वत् १६८८ का अर्थात् माधोसिंहजी के शासनकाल का एक पट्टा पेश करके जाहिर किया था कि कोटा राज्य पर उसका तीस हजार रुपया कर्ज है। इस साठ वर्ष के कर्ज को चुकाने के लिये महाराव किशोरसिंहजी ने पद्मनाभ के हवाले एक गाँव कर दिया था[2]।

---

(१) कागजात सम्वत् १७४५, १७४८, सीगा मुतफर्रिकात।

(२) कागजात सम्वत् १७४५, १७४६ और १७४७।

**उन्नति**—किशोरसिंहजी का अधिकांश समय औरंगजेब के साथ दक्षिण के युद्ध में बीता था। फिर भी उनको जो कुछ थोड़ा समय अपनी राजधानी में रहने को मिला, उसी में उन्होंने अपने राज्य को दृढ़, सुरक्षित और ऋणमुक्त बनाने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने बाराँ, बड़ौद और मऊ के परगनों पर अपना पुनः अधिकार जमाया और शान्ति स्थापित की। शाही मतालबे के जो कई लाख रुपये बाकी थे, वे जमा किये। साम्पत्तिक संकट होते हुये भी उन्होंने पद्मनाभ गुजराती का अत्यन्त पुराना ऋण चुकाया और मन्दिरों को तथा ब्राह्मणों को कितने ही गाँव जागीर में दिये[1]। किशोरसिंहजी ने कितनी ही नई इमारतें, तालाब, घाट और कुण्ड तथा बावड़ियाँ बनवाईं। सम्वत् १७५० में कोटे के बाहर किशोरसागर नामक तालाब की पाल की मरम्मत करवाई गई और किशोरविलास बाग लगवाया। इसी समय राजघाट का निर्माण हुआ और महलों की तथा रंगबाड़ी के कोट की मरम्मत करवाई गई। किशोरपुरा मोहल्ला भी इन्हीं के समय में बसा और किशोरपुरे के पुल की मरम्मत भी इसी समय हुई। इन्होंने भीलवाड़ी दरवाजे का नाम किशोरपुरा दरवाजा रक्खा। इन्होंने मुकन्दरे से छः मील के फासले पर किशोरगंज नामक एक कस्बा बसाया और उसके पास एक बड़ा तालाब बँधवाया तथा महल और किले का निर्माण करवाया[2]।

**वेतन और बेगार**—किशोरसिंहजी के शासन काल में बहुत से काम बेगार में करवाये जाते थे। बेगार करने वालों को अपनी पेटपूर्ति के लिये नाममात्र के कुछ पैसे देदिये जाते थे। सम्वत् १७५०

(१) बस्ता सम्वत् १७४६।

(२) i कागजात सम्वत् १७४९।
ii ठाकुर लक्ष्मणदान।

में आषाढ़ के महीने में कवेलू बनवाने के लिये कोटे के कितने ही गाँवों से बेगार में कुम्हार बुलाये गये थे जिनको फी आदमी पाँच पैसे प्रति दिन दिये गये थे। प्रत्यक्ष में पाँच पैसे प्रति दिन नाममात्र की मजदूरी है, परन्तु इस सम्बन्ध में यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि उस समय गेहूँ का भाव ८) रुपये माणी था[1]। परगने के अहलकारों का वेतन भी ७५) रुपये वार्षिक से अधिक नहीं होता था। सम्वत् १७४६ में समस्त कायस्थ अहलकारों को २८६४) रुपये वेतन के दिये गये थे। किसी अहलकार को ७६) रुपये वार्षिक से अधिक वेतन नहीं मिला था।

**मुकाता**—किशोरसिंहजी जागीरदारों की बड़ी निगरानी रखते थे। जिन जागीरदारों की शिकायत होती थी, उनके गाँव राज्य में मुकाते पर लेलिये जाते थे। इस प्रबन्ध के अनुकूल माल हासिल राज द्वारा वसूल करके जागीरदार को देदिया जाता था और जागीरदार का अपने गाँव के लोगों के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहता था। खालसे के गाँव भी मुकाते पर दिये जाने की प्रथा थी। यह एक प्रकार की जमींदारी थी, परन्तु मुकाते की अवधि दो तीन साल से अधिक नहीं होती थी। मुकातेदार राज्य में नियत धन जमा करता था। इससे अधिक जो वह गाँवों से वसूल कर सकता था, वह उसका लाभ था। ऐसा अनुमान होता है कि नियत भूमिकर से अधिक वसूल करने के विषय में मुकातेदार पर राज्य की ओर से कुछ प्रतिबन्ध होते होंगे और मुकातेदार मन चाहे जितना रुपया कृषकों से वसूल नहीं कर सकता होगा, परन्तु इस बात का पता नहीं चलता कि ये प्रतिबन्ध क्या थे? जिस वर्ष दुर्भिक्ष होता था या अन्न अत्यधिक सस्ता होजाता था तो मुकातेदार को छूट दी जाया करती थी। इससे यह भी स्पष्ट

---

(१) कागजात सम्वत् १७४५ और १७५०, सीगा मुतफर्रिकात।

ही है कि मुकातेदार भी किसानों को छूट दिया करता होगा और खालसे के गाँवों में भी ऐसी हालत में छूट दी जाया करती होगी[1]।

**मुसलमानों से पुनर्विवाह कर**—नाता या पुनर्विवाह करने पर १) रुपये से २५) रुपयों तक आदमी की आर्थिक स्थिति के अनुकूल कर लिया जाता था। इस कर का नाम 'छाली', 'छूयाली' या 'छोली' था। जब पुनर्विवाहिता को चूड़ियाँ पहनाई जाती थीं तो उस अवसर पर भी १) रुपया राज में जमा करवाया जाता था। उस समय पुनर्विवाह हिन्दुओं की द्विजेतर जातियों में तथा मुसलमानों में ही प्रचलित था। इस कर की वसूली में मुसलमानों को नहीं छोड़ा जाता था[2]। इस विषय में यह स्मरण रखने योग्य बात है कि उस समय भारतवर्ष में औरंगजेब का शासन था।

**चाँदखेड़ी का जैन मन्दिर**—सम्वत् १७४६ में एक सम्पन्न बघेरवाल जैन व्यापारी ने खानपुर के पास चाँदखेड़ी गाँव में महावीर स्वामी का मन्दिर बनवाना आरम्भ किया। उस समय औरंगजेब ने अपने राज्य में मन्दिर बनवाने की मनाई कर रक्खी थी। सैकड़ों भव्य मन्दिरों को उसने ध्वंस करवा दिया था और जिन लोगों ने नये मन्दिर बनवाने का प्रयास किया, उनके साथ घोर अत्याचार किये जाते थे। चाँदखेड़ी में मन्दिर बनने की खबर औरंगजेब जैसे सतर्क बादशाह से कैसे छिपी रह सकती थी? परन्तु इस समय औरंगजेब दक्षिण के युद्ध में व्यस्त था और राजपूतों के साथ कुछ वर्ष पहिले ही लड़ाई होचुकी थी। इसके अतिरिक्त इस समय किशोर सिंहजी तन मन से उसकी सेवा कर रहे थे। इसलिये उसने चाँदखेड़ी

(१) कागजात सम्वत् १७४७।

(२) कागजात सम्वत् १७४८।

के मन्दिर को बनते बनते नहीं तुड़वाया। फिर भी अजमेर का सूबेदार बार बार कोटे अहदियों को भेजा करता था और ताकीद किया करता था कि मन्दिर का बनना बन्द करवाया जावे। उस समय औरंगजेब सुदूर दक्षिण में था और अजमेर के सूबेदार को येन केन प्रकारेण सन्तुष्ट रखना असम्भव बात नहीं थी। फिर भी जैन व्यापारी को यह भय था कि किसी दिन कहीं मन्दिर तुड़वा दिया जावे। इसलिये यह मन्दिर विचित्र प्रकार का बनाया गया था। असली मन्दिर जमीन के अन्दर है जिसमें प्रवेश करने के लिये एक तंग मार्ग है तथा पवन और प्रकाश के लिये कुछ भी प्रबन्ध नहीं है। इस गुप्त मन्दिर में महावीर स्वामी की तथा कुछ अन्य तीर्थंकरों की प्रतिमायें बघेरवाल सेठ द्वारा विधिवत् प्रतिष्ठित की हुई हैं। इस मन्दिर के ऊपर एक दूसरा मन्दिर है, जिसमें एक प्रतिमा रखी हुई है, परन्तु इसमें प्राणप्रतिष्ठा नहीं की गई है और प्रत्यक्ष में ऐसा प्रतीत होता है कि यही मन्दिर है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। उद्देश्य यह था कि यदि मुसलमान आक्रमण भी करें तो भुलावे में पड़ कर ऊपर की प्रतिमा को या मन्दिर के भाग को तोड़कर चले जावें और नीचे का मन्दिर ज्यों का त्यों सुरक्षित रह जावे। इसी प्रकार के मन्दिर औरंगजेब के काल में दक्षिण में कई स्थानों पर बनाये गये थे[१]।

---

(१) कागजात सम्वत् १७४६।
चाँदखेड़ी का शिलालेख।

---

# राव रामसिंहजी

( सन् १६९६–१७०७ ईस्वी )

**युद्ध का अनुभव**—अरनी के युद्ध में रामसिंहजी किशोर सिंहजी के साथ थे। किशोरसिंहजी का देहान्त होजाने पर भी वे कुछ अर्से तक अरनी के किले में ही रहे थे। ऐसा जान पड़ता है कि जुल्फिकारखाँ ने अरनी का किला जीत कर रामसिंहजी के सुपुर्द कर दिया था। वहीं पर लड़ते हुये किशोरसिंहजी का देहान्त हुआ था[1]। अतः अपने पिता की वीरता के फलस्वरूप रामसिंहजी को किलेदारी मिलना स्वाभाविक बात थी। किशोरसिंहजी का देहान्त अप्रैल सन् १६९६ में हुआ था, और अगस्त सन् १६९७ में रामसिंहजी जुल्फिकारखाँ के साथ जिंजी के घेरे में व्यस्त थे[2]। इस बीच में वे राज तिलक के लिये कोटे भी आये थे[3]। अतः अरनी में वे अप्रैल सन् १६९६ में रहे होंगे। अपने पिता के साथ वे बीजापुर, बसन्तगढ़, रामगढ़, भावनगर, अडोनी, पनाला, बन्देवाश, चंगमन, अरनी आदि के युद्धों में शामिल हुये थे और धनाजी जादव तथा सन्ताजी घोरपरे की युद्धविधि को देखने का उनको कुँवरपदवी में ही अवसर मिल चुका था[4]। राज्याभिषेक के समय रामसिंहजी को युद्ध का काफी

(१) नुस्खए दिलकश ( जादूनाथ सरकार, जिल्द ५, पृष्ठ १०४। )

(२) नुस्खए दिलकश मद्रास डायरी २६ अक्टूबर १६९७।
सरकार, जिल्द ५, पृष्ठ १०४–०५।

(३) कागजात सम्वत् १७५२ बैशाख, सीगा मुतफर्रिकात।

(४) सरकार, जिल्द ५, पृष्ठ १००–०४।
कागजात सम्वत् १७४७।
मुंशी मूलचन्द, पृष्ठ १२३।

अनुभव हो चुका था। अडोनी और पनाला से रामसिंहजी ने कोटा नरेश की हैसियत से कई पट्टे परवाने और ताम्रपत्र जारी किये थे। अडोनी[1] पर मुगलों का अधिकार सन् १६८७ में और पनाला[2] पर १६८९ में हुआ था। उस समय रामसिंहजी कुँवरपदवी में ही थे, परन्तु किशोरसिंहजी उनको अपने साथ युवराज बना कर लेगये थे। बिशनसिंहजी का भय उनको अवश्य होगा ही। अतः रामसिंहजी का भविष्य निश्चित करने के लिये किशोरसिंहजी ने उनको हुक्म अहकाम जारी करने का अधिकार प्रदान कर दिया होगा। यही कारण है कि मुंशी मूलचन्द को अडोनी और पनाला से रामसिंहजी की ओर से जारी किये हुये इस समय के कई पट्टे परवाने मिले थे। बीजापुर की विजय के बाद रामसिंहजी १,००० के मन्सबदार भी बन गये थे[3]।

**स्वदेश को वापिसी और राज्य के लिये युद्ध**—किशोर सिंहजी के देहान्त की खबर सुनते ही बिशनसिंहजी कोटे की गद्दी पर बैठ गये। जब रामसिंहजी को यह पता लगा तो उन्होंने कोटे जाकर अपने भाई बिशनसिंहजी की नजर करने की तथा अपने पिता की मृत्यु पर शोक मनाने की बादशाह से आज्ञा माँगी[4]।

औरंगजेब शायद बिशनसिंहजी से परिचित नहीं था। वह यह भी सुन चुका होगा कि उन्होंने अपने पिता के साथ युद्ध में सम्मिलित होने से इनकार किया था। उधर रामसिंहजी की वीरता, राजभक्ति और पितृपरायणता आदि दिव्य गुणों का उसको परिचय मिल चुका था। अतः रामसिंहजी को तीन हजारी मन्सबदार तथा ३,००० सवारों

(१) मआसिरे आलमगीरी, पृष्ठ ३०८।
(२) सरकार, जिल्द ५, पृष्ठ ३२।
(३) कागजात सम्वत् १७४७।
(४) ठाकुर लक्ष्मणदान।



राव रामसिंहजी

(१७५२–१७६४ वि०)

का अफसर बनाकर और मातमी खिलत देकर उन्हें अपने भाई को गद्दी से उतार देने का अधिकार देदिया। रामसिंहजी ने अपनी सेना के साथ दक्षिण से स्वदेश की ओर कूँच किया[1]। बिशनसिंहजी को पहिले ही सन्देह था कि रामसिंहजी आसानी से उनकी अधीनता स्वीकार नहीं करेंगे और बलप्रयोग द्वारा कोटे की गद्दी छीनने का प्रयत्न करेंगे। इसलिये बिशनसिंहजी ने अपने भाई हरनाथसिंहजी के साथ आवाँ के निकट रणांगण में अपने भाई रामसिंहजी का स्वागत किया। दोनों भाई राज्याभिलाषा से उन्मत्त होकर एक दूसरे के घातक बन गये और युद्ध करने लगे। हरनाथसिंहजी युद्ध क्षेत्र में धराशायी हुये और बिशनसिंहजी अनेक घावों से क्षत विक्षत होकर मूर्च्छित होगये। उनके अनुयायी इसी अवस्था में इनको पालकी में रख कर खेत छोड़ भागे। घाटोली गाँव के पास चेत आने पर उनको अपने पराजय तथा हरनाथसिंहजी की मृत्यु का पता लगा। बिशनसिंहजी को रणक्षेत्र छुड़वानें पर बड़ा सन्ताप हुआ और वे अपनी ससुराल पाँडेर[2] चले गये। यह गाँव उस समय राणावतों की जागीर में था। तीन वर्ष पश्चात् शोकसन्तप्त और प्रक्षुब्ध होकर बिशनसिंहजी इस संसार से चलबसे और उनकी पतिपरायणा पत्नी ने उनका सहगमन किया। पाँडेर में बिशनसिंहजी की छतरी अब तक बतलाई जाती है। बिशनसिंहजी के पृथ्वीसिंहजी नामक एक पुत्र थे, जिनको गद्दी पर बैठने के कुछ वर्ष बाद रामसिंहजी नें कोटे बुलवाया और उनको अन्ते की जागीर प्रदान की। हरनाथसिंहजी के पुत्र कुशलसिंहजी को साँगोद की जागीर मिली[3]।

---

(१) मुंशी मूलचन्द, पृष्ठ १२२।

(२) जहाजपुर के पास।

(३) ठाकुर लक्ष्मणदान।

**पुनः दक्षिण को प्रस्थान**—अनुमानतः रामसिंहजी और बिशनसिंहजी का युद्ध अप्रैल सन् १६९६ में हुआ होगा[१], क्योंकि राजतिलक करवाकर उसी वर्ष रामसिंहजी फिर दक्षिण के लिये रवाना होगये थे। वापिस जाते हुये अमझार में उन्होंने मुकाम किया था और आस पास के महाजनों ने वहाँ आकर उनकी नजर की थी। कुँवर भीमसिंहजी भी इस समय रामसिंहजी के साथ थे[२]।

**पुनः अरनी में**—अपने देश से रवाना होकर रामसिंहजी पुनः करनाटक प्रान्तान्तर्गत अरनी के किले में जा पहुँचे। इस समय जुल्फिकारखाँ धन और जन के अभाव से अरकट के किले में दिन बिता रहा था। सम्भवतः रामसिंहजी को फिर भी उसने अरनी का किलेदार बना दिया होगा। मुंशी मूलचंद को जो कई पट्टे परवाने और ताम्रपत्र अरनी के किले से जारी किये हुये मिले थे, वे इसी समय के अर्थात् अप्रैल सन् १६९६ से दिसम्बर सन् १६९६ तक के होंगे। इस अर्से में जुल्फिकारखाँ ने सन्ताजी घोरपरे का बहुत दूर तक पीछा किया था, परन्तु मुगल सेना और मराठों का सामना कहीं नहीं हुआ। सम्भव है रामसिंहजी भी जुल्फिकारखाँ के साथ गये हों, परन्तु अधिकांश वे अरनी में ही रहते थे[3]।

**मुगल और मराठों की स्थिति**—सन् १६९७ में मुगलों और मराठों दोनों की स्थिति शोचनीय थी। जुल्फिकारखाँ ने तन्जौर और दूसरे नगरों से धन एकत्र करके कुछ दिन अपना काम चलाया, परन्तु उसकी स्थिति फिर भी नाजुक ही होती गई। इसी अर्से में उस

(१) सर जे. एन. सरकार, जिल्द ५, पृष्ठ १०४–०५।

(२) कागजात सम्वत् १७५२।

(३) सर जे. एन. सरकार: जिल्द ५, पृष्ठ १०४।

के सौभाग्य से धनाजी जादव और सन्ताजी घोरपरे में परस्पर संघर्ष शुरू होगया, क्योंकि दोनों ही प्रधान सेनापति होना चाहते थे। राजाराम ने धनाजी का साथ दिया, परन्तु फिर भी धनाजी हार गया और महाराष्ट्र को भाग गया। इससे राजाराम की स्थिति और भी चिन्ताजनक होगई। वह इस समय जिंजी के किले में रहता था। अवसर पाकर इधर उधर लूट मार करके कुछ रुपये इकट्ठा कर लेता था और उससे गुजर करता था, परन्तु धनाभाव के कारण उसका सैन्यबल उत्तरोत्तर क्षीण होता जाता था और जुल्फिकारखाँ की भाँति वह भी बड़ी विपत्ति में फँसा हुआ था [१]।

**राजाराम और रामसिंहजी**—अरकट में जुल्फिकारखाँ ने अपना केम्प राजाराम का दमन करने के लिये डाल रक्खा था। कुछ धनाभाव के कारण और कुछ औरंगजेब की शारीरिक क्षीणता के कारण जुल्फिकारखाँ के प्रयत्नों में कुछ शिथिलता अवश्य आगई थी, परन्तु फिर भी औरंगजेब के पक्ष को त्यागने का वह निश्चय नहीं कर चुका था। इस स्थिति से राजाराम भी परिचित था। वह रामसिंहजी से कई बार मिल चुका था। रामसिंहजी मुगल सेना में उसके विरुद्ध लड़ते थे और उसको यह भी पता था कि जब वे लड़ते थे तो दिल से लड़ते थे। तो भी राजाराम रामसिंहजी पर विश्वास करता था। जब राजाराम ने देखा कि उसकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक होगई है तो उस ने औरंगजेब से सुलह करने का विचार किया।

**रामसिंहजी के द्वारा सुलह का प्रस्ताव**—अगस्त सन् १६९७ में राजाराम ने अपने पुत्र कर्ण को रामसिंहजी के पास भेजा

(१) नुस्खए दिलकशा, (सरकार: जिल्द ५ पृष्ट १०५ पर उद्धृत)।

और सुल्ह की शर्तें पेश कीं। रामसिंहजी स्वयम् या जुल्फिकारखाँ इन शर्तों पर विचार नहीं कर सकते थे। अतः ये शर्तें औरंगजेब के सामने पेश की गईं। वह मराठों से किसी प्रकार की सुल्ह नहीं करना चाहता था और उनके सर्वनाश पर तुला हुआ था। मानो उसके भाग्य में मृत्यु के पूर्व शान्ति का एक क्षण भी नहीं बदा था। उसने जुल्फिकारखाँ को हुक्म दिया कि जिंजी को फौरन् छीन लिया जावे और राजाराम को कैद किया जावे। यह हुक्म मिलने पर रामसिंहजी ने अक्टूबर सन् १६९७ में कर्ण को वापिस अपने पिता के पास सकुशल भेजदिया और जुल्फिकारखाँ ने नवम्बर मास में बड़ी तैयारी और सरगर्मी के साथ जिंजी के घेरा डाला [1]।

**रामसिंहजी जिंजी के घेरे में**—जुल्फिकारखाँ ने अपनी सेना के तीन भाग करके जिंजी के किले को तीन तरफ से घेरा। उत्तरी दरवाजे के सामने सिंहवर्म्मन पहाड़ी के पास उसने अपना सेना भाग स्थित किया। किले के पश्चिम की ओर "शैतान दरी" नामक दरवाजे के ठीक सम्मुख रामसिंहजी ने अपनी सेना जमाई। सेना के तीसरे भाग ने दाऊदखाँ के नेतृत्व में दक्षिण की ओर जिंजी से एक मील की दूरी पर चिक्कली दुर्ग के सामने अपने खेमे डाले। दाऊदखाँ ने एक ही दिन में हमला करके चिक्कली दुर्ग पर अधिकार स्थापित कर लिया, परन्तु जुल्फिकारखाँ अपने प्रयत्नों में शिथिल ही बना रहा। यदि वह चाहता तो उसी दिन जिंजी पर कब्जा कर सकता था, परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। वह चाहता था कि घेरा केवल जारी रहे, उसको भारी तनख्वाह मिलती रहे और औरंगजेब को यह पता चलता

(१) नुस्खए दिलकश और मदरास डायरी २६ अक्टूबर, सरकार की जिल्द ५, पृष्ठ १०५ पर उद्धृत।

रहे कि लड़ाई होरही है। इसलिये दो महीने तक घेरा चलता रहा।

**जिंजी दुर्ग का वर्णन**—जिंजी का विशाल दुर्ग उस विस्तृत मैदान में स्थित है जो पूर्वी घाट और समुद्र तट के बीच में फैला हुआ है। इसके उत्तर में अरकट और दक्षिण में त्रिचनापली है। जिंजी का दुर्ग वास्तव में दुग समूह है। तीन ऊँची पहाड़ियों पर तीन दृढ़ दुर्ग बने हुये हैं जो सुदृढ़ दीवारों के द्वारा एक दूसरे से मिल कर लगभग तीन मील के घेरे का त्रिकोण बनाते हैं। तीनों पहाड़ियाँ दीवारों की भाँति बहुत ऊँची हैं। हर एक पहाड़ी कई परकोटों से घिरी हुई है तथा हर एक परकोटे में कितनी ही बुर्जें हैं और अगणित रन्ध्र हैं जिन में उस समय कितनी ही तोपें और जमूरे रक्खे हुये थे। प्रधान कोट जो एक किले को दूसरे से जोड़ता है, साठ फुट ऊँचा है। प्रत्येक किले के ऊपरी भाग पर पहुँचने के लिये तंग और सीधी सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इन तीनों किलों में सबसे अधिक ऊँचा और दृढ़ राजगढ़ दुर्ग है, जो मैदान से आठ सौ फुट ऊँचा है जिसमें चार सौ फुट का भाग लगभग दीवार की भाँति सीधा है। इसके ऊपर पहुँचने के लिये एक अत्यन्त दुर्गम तथा तंग रास्ता है जो ऊपर जाकर बन्द हो जाता है। यहाँ पर लगभग पचास फुट गहरा और चौबीस फुट चौड़ा 'खोह' है जिसे पार करने पर किले के सर्वोच्च भाग में पहुँचा जा सकता है। इस खोह पर उस समय एक लकड़ी का साधारण पुल बना हुआ था। पुल के दूसरे सिरे पर फिर एक दरवाजा है जहाँ पर यदि दस सैनिक खड़े होजायँ तो दस हजार सैनिकों का सामना कर सकते हैं[1]। उत्तर की पहाड़ी का नाम कृष्णागिरि है और दक्षिण का चन्द्रायण दुर्ग। ये

(१) साउथ आरकोट डिस्ट्रिक्ट गजट १, पृष्ठ ३४७–४८ और मेन्यूएल, पृष्ट ४१३।

दोनों पहाड़ियाँ साधारण ऊँची हैं। राजगढ़ से लगभग एक मील दक्षिण में चिक्ली दुर्ग है जिसका नाम भीमसेन कायस्थ ने 'चमार टेकरी' लिखा है।

**रामसिंहजी का अद्‌भुत साहस**—जब औरंगजेब को यह पता लगा कि जुल्फिकारखाँ युद्धसंचालन में शिथिलता कर रहा है तो उसने उसके नाम सख्त हिदायत भेजी जिससे जुल्फिकारखाँ के लिये जिंजी को जीतना अनिवार्य होगया। उसने राजाराम को अपने इरादे से यथा समय सूचित कर दिया। इसलिये वह अपने प्रधान अफसरों के साथ बैलोर चला गया, परन्तु अपने परिवार को किले में छोड़ गया। तब जुल्फिकारखाँ ने किले पर आक्रमण किया। एक तरफ से दाऊदखाँ ने और दूसरी ओर से दलपतराय बुन्देला ने हमला करके किले में प्रवेश किया। राजाराम की बहुतसी सम्पत्ति जुल्फिकारखाँ के हाथ पड़ी, परन्तु राजाराम के परिवार ने कुछ वीर मराठा सैनिकों के साथ राजगढ़ के दुर्जेय किले में आश्रय लेलिया जिससे आक्रमण की गति एक दम रुक गई। जुल्फिकारखाँ और दाउदखाँ दोनों सोचने लगे कि भयंकर खोह को पार करके राजगढ़ के उस दुर्भेद्य दरवाजे में कैसे प्रवेश किया जावे जहाँ दस सैनिक दस हजार सैनिकों का सामना कर सकते थे। इस विकट स्थिति में दोनों मुसलमान सेनानायकों की दृष्टि रामसिंहजी पर पड़ी, क्योंकि वे जानते थे कि समरभूमि में राजपूत मृत्यु का आलिंगन करने के लिये सहर्ष तैयार रहते हैं। उधर रामसिंह जी भी अपने वीर पुरुषाओं की वीरता का स्मरण करते हुये रणोन्मत्त होकर मुसलमान सेनानायकों को रोमाञ्चकारी साहस का परिचय देने के लिये अधीर होरहे थे। ज्योंही उन्होंने देखा कि जुल्फिकारखाँ और दाऊदखाँ दोनों कुछ हिचक रहे हैं, त्योंही उन्होंने अपने वीर हाड़ा

सैनिकों के साथ जान हथेली पर रखकर वह लकड़ी का पुल पार किया और उस दुर्भेद्य द्वार में प्रवेश किया[1]। यह घटना २ जनवरी सन् १६९८ की है जिस दिन संक्रान्ति थी।

**राजाराम के परिवार की रक्षा**—जब राजपूत सैनिकों ने राजगढ़ दुर्ग में प्रवेश किया तो राजाराम के परिवार में हाहाकार मच गया और उसकी राणियों ने रामसिंहजी से रक्षा के निमित्त प्रार्थना की। रामसिंहजी ने सब के लिये पालकियों का प्रबन्ध किया और राजाराम की चार पत्नियाँ, दो पुत्रियाँ, और तीन पुत्र उनमें बिठा कर किले से निकाले गये तथा सम्मान के साथ शाही केम्प में ठहराये गये। किले में लगभग चार हजार पुरुष, स्त्री और बच्चे मिले। राजाराम की एक रानी ने इस प्रकार आत्मसमर्पण करना आत्मसम्मान के प्रतिकूल समझा और किले से गिर कर प्राण त्याग दिये।

इसके बाद भी रामसिंहजी औरंगजेब के देहावसान तक दक्षिण में लड़ते रहे और समय समय पर औरंगजेब से सम्मान प्राप्त करते रहे। बीजापुर, रामगढ़, बसन्तगढ़ आदि की विजय के समय रामसिंहजी का आजम से और करनाटक के युद्ध में बेदारबख्त से प्रायः मिलना जुलना हुआ करता था, इस कारण आजम रामसिंहजी के वीरता आदि गुणों पर मुग्ध था।

**औरंगजेब की बीमारी**—सम्वत् १७६३ की शरद् ऋतु के अन्त में औरंगजेब अहमदनगर में बीमार हुआ और उसको अपनी मृत्यु अत्यन्त निकट प्रतीत होने लगी। औरंगजेब के पाँच पुत्र थे। मुहम्मद सुलतान, मुहम्मद मुअज्जम, मुहम्मद आजम, मुहम्मद कामबख्श और मुहम्मद अकबर। इनमें से मुहम्मद सुलतान कैद कर लिया गया

(१) नुस्खए दिलकश सरकार की जिल्द ५, पृष्ठ १०७–०८ पर उद्धृत।

था और मुहम्मद अकबर मारवाड़ में बगावत करने के बाद कुछ दिन सम्भाजी के पास रहकर अपने बाप के भय से ईरान भाग गया था। औरंगजेब की बीमारी के समय इन दोनों शाहजादों का देहान्त हो चुका था। जब औरंगजेब घातक रोग से आक्रान्त हुआ तो उसकी सेना का पड़ाव औरंगाबाद में था। आजम और कामबख्श उसके साथ थे और मुअज्जम पंजाब में था। अपने पिता की दशा देखकर आजम और कामबख्श दोनों राज्य प्राप्ति के लिये आतुर हो उठे। जब इस बात का पता औरंगजेब को लगा तो इस विषम स्थिति का निवारण करने के लिये मृत्यु शय्या पर पड़े हुये भी उसने एक गहरी चाल सोची। कामबख्श को यह आज्ञा दीगई कि बीजापुर जाकर दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित करे और वहाँ अपना शासन जारी करे। मुहम्मद आजम को यह आदेश हुआ कि वह मालवे की ओर रवाना हो। ये शाहजादे थोड़ी ही दूर जा पाये थे कि औरंगजेब की अहमदनगर में ३ मार्च सन् १७०७ को मृत्यु होगई [१]।

**औरंगजेब की वसीयत**—मरने से पहले औरंगजेब ने शायद अपने तीन पुत्रों में राज्य विभक्त कर दिया था। कामबख्श को बीजापुर और हैदराबाद के दो सूबे दिये गये थे, आजमशाह को छः तथा मुअज्जम को बारह सूबे। इस वसीयत को सब जाली मानते थे। मुअज्जम ने अपने भाइयों से इसका पालन करने के लिये बहुत आग्रह किया था, परन्तु आजम ने इस वसीयत को प्रामाणिक नहीं माना और इसकी कोई परवाह नहीं की। यदि यह वसीयत असली होती तो भी आजम और मुअज्जम इसको नहीं मानते। इन दोनों भाइयों में राज्य-

---

(१) i खाफीखाँ जिल्द २ पृष्ठ ५४७।
ii मआसिरे आलमगीरी, पृष्ठ ५२०।

वैभव प्राप्ति के लिये इतनी प्रबल अभिलाषा जग उठी थी कि अब रक्तपात का रुकना असम्भव था।

**युद्ध की तैयारियाँ**—औरंगजेब की मृत्यु के दूसरे दिन आजम अहमदनगर आया और अपने पिता का शव दफनाने के लिये दौलताबाद रवाना किया और दश दिन बाद अर्थात् १४ मार्च सन् १७०७ को वह विधिपूर्वक अहमदनगर में ही गद्दी पर बैठा। इसके बाद १७ मार्च को वह शाही तख्त प्राप्त करने के लिये दिल्ली की ओर रवाना हुआ और २ अप्रैल को औरंगाबाद पहुँचा[1]। औरंगजेब की मृत्यु के समय मुहम्मद मुअज्जम पेशावर से बारह मील के फासले पर जमरूद में था। जमरूद और अहमदनगर में चौदह सौ मील का फासला है, अतः यह प्रत्यक्ष था कि दोनों भाइयों में से जो पहिले दिल्ली या आगरा पहुँच कर शाही खजाने पर अधिकार कर लेगा उसके हाथ में बहुत बड़ी शक्ति आजायगी। अतः ३१ मार्च को मुअज्जम पेशावर आया और युद्ध की तैयारी करने लगा। ३ मई को उसने लाहोर में प्रवेश किया[2] और पहली जून को वह दिल्ली में दाखिल हुआ। यहाँ पर विपुल सम्पत्ति उसके हाथ लगी। फिर १२ जून को वह आगरे के पास पहुँच गया। इस समय आजम ग्वालियर तक आगया था। आगरे में भी मुअज्जम को कितने ही करोड़ों की सम्पत्ति मिली[3]।

**रामसिंहजी की आजम से भेंट**—इस समय रामसिंहजी जुल्फिकारखाँ के साथ करनाटक के युद्ध में थे और वहाँ पर वे कई बार

(१) इरवनः लेटर मुगल्स, जिल्द १ पृष्ठ ११।

(२) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ २९४६।

(३) इरवनः लेटर मुगल्स, जिल्द १ पृष्ठ ११-१२ व १८-२१।

अपनी अद्भुत वीरता का परिचय दे चुके थे। जिंजी के किले को जीतने के पुरस्कार में जुल्फिकारखाँ को 'नसरतजंग' की उपाधि मिल चुकी थी और रामसिंहजी को भी कुछ परगने और सम्मान प्राप्त हुआ था। औरंगजेब की मृत्यु का और आजम की तैयारियों का समाचार मिलते ही जुल्फिकारखाँ रामसिंहजी और दलपत बुन्देला के साथ रवाना हुआ और २ अप्रैल को औरंगाबाद में आजम से जा मिला। यहाँ पर रामसिंहजी की आजम से भेंट हुई।

**रामसिंहजी ने आजम का पक्ष ग्रहण किया**—रामसिंहजी औरंगजेब के कृपा पात्र थे। अपने पिता की वसीयत के अनुकूल परन्तु बादशाह की हिदायत से अपने बड़े भाई बिशनसिंहजी को रणक्षेत्र में हरा कर उन्होंने कोटा का राज्य प्राप्त किया था। बसन्तगढ़, भावनगर, बीजापुर, अडोनी, पनाला, आदि स्थानों पर वे कुँवर पदवी में ही लड़ चुके थे और फिर जुल्फिकारखाँ के साथ जिंजी के किले पर आक्रमण करते हुये उन्होंने अप्रतिम साहस दिखाया था। इसलिये औरंगजेब को उन पर बड़ा विश्वास था और सतत सम्पर्क तथा अनेक वीरोचित गुणों के कारण आजम रामसिंहजी से गहरा प्रेम करता था। जब आजम ने रामसिंहजी से अपना पक्ष ग्रहण करने के लिये कहा तो उन्होंने देखा कि उस समय आजम वैसी ही स्थिति में था जैसी स्थिति में ११ वर्ष पूर्व स्वयम् वे थे। जिस समय किशोरसिंहजी का देहान्त हुआ तो बिशनसिंहजी तत्काल गद्दी पर बैठ चुके थे और रामसिंहजी सुदूर दक्षिण में थे। गद्दी पर बैठने के लिये उनको पिता की आज्ञा अवश्य मिल चुकी थी, परन्तु औरंगजेब की सहायता के बिना वे राज्य प्राप्त नहीं कर सकते थे। अब इस समय औरंगजेब की मृत्यु हो चुकी थी। उसका ज्येष्ठ पुत्र मुअज्जम दिल्ली और आगरे के शाही खजानों पर अधिकार

प्राप्त कर चुका था और उसने अपने आपको सम्राट् घोषित कर दिया था। आजम ने भी अहमदनगर में शाही चिन्ह धारण कर लिये थे, परन्तु उसके पास धन और जन दोनों की कमी थी। स्वयम् जुल्फिकार खाँ के दिल में भी लड़ने की उमंग नहीं थी और वह वापिस दक्षिण को लौट जाना चाहता था, और चिनकुलीचखाँ बहाना बना कर उसका साथ छोड़ गया था[1]। इस समय रामसिंहजी ने अवश्य सोचा होगा कि स्वयम् उनको कोटे की गद्दी किस प्रकार मिली थी, अतः परिस्थिति को प्रतिकूल जानते हुये भी उन्होंने आजम का साथ देना अपना धर्म समझा।

**बुद्धसिंहजी मुअज्जम के साथ हुये**—बूँदी नरेश राव बुद्ध सिंहजी कुछ वर्ष पूर्व औरंगजेब से असन्तुष्ट होकर मुअज्जम से काबुल में जा मिले थे। मुअज्जम ने इनको समय पड़ने पर उपयोगी जान कर शरण दी थी। औरंगजेब की मृत्यु पर मुअज्जम ने इनको और अधिक आश्वासन दिया और वचन दिया कि विजय प्राप्ति पर उनको खूब सन्तुष्ट तथा पुरस्कृत किया जावेगा। इनकी तथा विजयसिंह कछवाहा की सहायता से कितने ही हजार राजपूत सैनिकों ने मुअज्जम का पक्ष ग्रहण किया[2]।

**संघर्ष से पूर्व**—औरंगाबाद से रवाना होकर २५ अप्रैल १७०७ को आजमशाह बुरहानपुर पहुँचा। बुरहानपुर से आगे बढ़ने

---

(१) इरविन: लेटर मुगल्स, जिल्द १, पृष्ठ १२।

(२) i खाफीखाँ, ५७३।

ii इरादतखाँ, 'तजकिरा'।

iii मुहम्मद कासिमः इबरतनामा।

iv वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ २९५५।

पर उसको घोर कठिनाई का सामना करना पड़ा। भयंकर गर्मी और पानी के अभाव से उसके लश्कर में अनेक गरीब स्त्री पुरुष मर गये और अन्न के बिना सैनिक मरने लगे। मुहम्मद अमीनखाँ नामक एक बहुत बड़े सेना नायक ने उसका साथ छोड़ दिया। ऐसी अनेक विपत्तियाँ झेलता हुआ आजमशाह १४ मई को सीरोंज पहुँचा। यहाँ पर उसको सूचना मिली कि मुअज्जम लाहोर तक आगया है। सीरोंज से जुल्फिकारखाँ और राव रामसिंहजी के नेतृत्त्व में ४५,००० सेना चम्बल की थागों पर कब्जा करने के लिये भेजी गई। इन दोनों सरदारों ने आजमशाह के पुत्र बेदारबख्त का भी स्वागत किया जो अहमदाबाद से रवाना होकर ग्वालियर की तरफ बढ़ रहा था। आजम को बेदारबख्त की पितृभक्ति पर कुछ सन्देह था। इसलिये उसको हुक्म दिया था कि वह सेना के सहित नहीं बल्कि अकेला ही आकर मिले। फिर भी वह अपने साथ कुछ सेना लाया था और आमेर के राजा जयसिंहजी उसके साथ थे[१]। जब जुल्फिकारखाँ और रामसिंहजी बेदारबख्त से जाकर मिले तो उसको पता चला कि मुअज्जम के द्वितीय पुत्र मुहम्मद अजीम ने आगरे पर कब्जा कर लिया है और चम्बल की थागों को रोकने के लिये वह बढ़ता हुआ आरहा है। जब बेदारबख्त, जुल्फिकारखाँ और रामसिंहजी नूराबाद[२] में थे तो मुहम्मद अजीम के सेना नायक

(१) i कामराज: इबरतनामा।
ii कामबारखाँ: तजकिरात उस्सलातीन-ए-चगतैया।
iii खुशालचन्द: नासिरुज्जमानी।
iv वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ट २९६५।

(२) नूराबाद ग्वालियर से १६ मील उत्तर में और चम्बल नदी से २० मील दक्षिण में है। (इन्डियन एटलस शीट नं० ५१, उत्तर-पूर्व)

मोहतशमखाँ ने चम्बल नदी के उत्तरी किनारे पर पहुँच कर थागों के मौके पर तोपें जमा दी थीं और लड़ने को तैयार था। जुल्फिकारखाँ नहीं चाहता था कि मोहतशमखाँ का मुकाबिला किया जावे, परन्तु बेदार-बख्त ने आक्रमण करने का पूरा निश्चय कर लिया था। अन्त में बेदारबख्त ने एक ऐसी थाग से होकर चम्बल पार करली जिसका मोहतशमखाँ को पता भी नहीं था। यह देखते ही मोहतशमखाँ अपना तोपखाना छोड़कर भाग गया। उधर से मुअज्जम लड़ता हुआ आरहा था। दिल्ली पर अधिकार स्थापित करने के बाद आगरे की ओर कूँच करते हुये मथुरा से एक फकीर के साथ उसने आजम के नाम एक पत्र भेजा, जिसमें उसको अपने पिता की वसीयत का स्मरण दिलाया और साम्राज्य के विभाग का प्रस्ताव करते हुये आग्रह किया कि रक्तपात न किया जावे। आजम रणताण्डव पर तुला हुआ था। उसने उत्तर दिया 'जब कल का सूर्य उदय होगा तो मैं तुमको रणांगण में मिलूँगा[१]'।

**रामसिंहजी का बुद्धसिंहजी को पत्र**—ऊपर लिखा जाचुका है कि बुद्धसिंहजी मुअज्जम के साथ थे और राव रामसिंहजी ने आजम का पक्ष ग्रहण किया था। रामसिंहजी के अतिरिक्त आजम के साथ जयपुर के महाराजा जयसिंह, ओरछा के दलपतसिंह, नरवर के गजसिंह और शोपुर के महीपसिंह, आदि कई राजपूत सरदार थे। रामसिंहजी और बुद्धसिंहजी में पहले से ही वैमनस्य था। जिस समय राव रामसिंहजी दक्षिण के युद्ध में व्यस्त थे तो बुद्धसिंहजी ने पंजाब में मुअज्जम से मिलकर उसकी सहायता से पाटन वापिस अपने राज्य में मिला लिया था। इस प्रकार की परगनों की लौटा फेरी से कोटा और बूँदी

(१) इरविन: लेटर मुगल्स, जिल्द १, पृष्ठ २२।

के परिवारों का पारस्परिक वंशानुगत द्वेष पुनर्जीवित और अधिकाधिक प्रबल होता जाता था, परन्तु अब तक दोनों राज्यों के नरेशों में परस्पर युद्ध कभी नहीं हुआ था और प्रत्यक्ष में बन्धु-व्यवहार बना हुआ था। आजम ने औरंगाबाद में रामसिंहजी को वचन दिया था कि 'मुअज्जम की सहायता से बुद्धसिंह ने तुमसे पाटन वापिस छीन लिया है, परन्तु अब मैं तुमको बूँदी देता हूँ। आप मेरे पक्ष से लड़ो[1]'। इतने पर भी रामसिंहजी ने उचित नहीं समझा कि दो राज-परिवार विरुद्ध पक्ष से लड़ें। रामसिंहजी राज्य प्राप्ति के लिये अपने भाई बिशनसिंहजी से लड़ चुके थे और अपने छोटे भाई हरनाथसिंहजी की मृत्यु पर घोर पश्चाताप और सन्ताप प्रकट कर चुके थे। अतः बन्धु-द्रोह के परिणामों का उनको अनुभव था। यही कारण था कि बूँदी राज्य की प्राप्ति के लोभ से भी वे भुलावे में नहीं पड़े और बुद्ध-सिंहजी को पत्र लिखा कि 'बूँदी और कोटे का विरोधी पक्षों से लड़ना उचित नहीं है, अतः आपको भी आजम का पक्ष ग्रहण करना चाहिये'। बुद्धसिंहजी ने यह प्रेम-प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया और रामसिंहजी को मुअज्जम का पक्ष ग्रहण करने के लिये निमन्त्रित किया।

**जाजव[2] का युद्ध**—आजम और मुअज्जम की सेनायें एक दूसरी की ओर बढ़ती हुई धौलपुर के पास पहुँचीं। आजम धौलपुर से कुछ आगे बढ़ा और ज्येष्ठ की गर्मी और पानी के अभाव के कारण घोर विपत्ति का सामना करता हुआ जाजव के निकट जा पहुँचा।

---

(१) i वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ २९४७।
ii मेजर स्ट्रेटन–पृष्ठ ९।

(२) रणक्षेत्र जाजव से ४ मील उत्तर–पूर्व की ओर था।
(इविरन: लेटर मुगल्स, जिल्द १, पृष्ठ २५, नोट।)

उधर मुअज्जम की सेना भी दिखाई देने लगी। मुअज्जम ने सेना का कुछ हिस्सा आगे भेज दिया था जिसको आजम ने हराकर लूट लिया। अब जाजव के रणक्षेत्र में लड़ाई होने की दोनों पक्षों से तैयारियाँ होने लगीं।

**रामसिंहजी हरावल में**—आजम की सेना में हरावल का नायक शाहजादा बेदारबख्त नियत हुआ। उसके साथ राव रामसिंहजी, जयपुर के राजा जयसिंहजी, बुन्देलखण्ड के राव दलपतसिंहजी और जुल्फिकारखाँ आदि बड़े बड़े सरदार नियत किये गये। उधर मुअज्जम ने बुद्धसिंहजी को हरावल का अफसर बनाया। इससे पहले शाहजादा बेदारबख्त हाथी पर सवार था और राव रामसिंहजी तथा जुल्फिकारखाँ उसके बायीं तरफ हाथी पर सवार होकर बढ़ते जाते थे[1]।

**रामसिंहजी की वीरता**—१८ जून सन् १७०७ (आषाढ़ कृष्णा ३, सम्वत् १७६४) को युद्ध आरम्भ हुआ[2]। बहुत देर तक जोर की लड़ाई हुई। दोनों पक्ष साहस और वीरता के साथ रणक्षेत्र में डटे रहे। घोर संग्राम करते हुये शाहजादे बेदारबख्त और वालीजाह दोनों मारे गये। यह देख कर आजमशाह हतोत्साह होगया और उसने रामसिंहजी तथा दलपतसिंहजी बुन्देला को जो दृढ़ता से

---

(१) i राव दलपत बुन्देला, व रामसिंह हाड़ा के अज़ बन्दाहाय कदीम-उल-खिदमत बूद जंगजू व तोपखानये आतशबार मुकर्रर नमूदन्द—खाफीखाँ भाग २, पृष्ठ ५८८।

ii कामराज: इबरतनामा, पृष्ठ २०।

iii इरादतखाँ: तजकिरा, पृष्ठ ३०।

(२) i खाफीखाँ, पृष्ठ ५८७।

ii इरविन: लेटर मुगल्स, जिल्द १, पृष्ठ १२५।

iii वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ २९६०।

रणभूमि में डटे हुये थे, पुकार कर कहा कि अब मेरा सर्वस्व नष्ट हो चुका है, अतः मैं अपना भी अन्त करने के लिये इस संग्राम ज्वाला में कूदना चाहता हूँ। उसकी बात सुन कर कपटी और विश्वासघातियों ने तो केवल मीठी मीठी बातें कहीं, परन्तु रामसिंहजी और दलपतसिंहजी ने कहा कि पहले आप हमारी भी रण क्रीड़ा देखलें कि हम आप पर पतंगवत् किस प्रकार प्राण न्यौछावर करते हैं। जब हम बलिदान हो चुकें तो आप अपनी इच्छा हो सो करना[१]। यह कह कर रामसिंहजी प्राणपण से लड़ने लगे। तब बाजखाँ अफगान और बुद्धसिंहजी ने जुल्फिकारखाँ और रामसिंहजी पर आक्रमण किया। राव रामसिंहजी ने हाथी पर बैठे हुये उनका सामना किया। इस समय राव रामसिंहजी के हाथी की सूँड में गोला लगा जिससे वह घायल होकर चिंघाड़ता हुआ भाग निकला, तब रामसिंहजी हाथी से कूद पड़े और घोड़े पर सवार होकर तलवार की लड़ाई करने लगे। फिर वे घोड़े से भी उतर गये और पैदल तलवार चलाने लगे। कुछ देर तक अंगद के समान एक स्थान पर जमे हुये वे तलवार से लड़ाई करते रहे। इसी अर्से में एक घोर और प्रलयंकार आँधी चली जिसका प्रवाह आजम की सेना के प्रतिकूल था। आषाढ़ का महीना तो था ही। धूल ने दिन को रात कर दिया और शत्रु मित्र का भेद करना कठिन होगया। इस युद्ध में

---

(१) उमराय नामदार मिसले रामसिंह व दीगर फिदवियान के बर बिसाते जां फिशानी साबित कदम बूदन्द व बाजे नमक हरामान् मुनाफिक के फरजीने किरदारे कजरवी मे नमूदन्द व अर्ज रसानीदन्द के ए शमए जमाले खिलाफत अव्वलन दर ईं बज्म रज्म तमाशाये तरद्दुदे मा मुश्ते जईफ बायद नमूद कि चिसां परवानावार खुदरा दर आतिश दर अन्दाजेम बाद अजां हर चे ब खातिरे मुबारिक बुगजरद अखतियार अस्त॥ जंगनामा, पृष्ट ३६–३७।

रामसिंहजी के अनेक घाव लगे जिससे सम्पूर्ण शरीर क्षत विक्षत होगया और अन्त में रोमाञ्चकारी साहस के साथ लड़ते हुये एक तोप के गोले की चोट से उन्होंने वीरगति प्राप्त की। परन्तु धराशायी होने से पहले वे अनेक विपक्षी वीरों का संहार कर चुके थे और बाजखाँ पठान स्वयम् उनके हाथ से घायल होकर पीछा हट गया था। यदि जुल्फिकारखाँ और राजा जयसिंहजी ऐसी ही वीरता और निष्ठा के साथ लड़ते तो आजम को अवश्य विजय प्राप्त होती, परन्तु जुल्फिकारखाँ भाग कर ग्वालियर चला गया और जिस समय घमासान युद्ध होरहा था तो राजा जयसिंहजी अपने माथे पर दुशाला लपेट कर चुपके से मुअज्जम की सेना में जा मिले[1]।

---

(१) i इरादत खाँ: तजकिरा, पृष्ठ ३७।

ii कामराज: इबरतनामा, पृष्ठ २७।

iii कोटापति वार न वढ़ाय रस बीर अघायो।
बरखत बानन बिन्दु निविड़ नीरद बनि आयो॥
सुँडि बीच इहि समय घाय गोला लगि घल्ल्यो।
इभ पोगर उड़ि जात चकित चिक्करि भजि चल्ल्यो।
गज भजत क्रुद्धि बर वीर गति कढ्ढि असिय दारुन कलह।
हयमेध चरन डारत हलिय मरन मंडि अति कोप मह॥

वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ २९८०–८१।

कोटेस बिना हय छंडि महा गय रुढ्ढि बड़े रय रारि रुप्यो।

उपरोक्त पृष्ठ २६८२।

तिल तिल धारन तुट्टि भयो अमरन अगवानी।

उपरोक्त, पृष्ठ २६८३।

iv दर आँ अरसये रुस्तोखेज राव दलीप व मुनव्वरखाँ व खाने आलम व तरबियतखाँ व मतलबखाँ व रामसिंह हाड़ा व दीगर बन्दाहाय जांफिशां बकार आमदन्द।

जंगनामा, पृष्ठ ४७।

× × × ×

**युद्ध का अन्त और रामसिंहजी का अन्तिम संस्कार**— आजम और उसके दोनों पुत्र लड़ाई में मारे गये। आजम का सर काट कर रुस्तम दिलखाँ ने मुअज्जम के नजर किया, परन्तु इस दृश्य से मुअज्जम दया द्रवित होगया और दिलखाँ को बहुत फटकारा। आजम की सेना में १२,००० सवार घायल हो चुके थे और कितने ही हजार सैनिक भीषण उत्ताप और प्यास की भेंट हो चुके थे। मुअज्जम ने आदेश कर दिया था कि पराजित पक्ष के सैनिकों को नहीं सताया जावे। रामसिंहजी का शव अनेक लाशों से दबा हुआ था क्योंकि उनके धराशायी होने पर अनेक राजपूतों ने उसी स्थान पर वीरता पूर्वक लड़ते हुये अपने प्राण न्यौछावर किये थे। युद्ध की समाप्ति पर उनका शव रणक्षेत्र से उठाकर नूराबाद में लाया गया और वहाँ उसका विधिपूर्वक अन्त्येष्टि संस्कार किया गया[1]। बुन्देलखण्ड के राव दलपतसिंह भी रामसिंहजी के साथ साथ तोप के गोले से ही मारे गये थे। उनके पुत्र भारतीचन्दजी भी उन्हीं के साथ थे। उन्होंने अपने पिता केशव का आगरे से ७ मील की दूरी पर धामी नामक ग्राम में विधिपूर्वक अन्तिम संस्कार किया।

**राज्य वृद्धि**—रामसिंहजी के समय में सारथल, छीपाबड़ोद और खानपुर के परगने कोटा राज्य में मिलाये गये थे। ये परगने

---

दरीं दारोगीर व बारीदने गोला व तीर राव दलपत बुन्देला व राजा रामसिंह हाड़ा के हर दो अज मुबारिज पेशगाने शेर नबर्द बूदन्द बाचन्दी अज सर गुज़श्तगान पेश क़दम हरावल मोहम्मद आज़म शाह नक़दे हयात दर बाख़्तन्द।

—खाफीखाँ, भाग २ पृष्ठ ५९१।

—सियर-उल-मुताखरीन : पृष्ठ १०।

(१) i भीमसेन : नुस्खए दिलकश १६७ अ.।
ii इरविन : लेटर मुगल्स, जिल्द १ पृष्ठ ३४।

औरंगजेब ने दक्षिण में वीरता और निष्ठा के साथ लड़ने के उपलक्ष में उनको दिये थे। इन परगनों का हिस्सा पहले मऊ मैदाना कहलाता था। जगतसिंहजी के समय में यह प्रदेश उनको मुकाते में मिला हुआ था। अब रामसिंहजी के समय में यह राज्य में मिल गया। परन्तु इसका कुछ हिस्सा फिर भी मुकाते में ही रहा। मुकाते के हिस्से में परगना उरमाल था, जिसका शाही मतालबा उज्जैन भेजा जाता था[1]।

**सम्मान**—गद्दी पर बैठने के समय रामसिंहजी को औरंगजेब ने तीन हजार का मन्सबदार और तीन हजार सवारों का अफसर बना दिया था इसके बाद जिंजी की विजय के पश्चात् उनके मन्सब में वृद्धि की गई थी[2]। परन्तु रामसिंहजी की प्रसिद्धि विशेषकर उनके तोपखाने के कारण थी। इसीलिये वे रामसिंहजी "भंड़बूज्या" कहलाने लगे थे। औरंगाबाद के मुकाम पर उनकी वीरता और स्वामिभक्ति से प्रसन्न होकर बादशाह ने उनको नौबत का सम्मान प्रदान किया था। मुगल काल में किसी हिन्दू नरेश को नौबत मिलना बहुत बड़ी बात समझी जाती थी। अतः इस सम्मान के अवसर पर कई रईसों ने रामसिंहजी को बधाई दी थी और बादशाह के नौकरों को इस खुशी का इनाम देने में कई हजार रुपये रामसिंहजी ने खर्च किये थे[3]। रामसिंहजी को औरंगजेब ने 'राव' की पदवी से भी अलंकृत किया था[4]। फारसी इतिहासकारों ने कोटा नरेशों में सबसे पहिले रामसिंह-

(१) i मुंशी मूलचन्द, पृष्ठ १२६।
ii कागजात सम्वत् १७५७, सीगा मुतफर्रिकात।

(२) मुंशी मूलचन्द, पृष्ठ १२६।

(३) कागजात सम्वत् १७५७, सीगा मुतफर्रिकात।

(४) मुंशी मूलचन्द, पृष्ठ १२६।

जी के नाम के पूर्व ही 'राव' शब्द का प्रयोग किया है[1]। परन्तु गंगा सहायजी ने लिखा है कि 'राव' पदवी बादशाह शाहजहाँ ने माधोसिंहजी को ही देदी थी[2]। अब्दुल हमीद लाहोरी का कहना है कि शाहजहाँ ने माधोसिंहजी को राजा की पदवी दी थी। यह कथन अधिक विश्वसनीय है, क्योंकि अब्दुल हमीद शाही इतिहास-कार था। रामसिंहजी के पुत्र भीमसिंहजी भी पाँच सौ के मन्सबदार थे। जिंजी की विजय होने के बाद सम्वत् १७५६ (सन् १६९९) में उनके मन्सब में पाँच सो घोड़ों की वृद्धि की गई थी। उस समय घोड़ों को दगवाने में और सवारों के नाम शाही कागजों में लिखवाने में ३००) रुपया खर्च हुये थे। सूबा अजमेर और सूबा उज्जैन के सूबेदार रामसिंहजी के राज्य काल में कई बार कोटे आये थे। जब अजमेर का सूबेदार नवाब हुसैनअलीखाँ कोटे आया तो उसको १०,०००) रुपये पेशकश के दिये गये थे और उसके अन्य नौकरों को भी अच्छा इनाम देकर संतुष्ट किया गया था। दोनों सूबेदार कोटा राज्य को सम्मान की दृष्टि से देखते थे, क्योंकि रामसिंहजी दक्षिण में औरंगजेब के कृपा पात्र बने हुये थे[3]।

**अन्य राज्यों से सम्बन्ध**—शाही दरबार में सम्मानास्पद होने के कारण राजपूताना के नरेशों में रामसिंहजी का बड़ा सम्मान था। उदयपुर के महाराणा अमरसिंहजी की पुत्री के साथ कुँवर भीमसिंहजी का विवाह हुआ था। तत्कालीन राजसी ठाट का उससे अनुमान होता है कि उदयपुर से भीमसिंहजी का तिलक करने के लिये जो मेहमान आये थे, उनके लिये नित्य तीस मन आटा, आठ

(१) कासराज: इब्रतनामा, पृष्ठ ८४।
(२) वंश प्रकाश, पृष्ठ १३७।
(३) कागजात सम्वत् १७५६, सीगा मुतफर्रिकात।

मन शक्कर, पंदरह मन चावल और बारह मन दाल की आवश्यकता हुआ करती थी। ये महमान कोटे में आठ दिन तक ठहरे थे। महाराणा अमरसिंहजी सम्वत् १७५५ में राजगद्दी पर बैठे थे[1]। उस अवसर पर कोटे से सत्कार भेजा गया था, जिसमें हाथी, घोड़े और १५,०००) रुपये का कपड़ा था। यह उल्लेख योग्य बात है कि यह सब कपड़ा कोटे के व्यापारियों से ही खरीदा गया था[2]। सम्वत् १७५६ में महाराजा बिशनसिंहजी का देहान्त होजाने के बाद महाराजा सवाई जयसिंहजी जयपुर की राजगद्दी पर बैठे थे। उनके लिये सम्वत् १७५७ में कोटे से टीके का दस्तूर भेजा गया था जिसमें कई हाथी, घोड़े और बहुत से बहुमूल्य कपड़े थे[3]। रामसिंहजी की विद्यमानता में ही भीमसिंहजी ने उदयपुर के अतिरिक्त रूपनगर, बाँस बहाला तथा देवलिया (प्रतापगढ़) की राजकुमारियों से भी विवाह किये थे। कई राजपूत ठिकानों से ठकुरानियाँ रामसिंहजी के लिये राखी भेजा करती थीं और उन सब का यथोचित सत्कार किया जाता था[4]।

**राज्य प्रबन्ध**—रामसिंहजी का राज्य मन्त्री राय द्वारकादास था। इस पर रामसिंहजी का पूरा विश्वास था। परगनों का प्रबन्ध पूर्ववत् था। पुलिस तथा जुडीशल विभाग अलग अलग नहीं थे। गिरफ्तार करने वाला अफसर ही न्यायाधीश बन जाता था। दण्ड प्रायः कठोर था, लेकिन व्यभिचार के अपराध के लिये केवल अर्थदण्ड ही

---

(१) ओझा: राजपूताने का इतिहास तृतीय भाग, ९०५।

(२) कागजात सम्वत् १७५२ और १७५६, सीगा मुतफर्रिकात।

(३) कागजात सम्वत् १७५७, सीगा मुतफर्रिकात।

(४) कागजात सम्वत् १७५३, १७५७, १७६०, सीगा मुतफर्रिकात।

दिया जाता था। यदि किसी पुरुष पर व्यभिचार दोष का सन्देह हो जाता था तो उससे 'मुचलका' लिखाया जाता था कि भविष्य में उस पर अभियोग सिद्ध होगया तो उसको इतना धन देना पड़ेगा या अमुक दण्ड सहन करना होगा[१]। विशेष अवस्था में किसी परिवार का सर्वस्व भी हरण कर लिया जाता था। दण्ड देते समय फैसले लिखे नहीं जाते थे। साँगोद में किसी शाह किशनदास को सर्वस्व हरण का दण्ड दिया गया था, परन्तु कागज पर केवल इतना ही लिखा गया था कि "साह किसनदास पर ऐतराजी ( अप्रसन्नता ) हुई"।

रामसिंहजी के शासन काल में जमीन का नापना और उस पर कर निश्चित करना शायद बादशाह द्वारा निश्चित किये हुये कानूगों के हाथ से निकल कर राज के हाथ में आगया था। राजपूताने के भिन्न भिन्न भागों में भूमि नापने के लिये उस समय जुदी जुदी डोरियाँ काम में लाई जाया करती थीं। कोटा राज्य में भी रामसिंहजी से पहिले कई प्रकार की डोरियाँ प्रचलित थीं। रामसिंहजी को शायद अपने सम्पूर्ण राज्य में एक ही तरह की जरीब का उपयोग करना पसन्द था। अतः जब किसी को जमीन माफी में दी जाती थी तो यह हुक्म होता था कि जमीन कोटे की 'बहती डोरी सूँ नाप कर दी जावे'। इस डोरी का जिक्र जगतसिंहजी के समय के कागजों में भी आता है[२]। लेकिन रामसिंहजी के जमाने में इसका अधिक उपयोग होने लगा था। इनके समय के प्रबन्ध की उत्तमता का और व्यवस्था का इससे अनुमान किया जा सकता है कि परगने के प्रत्येक मुख्य कस्बे से निर्ख़नामा प्रति मास कोटे भेजा जाता था। इससे यह अनुमान किया

(१) कागजात सम्वत् १७५७, सीगा मुतफर्रिकात।
(२) कागजात सम्वत् १७३८।

जा सकता है कि राज के हर एक परगने में काफी व्यापार होता था और राज्य की ओर से उसकी अच्छी व्यवस्था थी। कस्बा बड़ोद का निर्खनामा नीचे दिया जाता है जिससे पाठक तत्कालीन आर्थिक स्थिति का भी अनुमान कर सकेंगे[1] :—

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ज्वार | .... | १) की | .... | ४ऽ |
| गेहूँ | .... | १) के | .... | २ऽ५ |
| चना | .... | १) के | .... | २।ऽ५ |
| घी | .... | १) का | .... | ऽ५। |
| मूँग | .... | १) के | .... | १ऽ२ |
| उड़द | .... | १) के | .... | १।।ऽ |
| मसूर | .... | १) की | .... | १।ऽ५ |
| चौंला | .... | १) का | .... | ।ऽ८ |
| गुड़ | .... | १) का | .... | ।ऽ४ |
| खाँड | .... | १) की | .... | ऽ६। |
| लूण | .... | १) का | .... | १।ऽ२ |
| अलसी | .... | १) की | .... | १।।।ऽ |
| तिल | .... | १) के | .... | १ऽ२ |
| तेल मीठा | .... | १) का | .... | ।ऽ५ |
| रुई | .... | १) की | .... | ।ऽ२। |
| सोना | .... | १३।।) का | .... | १) तोला |

उस समय कोटे के बाजार में जो कपड़ा मिलता था उसमें मखमल, मसरू, चिकन, महमूदी, चिकन बुरहानपुरी, इलायचा, मुलतानी छींट, ताश, कीमखाब आदि उल्लेख योग्य हैं[2]। जरी की साड़ियों

(१) कागजात सम्वत् १७५७, सीगा मुतफर्रिकात।
(२) कागजात सम्वत् १७५६, सीगा मुतफर्रिकात।

का मूल्य २५) रुपये प्रति साड़ी तक था। इससे तत्कालीन कोटे के बाजार की सम्पन्नता का अनुमान किया जा सकता है, क्योंकि उस समय के १५,०००) रुपये आजकल के ६०,०००) के बराबर थे।

**निर्माण कार्य**—रामसिंहजी के समय में रामपुरा बाजार बसा और रामपुरे का दरवाजा तथा कोट बनवाया गया। सूरजपोल के दरवाजे का निर्माण इन्हीं के समय में हुआ। रामगंज और राँवठा इन्हीं के बसाये हुये हैं। इन्होंने राँवठे के तालाब का निर्माण करवाया, और रामनिवास बाग लगवाया। इनके समय में शहरपनाह का काम सम्वत् १७५४ में शुरू हुआ और १३ मास तक जारी रहा। इसके बनवाने में २ मणासा अर्थात् २,४०० मन अन्न और कितने ही हजार रुपये खर्च हुये थे। किशोर सागर का काम भी रामसिंहजी के समय तक जारी रहा था[1]।

**उदयपुर और जयपुर के मार्ग**—पाठकों के मनोरंजनार्थ हम उन मार्गों का भी दिग्दर्शन करा देते हैं जिनका कोटे से उदयपुर, कोटे से आमेर और कोटे से बाँस बहाला जाने के लिये उपयोग किया जाता था। सम्वत् १७५६ में कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को कोटे से जो लोग टीके के लिये हाथी, घोड़े और कपड़े आदि लेकर उदयपुर के लिये रवाना हुये थे, वे लोग वहाँ पर आश्विन कृष्णा चतुर्दशी अर्थात् १ मास और १ दिन में पहुँच पाये थे और निम्न लिखित मार्ग से गये थे :—

मण्डाना, मुकुन्दगढ़, खैराबाद, भानपुरा, रामपुरा, भाटखेड़ी, जावद, भटखेड़ी, रायपुर, जोनपुर, ऊँटलो, और छकरड़[2]।

(१) i कागजात सम्वत् १७५२।

ii ठाकुर लक्ष्मणदान।

(२) कागजात सम्वत् १७५६, सीया मुतफर्रिकात।

सम्वत् १७५७ में दस्तूर लेकर राजकर्मचारीगण निम्नलिखित मार्ग से आमेर गये थे :—

नान्ता, बूँदी, दुगारी, नगर, टोंक, निवाई, चाटसू, साँगानेर, आमेर।

सम्वत् १७६० में कुँवर भीमसिंहजी की धर्मपत्नी अपने पीहर अर्थात् बाँस बहाला निम्नलिखित मार्ग से गई थीं :—

रायपुर, मुकुन्दगढ़, भाणपुरा, रामपुर, जरहेरा, दासोर, सिनावड़ी, अरणाँद, देवल्या, घटाली, सिमपुर। इनको पहुँचाने वाले कर्मचारीगण वापिस आते हुये अचलांवद, कीणघाटी, चेसोर, रामपुरा, रामपुर, भाणपुरा, मुकुन्दगढ़ और जगपुरा होकर आये थे[1]।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि राव रामसिंहजी सच्चे राजपूत की भाँति कई युद्धों में लड़ चुके थे। कुँवर पदवी से अन्त समय तक उनका अधिकांश जीवन रणक्षेत्र में ही व्यतीत हुआ था। उन्होंने पितृभक्ति, सम्राट् सेवा, साहस तथा वीरता के कारण ज्येष्ठ पुत्र न होते हुये भी राजगद्दी प्राप्त की थी। शाही दरबार में तो उनका अच्छा मान था ही, किन्तु उदयपुर और आमेर के नरेश भी उनका सम्मान करते थे। अपना अधिकांश जीवन रणभूमि में काटते हुयें भी उनका शासन सुव्यवस्थित था। उनके समय में केवल एक बार मऊ मैदाना के परगने में कुछ उत्पात हुआ था और वह सम्भवतः इसलिये कि यह इसी अर्से में कोटा राज्य में मिलाया गया था और बूँदी वालों को यह रुचिकर नहीं हो सकता था। इस उत्पात को कुँवर भीमसिंहजी ने थोड़े ही दिनों में दबा दिया था[2]। साँगोद के सेठ के सर्वस्व हरण से भी

(१) कागजात सम्वत १७५६, १७५७ और १७६०।

(२) कागजात सम्वत् १७६२, सीगा मुतफर्रिकात।

कुछ अनुमान होता है कि शायद उसने राज्य के विरुद्ध कुछ कार्य किया हो। इन दो घटनाओं के अतिरिक्त राव रामसिंहजी के शासन काल में कोटा राज्य में निरन्तर शान्ति बनी रही। रामसिंहजी ने सम्वत् १७५२ से सम्वत १७६४ तक राज किया और आषाढ़ कृष्णा चतुर्थी सम्वत् १७६४ (२० जून सन् १७०७) को जाजव के रणक्षेत्र में उन्होंने वीरगति प्राप्त की[१]।

(१) i कागजात सम्वत् १७६३।

ii इरविन: लेटर मुगल्स, जिल्द १, पृष्ठ २५ व ३०।

iii वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ २९६७।

# महाराव भीमसिंहजी

( सम्वत् १७६४–१७७७ वि. )

**मुगल साम्राज्य और महाराव भीमसिंहजी**—जब महाराव भीमसिंहजी गद्दी पर बैठे तो मुगल साम्राज्य की स्थिति डावाँडोल थी। भ्रातृद्रोह, निरन्तर संग्राम और सिख तथा मराठों के विद्रोह के कारण शाही शक्ति क्षीण होती जाती थी। ऐसे जमाने से लाभ उठा कर ही महाराव भीमसिंहजी नें अपने राज्य का विस्तार किया था और शक्ति का संचय। वास्तव में मुगलों का पतन काल भीमसिंहजी जैसे साहसी वीरों के शौर्य और पराक्रम के लिये अच्छा अवसर था।

**बहादुरशाह का अशान्त शासन**—मुगल साम्राज्य का वैभव और प्रताप औरंगजेब के साथ ही विदा होगया। जाजव के रणक्षेत्र में विजय प्राप्त करके मुहम्मद मुअज्जम बहादुरशाह का नाम धारण करके उसी समारोह के साथ दिल्ली के शाही तख्त पर बैठा, जिसका प्रदर्शन जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब ने अपने राज्याभिषेक के समय किया था, परन्तु बहादुरशाह का समारोह बिडम्बना मात्र था। उसके पीछे अब न वह शक्ति थी न वह ऐश्वर्य। बहादुरशाह ने सन् १७०७ ( जौलाई ) से १७१२ ( फरवरी ) तक अर्थात् लगभग ४ वर्ष और ७ महीने राज्य किया। इस अर्से में उसको कभी शान्तिपूर्वक तख्त पर बैठने का अवसर नहीं मिला और न वह शासनविधि या नीति के विषय में कुछ विचार कर सका।

**जयसिंह और कामबख्श पर चढ़ाई**—तख्त पर बैठने के कुछ मास बाद ही उसने आमेर पर चढ़ाई की, वहाँ से वह मारवाड़ पहुँचा और महाराजा अजीतसिंह को हरा कर तथा सन्धि करके उसने

अजमेर को कूँच किया। इस समय उसको खबर मिली कि मुहम्मद कामबख्श ने बागी होकर दक्षिण में शाही चिन्ह धारण कर लिये। अतः इसने दक्षिण को कूँच किया और एक वर्ष सात महीने तक (मई सन् १७०८ से दिसम्बर सन् १७०९ तक) वह दक्षिण में रहा। कामबख्श हार कर गिरफ्तार होगया।

**राजपूतों और सिक्खों का विद्रोह**—इधर राजपूताने में महाराजा अजीतसिंह, महाराणा अमरसिंह और सवाई जयसिंह ने मिल कर फिर विद्रोह खड़ा कर दिया था। इनको दबाने के लिये बहादुरशाह फिर राजपूताने में आया। राजपूत राजाओं ने फिर प्रत्यक्ष में उसकी अधीनता स्वीकार करली। बहादुरशाह राजपूतों के दूसरे उपद्रव से निवृत्त हुआ ही था कि पंजाब से चिन्ताजनक खबरें आने लगीं। वैरागी गुरु बन्दा ने सरहिन्द को खूब लूट कर सुलतानपुर के जिले में आक्रमण किया, लूटमार की, और आसपास के प्रदेश में आतंक फैला दिया। यह खबर सुनकर बहादुरशाह ने अजमेर से कूँच किया। सिखों के विरुद्ध चढ़ाई करने में बहादुरशाह को घोर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। प्रत्यक्ष में सिखों का दमन होगया था परन्तु वे लोग वास्तव में गुप्त रूप से युद्ध की तैयारियाँ करते हुये अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। सिखों को दबा कर बहादुरशाह लाहोर पहुँचा और वहाँ बीमार होकर मर गया।

**जहाँदारशाह का राज्यारोहण और बध तथा फर्रुखसियर की ताजपोशी**—बहादुरशाह के ४ पुत्रों में साम्राज्य प्राप्ति के लिये संघर्ष हुआ और अन्त में अजीमुश्शान को रणक्षेत्र में मारकर जहाँदार-शाह गद्दी पर बैठा। इसका तख्त पर बैठना था कि अजीमुश्शान के पुत्र फर्रुखसियर ने युद्ध की तैयारी करदी। जहाँदारशाह कुछ मास



महाराव भीमसिंहजी

(१७६४-१७७७ वि०)

ही राज कर सका और यह अर्सा भी युद्ध की तैयारियों में ही बीता। आगरे के पास उसको रणक्षेत्र में हरा कर हुसैन अलीखाँ और अब्दुल्लाखाँ की सहायता से फर्रुखसियर सन् १७१२ में दिल्ली के तख्त पर बैठा।

**सैयद बन्धुओं का उत्कर्ष**—फर्रुखसियर ने सन् १७१२ से सन् १७१९ तक राज किया परन्तु वह नाममात्र का बादशाह था। वास्तविक शक्ति और सत्ता अब सैयद भाइयों के अर्थात् सैयद अब्दुल्ला और हुसैन अलीखाँ के हाथ में थी। शाही दरबार शाह का दरबार नहीं था किन्तु सैयदों का दरबार था और मुगल, ईरानी और तूरानी इन तीन प्रबल पक्षों के पारस्परिक द्वेष और ईर्ष्या का रंगमंच बना हुआ था। फर्रुखसियर को सैयदों की अपरिमित शक्ति और अपनी असहाय अवस्था सहन नहीं होती थी। उसकी सैयदों से अनबन हुई और फिर सुलह हुई; किन्तु परस्पर आन्तरिक द्वेष बढ़ता ही गया। इधर राजधानी की यह दशा थी, उधर सिख, जाट और राजपूत बार बार उपद्रव करते थे। सैयद भाई जिधर कूँच करते थे, उधर प्रत्यक्ष में शान्ति अवश्य हो जाती थी परन्तु फर्रुखसियर और सैयद भाइयों के परस्पर द्वेष के कारण शाही आतंक उठता जाता था।

**उनके द्वारा फर्रुखसियर का बध**—फरुर्खसियर सैयदों से प्रत्यक्ष में कभी झगड़ा करता था और कभी सुलह; परन्तु उनको उखाड़ने के लिये उसका प्रयत्न निरन्तर जारी था। साम्राज्य के अमीर और उमराव दो भागों में विभक्त होते जाते थे। कोई फर्रुखसियर का पक्ष ग्रहण करता था और कोई सैयदों का; परन्तु सैयदों की शक्ति का पलड़ा निःसन्देह भारी होता जाता था। अन्त में सन् १७१९ में सैयदों ने फर्रुखसियर को कैद करके मार डाला और प्रकट रूप से दोनों भाई साम्राज्य के कर्त्ता धर्त्ता बन गये।

**नामधारी बादशाह**—नाम मात्र के लिये बेदारबख्त के पुत्र बेदारदिल को रफीउद्दरजात के नाम से तख्त पर बिठाया। परन्तु ४ मास बाद वह स्वयम् गद्दी से उतर गया और रफीउद्दौला गद्दी पर बिठा दिया गया। वह बहादुरशाह का पोता था। तीन महीने बाद वह मर गया और बहादुरशाह के दूसरे पोते खुजिस्ताअख्तर को अब्दुलफतह नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह के नाम से तख्त पर बिठाया गया।

**शाही शक्ति का ह्रास और संकोच**—उपरोक्त राजनैतिक स्थिति में दूरस्थ प्रांतों के सूबेदार और राजाओं के लिये बादशाह की आज्ञा की अवहेलना करना बहुत आसान था। यों तो औरंगजेब के शासनकाल में ही मुगलों का दबदबा शिथिल होगया था परन्तु आजम और मुअज्जम की लड़ाई, जहाँदारशाह और अजीमुश्शान का परस्पर युद्ध, तदुपरान्त फर्रुखसियर और जहाँदारशाह की लड़ाई और अन्त में सैयद भाइयों के उत्कर्ष के कारण लोगों के हृदय में अब बादशाह का मान नाम मात्र को रह गया था। अब भी बादशाह से खिलत और मन्सब प्राप्त करना राजपूत नरेश अपना गौरव समझते थे परन्तु साथ ही वे इस बात को भी अनुभव करते थे कि मुगलों का वैभव और प्रताप विदा होगया है।

**मारवाड़ और सैयद भाई**—जब औरंगजेब दक्षिण के विकट संग्राम में फँसा हुआ था तो जोधपुर के महाराजा अजीतसिंहजी ने औरंगजेब द्वारा नियत किया हुआ फौजदार मार डाला, मुगलों के थाने उठा दिये, और अपने सम्पूर्ण महल को गंगाजल से धुलवाकर राठोड़ स्वतन्त्रता की घोषणा करदी। औरंगजेब की मृत्यु के बाद अजीतसिंह जी ने न मुअज्जम का पक्ष ग्रहण किया न आजम का। इस अपराध का दण्ड देने के लिये फर्रुअसियर के शासन काल में सैयद हुसैनअली

खाँ ने सन् १७१४ में मारवाड़ पर आक्रमण किया था और अजीतसिंहजी को हराकर उनको विवश किया कि फर्रुखसियर के लिये अपनी लड़की का डोला भेजें[1]।

**जयपुर और मुगल**—बहादुरशाह जयसिंहजी की स्वामिभक्ति पर बड़ा सन्देह करता था। उसकी अप्रसन्नता से उत्साहित होकर सवाई जयसिंहजी का छोटा भाई स्वयम् राजा बनने की अभिलाषा करने लगा था। इस घरू कलह से लाभ उठा कर बादशाह ने सवाई जयसिंहजी को गद्दी से हटा कर उनके भाई को राजा बना दिया था। परन्तु महाराजा जयसिंहजी ने शीघ्र ही उससे राज्य वापस छीन लिया। फिर सवाई जयसिंहजी महाराजा अजीत सिंहजी और उदयपुर के महाराणा अमरसिंहजी के साथ होगये, और तीनों रईस मिलकर मुगल बादशाह का विरोध करने लगे। विरोध करते हुये भी सवाई जयसिंहजी नीति से काम करते थे। अतः जब बादशाह मुहम्मदशाह ने सवाई जयसिंहजी को सैयद अब्दुल्लाखाँ के विरुद्ध लड़ने के लिये निमन्त्रित किया था तो वे स्वयम् तो नहीं गये परन्तु उन्होंने दो हजार सवारों के साथ अपने मन्त्री को भेज दिया।

**कोटा और बूँदी का पारस्परिक द्वेष**—जाजव की लड़ाई के बाद बूँदी के राव राजा बुद्धसिंहजी का शाही दरबार में मान बहुत बढ़ गया था। आजम का पक्ष ग्रहण करने के कारण रामसिंहजी से रुष्ट होकर बहादुरशाह ने बुद्धसिंहजी को इजाजत देदी थी कि कोटे का राज्य बूँदी में मिला दिया जावे। इससे कोटा और बूँदी में परस्पर घोर कलह आरम्भ हो गया और कई लड़ाइयाँ हुई।

(१) i तवारीख-ए-मारवाड़—मुरारीदास, जिल्द २, पृष्ठ ८०।

ii इरविन : लेटर मुगल्स, जिल्द १, पृष्ठ २९०।

मेवाड़, मारवाड़, जयपुर, बूँदी और कोटा इस प्रकार मुगल साम्राज्य के ह्रास के कारण नई अभिलाषाओं और कामनाओं में लिप्त थे और प्रत्येक राज्य के सामने नई समस्यायें उपस्थित थीं।

**बहादुरशाह का कोटे पर क्रोध**—शाही तख्त पर बैठने के बाद बहादुरशाह ने अपने मित्र और सहायकों को पुरस्कृत और सन्तुष्ट किया। बुद्धसिंहजी उसके पक्ष में प्राणपण से लड़े थे अतः उनकी वीरता और स्वामिभक्ति से बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। इससे पहिले ही औरंगजेब का पक्ष त्याग कर उससे आ मिलने के कारण बहादुरशाह ने बुद्धसिंहजी को पाटन का परगना कोटे से वापिस छीन लेने में सहायता दी थी। अब इस अवसर पर बुद्धसिंहजी को महाराव राजा की पदवी से अलंकृत किया गया और उनको इजाजत मिल गई कि ५४ परगनों को जीत कर बूँदी राज्य में मिला लिया जावे [1]। बहादुरशाह राव रामसिंहजी के उत्तराधिकारी पुत्र भीमसिंहजी से बहुत अप्रसन्न था।

**एक किंवदन्ती**—ऐसी भी किंवदन्ती है कि बहादुरशाह को यह पता नहीं था कि रामसिंहजी के कोई पुत्र है। बुद्धसिंहजी के यह कहने पर कि रामसिंहजी के केवल एक पुत्री है, बादशाह ने हुक्म दे दिया था कि कोटे का राज्य भी बूँदी में मिला लिया जावे। यह किंवदन्ती सच हो या झूँठ, यह निःसन्देह है कि बुद्धसिंहजी को कोटा छीन लेने की बादशाह से इजाजत मिली थी। यह अधिक सम्भव और युक्तियुक्त बात मालूम होती है कि बादशाह ने रामसिंहजी के पुत्र भीमसिंहजी से क्रुद्ध होकर बुद्धसिंहजी को कोटा जीत लेने की इजाजत दी होगी। जिन ५४ परगनों को जीत लेने की बादशाह

(१) वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ २९९८–९९।

ने अनुमति दी थी, उनमें कोटा, झालरापाटन, गागरोण, शाहाबाद, शेरगढ़, बड़ोद, चेचट, छबड़ा, गूगेर, पचपहाड़, डग आदि थे[1]। हाड़ा राजपूतों के विषय में यह मुगलों की परम्परागत नीति थी। कभी कोटे का हिस्सा बूँदी को और कभी बूँदी का भाग कोटे को देदिया करते थे जिससे लोभ में आकर बूँदी और कोटे के राजपरिवार प्रायः परस्पर लड़ा करते थे और दोनों निरन्तर मुगल बादशाहों को अपने रक्षक समझा करते थे।

**कोटा राज्य पर बूँदी की चढ़ाई**—राजपूताने पर कूँच करते समय बहादुरशाह अपने साथ बुद्धसिंहजी को लेगया था। आमेर के मुकाम पर दो दिन की छुट्टी लेकर बुद्धसिंहजी ने सवाई जयसिंहजी की बहिन से विवाह किया और जब आमेर तथा जोधपुर दोनों ने बादशाह की अधीनता स्वीकार करली तो बुद्धसिंहजी दस दिन की छुट्टी लेकर बेगूँ (मेवाड़) में अपना विवाह करने चले गये[2]। बेगूँ से उन्होंने अपने मन्त्रियों के पास बूँदी पत्र भेजा कि कोटा राज्य को जीत कर बूँदी में मिला लिया जावे। उस समय बूँदी में जोधराज नामक वैश्य प्रधान था और गंगाराम धाभाई उसका सलाहकार था। इन दोनों ने विचार करके कनकसिंह के पुत्र जोगीराम के नेतृत्व में कोटे के विरुद्ध सेना रवाना करदी[3]।

**बूँदी की सेना का पराजय**—जोगीराम ने भीमसिंहजी के पास बहादुरशाह का फरमान भेजा और कहलाया कि लड़ाई किये बिना ही यदि कोटे का राज्य बूँदी के सुपुर्द कर दिया जावे तो

---

(१) वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ २९९६।

(२) उपरोक्त पृष्ठ ३०००-१०।

(३) ,, ,, ३००८।

अच्छा है। तब भीमसिंहजी ने बादशाह के फरमान को अनिवार्य और अनुल्लंघनीय समझ कर बालकृष्ण व्यास और फतेहचन्द कायस्थ को सन्धि की बातचीत करने के लिये बूँदी भेजा। दोनों ने बूँदी जाकर बुद्धसिंहजी की माता नाथावतजी से निवेदन किया कि भीमसिंहजी के लिये केवल कोटा छोड़ दिया जावे और शेष प्रदेश बूँदी राज्य में मिला लिया जावे। लोभवश राजमाता ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया जिससे कोटे के दोनों राजमन्त्री क्रुद्ध होकर वापिस कोटे आगये और भीमसिंहजी को सलाह दी कि बूँदी के साथ युद्ध किया जावे। इधर भीमसिंहजी ने सेना सजाना आरम्भ किया और उधर जोगीराम ने भी चम्बल पार करके कोटे पर सेना चढ़ाई। कचौंदीखेड़े में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। भीमसिंहजी ने बड़ी योग्यता के साथ सेना का संचालन किया [1]। ये दक्षिण की कई लड़ाइयों में लड़ चुके थे और औरंगजेब के समय में ५०० के मन्सबदार थे [2]। अतः भीमसिंहजी को युद्ध का काफी अनुभव हो चुका था और जोगीराम उनका मुकाबला नहीं कर सकता था। फिर भी यह बड़ी वीरता के साथ लड़ा और अगणित घावों से आहत होकर ही वह रणभूमि में गिरा। उसके मरते ही बूँदी की सेना भाग निकली [3]। इस समय बुद्धसिंहजी बहादुरशाह के साथ दक्षिण में शाहजादा कामबख्श के विद्रोह को दमन करने के लिये गये थे। वहीं उनको इस पराजय की सूचना मिली; परन्तु करते क्या? बादशाह की नौकरी छोड़ कर बूँदी आना असम्भव था। उनकी अनुपस्थिति से भीमसिंहजी को लाभ हुआ। बूँदी की

---

(१) वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३००८–९।
(२) कागजात सम्वत् १७५२ और १७६०, बस्ता नं० २१ सीगा मुतफर्रिकात।
(३) वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३००९।

सेना को हरा देने से उनकी कीर्त्ति और धाक तो जम ही चुकी थी। अब वे अपनी सेना को भविष्य में आत्मरक्षा के निमित्त सुदृढ़ और सुसंगठित करने लगे।

**बूँदी की सेना का दूसरा पराजय**—इस पराजय से बूँदी के राजमन्त्रियों को बड़ी लज्जा आई और दूसरी सेना गंगाराम धाभाई के नायकत्व में रवाना की गई। इस समय बूँदी का मन्त्री हरीराम महाजन था। इसने अलीखाँ नामक एक रोहिला को ५,००० सवारों के साथ नौकर रक्खा और उसको भी गंगाराम के साथ रवाना किया। इस प्रबल तैयारी को देख कर भीमसिंहजी को कुछ चिन्ता हुई। इसलिये उन्होंने भेद-नीति का उपयोग किया। उन्होंने गंगाराम धाभाई को एक सम्मानपूर्ण पत्र लिखा जिसमें उसको 'बाबा' शब्द से सम्बोधित किया और लोभ देते हुये कहा कि हमको ही बूँदी का राजा बना दो। गंगाराम धाभाई लोभवश भीमसिंहजी के बहकाने में आगया। उसने समझा कि जो मुझे 'बाबा' कहता है उससे मुझे भविष्य में अधिक लाभ हो सकता है। अतः गंगाराम तन मन से नहीं लड़ा, टालटूल करता रहा, और लगभग दो मास तक सेना का पड़ाव एक ही मुकाम पर डाले रहा। इस अर्से में अलीखाँ का दो मास का वेतन चढ़ गया। उसको नौकर रखते समय बूँदी के राजकर्मचारियों ने सोचा होगा कि कोटा जीत लेने पर बहुत धन मिल जायगा और अली-खाँ का वेतन आसानी से चुका दिया जावेगा। दो महीने के बाद अलीखाँ रुपये के लिये तकाजा करने लगा और जब उसकी माँग पूरी नहीं हुई तो उसने गंगाराम को अपने केम्प में कैद कर लिया और राजमन्त्री हरीराम से कहला दिया कि दो महीने का पूरा वेतन मिलने पर गंगाराम धाभाई को छोड़ा जावेगा। इस प्रकार बूँदी की सेना में

फूट डाल कर भीमसिंहजी ने नीतिबल से ही उसको परास्त कर दिया। बेचारा गंगाराम बहुत अर्से तक अलीखाँ का कैदी रहा और फिर बुद्धसिंहजी का हुक्म आने पर हरीराम ने अलीखाँ का वेतन देकर उसको कैद से छुडाया [१]। इस प्रकार दो बार भीमसिंहजी ने बूँदी की सेना पर विजय प्राप्त करके अपने राज्य की रक्षा की।

**फर्रुखसियर ने भीमसिंहजी को बूँदी पर चढ़ाई करने की इजाजत दी**—फर्रुखसियर के गद्दी पर बैठने पर राजनैतिक स्थिति ने पल्टा खाया। वह सैयद भाइयों की सहायता से तख्त पर बैठा था। बुद्धसिंहजी ने उसको या जहाँदारशाह को कोई मदद नहीं दी थी। परन्तु ऐसी प्रसिद्धि थी कि बुद्धसिंहजी जहाँदारशाह की ओर झुके हुये थे। वास्तव में बहादुरशाह के मरने के बाद बुद्धसिंहजी अपने आप को आश्रयहीन समझ कर घबरा गये थे और कौल मत ग्रहण करके विचित्र प्रकार का जीवन व्यतीत करने लग गये थे। तख्त पर बैठने के पश्चात् जब फर्रुखसियर ने सब राजपूत राजाओं के नाम फरमान भेजे और उनको दिल्ली बुलाया तो बुद्धसिंहजी प्रमादवश वहाँ नहीं गये। इससे फर्रुखसियर क्रुद्ध हुआ। किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह जी ने जो भीमसिंहजी के श्वसुर थे, उसको बुद्धसिंहजी के विरुद्ध और उत्तेजित किया। राजसिंहजी का बुद्धसिंहजी के साथ वैमनस्य था क्योंकि उन्होंने किशनगढ़ की राजकुमारी से विवाह करना स्वीकार नहीं किया था। राजसिंहजी ने अनुकूल अवसर देख कर फर्रुखसियर को बुद्धसिंहजी के विरुद्ध और भी उकसाया और उसने भीमसिंहजी को बुद्धसिंहजी से बूँदी छीन लेने की इजाजत दे दी [२]।

---

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३०२२–२३।

(२) उपरोक्त, पृष्ठ ३०४०–४३।

**भीमसिंहजी की बूँदी पर चढ़ाई**—जिस समय बुद्धसिंहजी अपने मामा के यहाँ गये हुये थे तो फाल्गुण कृष्णा चतुर्दशी सम्वत् १७७० को भीमसिंहजी ने बूँदी पर चढ़ाई कर दी। भीमसिंहजी दो बार बूँदी की सेना का सामना करने में बहुत धन व्यय कर चुके थे अतः उनके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी। बूँदी पर चढ़ाई करते समय उन्होंने बीस हजार चुने हुये ऐसे सैनिक अपने साथ लिये थे जो उनके लिये मर मिटने को तैयार थे। चम्बल पार करके भीमसिंहजी ने बूँदी को जा घेरा। उस समय तक बुद्धसिंहजी अपने मामा के यहाँ बैठे हुये थे[1]। जब उनको यह खबर मिली तो और घबरा गये और देवदर्शन में अपना समय काटने लगे। तब उनके पुरोहित गजमुख ने उनके साथ रहना उचित नहीं समझा और बूँदी की रक्षा करना अपना कर्तव्य मान कर उनका साथ छोड़ दिया और बूँदी आया तथा पश्चिम के दरवाजे से पुर में प्रवेश करके दक्षिणी दरवाजे के पास अपनी हवेली से उसने गोलाबारी करना शुरू की और इतने धैर्य और वीरता के साथ लड़ा कि भीमसिंहजी को चिन्ता होने लगी। जब भीमसिंहजी ने देखा कि युद्ध की गति उनके अनुकूल नहीं है और व्यर्थ अनेक वीरों का संहार होने की सम्भावना है तो उन्होंने भेदनीति का उपयोग किया। गजमुख पुरोहित से कहलाया कि आप मेरे और बुद्धसिंहजी दोनों के पूज्य हैं। आपको तो लड़ाई बन्द करके मुझसे मिलना चाहिये। गजमुख इस भेद जाल में फँस गया और लोभवश भीमसिंहजी से जा मिला। ज्योंही वह डेरे में पहुँचा भीमसिंहजी ने उसको कैद कर लिया। जब कोई वीर नायक उनका मुकाबला करने को नहीं रहा तो दरवाजे तुड़वा कर उन्होंने शहर में प्रवेश किया तथा अपना अधिकार स्थापित

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३०४३–४४।

कर लिया[१]। जब यह खबर बुद्धसिंहजी को मिली तो करवर के ठाकुर सालमसिंह ने उनसे कहा कि इस प्रकार अपना पराजय देखते रहने से तो अपनी राजधानी की रक्षा करने में लड़ते हुये प्राणोत्सर्ग कर देना अच्छा है। बुद्धसिंहजी ने तो अपना प्रमाद नहीं छोड़ा परन्तु सालमसिंह विदा होकर करवर आया और भीमसिंहजी का सामना करने की तैयारी करने लगा। बुद्धसिंहजी सुरथपुर छोड़ कर मेवाड़ की ओर रवाना हुये और फिर मालवे में पहुँच कर अपने साले सवाई जयसिंहजी से जा मिले। इधर गजमुख भीमसिंहजी की कैद से छूट कर जब मालवे में बुद्धसिंहजी के पास पहुँचा तो उन्होंने उसके सब अधिकार छीन लिये और उसके स्थान पर शिवदास को नियत कर दिया। परन्तु अब बुद्धसिंहजी का कोप व्यर्थ था क्योंकि बूँदी पर भीमसिंहजी का पूर्ण रूप से अधिकार स्थापित हो चुका था। बुद्धसिंहजी की एक रानी बेगूँ, दूसरी आमेर, तथा तीसरी भिनाय चली गईं थीं। अधिकांश स्त्रियों ने और अधिकारी-वर्ग ने बेगूँ में ठाकुर देवीसिंह के पास आश्रय लिया था।

**भीमसिंहजी का करवर पर आक्रमण**—जब भीमसिंहजी ने देखा कि सालमसिंह करवर में उनसे मुकाबला करने की तैयारी कर रहा है तो उन्होंने करवर पर चढ़ाई की और रास्ते में अपना अधिकार दृढ़ करते हुये करवर को जा घेरा। अर्से तक घेरा जारी रहा। सालमसिंह भी धैर्य पूर्वक अपने दुर्ग की रक्षा करता रहा। भीमसिंहजी ने तोपों के गोलों की ऐसी भयंकर वर्षा की कि दुर्ग की दीवार जगह जगह छिद गई और करवर नगर भाड़ जैसा दृष्टि देने लगा। १८ दिन तक इस प्रकार अग्नि वर्षा होती रही। ऐसा मालूम होता था कि करवर पर भीमसिंहजी का अधिकार होने ही वाला है। इसी अर्से में संयोगवश

---

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३०४४–४५।

एक संन्यासी भीमसिंहजी की सेना के पड़ाव में आ पहुँचा। इसका नाम सुखसिंह था और यह मोखमसिंगोत चौहाण जागीरदार था जिसने अपनी जागीर और सम्पत्ति अपने पुत्र को देकर संन्यास धारण कर लिया था। भीमसिंहजी ने इस साधू का आदरपूर्वक स्वागत किया और गद्दी छोड़ कर उसको उस पर बैठाया तथा हाथ जोड़ कर उससे पूछा कि क्या आज्ञा है ? सुखसिंह ने भीमसिंहजी को करवर का घेरा उठा कर वापिस चले आने का आदेश किया। भीमसिंहजी धार्मिक प्रवृत्ति के नरेश थे अतः उन्होंने तत्काल उसका उपदेश स्वीकार कर लिया और वापिस बूँदी आगये। यदि ऐसे समय पर भाग्यवश सुखसिंह का आगमन नहीं होता तो भीमसिंहजी अवश्य करवर को अधिकृत कर लेतें[1]।

**महाराणा संग्रामसिंहजी का सन्देश और धनावदे का युद्ध**—जब सुखसिंह के उपदेश से भीमसिंहजी करवर का घेरा उठा कर बूँदी आगये तो लोगों में ऐसी भ्रान्ति फैल गई कि सालमसिंह जीत गया। फिर भी भीमसिंहजी ने इसकी कोई चिन्ता नहीं की। बुद्धसिंहजी इस समय अपने साले सवाई जयसिंहजी के पास मालवे में थे। सवाई जयसिंहजी निरन्तर इस चिन्ता में थे कि बुद्धसिंहजी को किस प्रकार पुनः बूँदी दिलाई जावे। सोच विचार कर उन्होंने स्वयम् अपने हाथ से महाराणा संग्रामसिंहजी के नाम पत्र लिखा कि "आप कृपा करके भीमसिंहजी को समझावें और बुद्धसिंहजी को अपना देश वापिस दिलावें। इसका मैं बहुत अहसान मानूँगा। मैं जानता हूँ कि भीमसिंहजी आपका कहना मानते हैं"। महाराणा संग्रामसिंहजी ने पत्र पर विचार किया और सवाई जयसिंहजी का लिहाज करके भीमसिंहजी के पास अपने काका तख्तसिंह को भेजकर कहलाया कि "यदि आप

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३०४६–४७।

बूँदी छोड़कर वापिस कोटे चले जावेंगे तो मेरे सिर पर बड़ा अहसान होगा"। भीमसिंहजी ने बहुत सच्चा और युक्तियुक्त उत्तर दिया कि "बुद्धसिंहजी शासन करने के अयोग्य हैं; इनसे बूँदी नहीं दब सकती। यदि मैं बूँदी छोड़ दूँगा तो यह मुसलमानों के हाथ में चली जावेगी"। जब सालमसिंह ने देखा कि भीमसिंहजी बूँदी नहीं छोड़ते तब वह बूँदी के राज्य को लूटने लगा और भीमसिंहजी ने जो जगह जगह थाने अर्थात् सैनिक चौकियाँ स्थापित कर रक्खी थीं, उन पर आक्रमण करने लगा। लूटता खसोटता वह बूँदी के पास जैतगढ़ तक आ पहुँचा। तब भीमसिंहजी ने धाभाई भगवानदास को एक सेना के साथ उसको रोकने के लिये भेजा। दोनों सेनाओं का धनावदे में भारी युद्ध हुआ जिसमें सालमसिंह के वंशज और कई मेवाती मारे गये, तथा धाभाई भगवानदास के कई घाव लगे। विजय भीमसिंहजी की हुई[१]।

**बूँदी पर शासन**—सम्वत् १७७० में भीमसिंहजी ने बूँदी को जीतकर वहाँ का राजकोष, कपड़े, जेवर, और बरतन आदि सब कोटे पहुँचा दिये। इसी अवसर पर वह केसरिया निशान और नक्कारे कोटे लाये गये थे जो रावरतन को बादशाह जहाँगीर ने दिये थे। बूँदी के गढ़ के अतिरिक्त नगर की भी लूट की गई जिसमें लोगों की गाय, बैल, भैंस, घोड़े, ऊँट आदि सब छीन लिये गये। ये पशु कोटे में नीलाम किये गये थे और इनमें से बहुत से पशु कुँवर अर्जुनसिंहजी तथा राजकर्मचारियों ने खरीदे थे[२]।

**भीमसिंहजी का उदयपुर जाना और नाटक में उनकी निन्दा**—इसके कुछ मास बाद उदयपुर में महाराणा संग्रामसिंहजी की

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३०४७–४८।
(२) i कागजात सम्वत् १७७०, सीगा मुतफर्रिकात।
ii टॉड—राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५५७।

माता देवकुँवर ( बेदला के राव सबलसिंह की पुत्री ) ने पीछोला तालाब के निकट सीसारमा गाँव में जो वैद्यनाथ का विशाल मन्दिर बनवाया था, उसकी प्रतिष्ठा होने वाली थी । इस अवसर पर राजमाता ने चाँदी की चौथी तुला की थी और प्रतिष्ठा समारोह में लाखों रुपये खर्च किये थे और महाराव भीमसिंहजी को भी निमन्त्रित किया था[1] । भीमसिंहजी उदयपुर में कई दिन तक रहे । एक दिन महाराणा संग्रामसिंहजी और भीमसिंहजी दोनों राजप्रासाद के झरोखे में बैठे हुये नाटक देख रहे थे । उस अवसर पर एक नट ने प्रसंगवश भीमसिंह जी की निन्दा और सालमसिंह की प्रशंसा कर डाली । यह सुनकर भीमसिंहजी को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने अपनी मूँछ पर हाथ रखकर तत्काल महाराणा संग्रामसिंहजी से विदा ले ली[2] ।

**करवर पर दूसरा आक्रमण**—उदयपुर से लौटकर भीमसिंह जी ने जयसिंह नामक राठोड़ को बीस हजार सेना के सहित करवर के विरुद्ध भेजा । एक मास तक जयसिंह ने करवर का घेरा जारी रक्खा परन्तु वह किले को जीत न सका । अन्त में हार मान कर उसने सालमसिंह से सन्धि का प्रस्ताव किया । जयसिंह ने सालमसिंह के पुत्र से अपनी लड़की का विवाह कर दिया और घेरा उठा कर वह वापिस लौट आया । करवर का किला इतना सुदृढ़ तो नहीं था कि बीस सहस्र सेना भी उसको अधिकृत नहीं कर सकती हो । यह

(१) i प्रासादवैवाहयविधिं दिदृक्षुः
कोटाधिपो भीमनृपोभ्यगच्छत् ।
रथाश्वपत्तिद्विपनद्ध सैन्यो
दिल्लीश सम्मानित बाहुवीर्य्यः ॥
—वैद्यनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति, प्रकरण ५ ।

ii राजपूताने का इतिहास, जिल्द ३, पृष्ठ ९३० ।

(२) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३०४८–४९ ।

सालमसिंह के भाग्य की बात थी कि भीमसिंहजी ने दो बार करवर पर चढ़ाई की और दोनों ही बार वे उसको नहीं जीत सके[1]।

**हुसैनअली के साथ कुँवर अर्जुनसिंहजी**—फर्रुखसियर के तख्त पर बैठ जाने के बाद बहुत बड़ी सेना लेकर हुसैनअली दक्षिण में विद्रोह को शान्त करने के लिये चला गया। उसके साथ भीमसिंहजी के पुत्र कुँवर अर्जुनसिंहजी भी गये थे। हुसैनअली औरंगाबाद को अपना प्रधान स्थान बना कर रहने लगा और दक्षिण में उसने शान्ति स्थापित की। कुँवर अर्जुनसिंहजी भी उसके साथ औरंगाबाद में श्रावण सम्वत् १७७३ तक रहे[2]।

**बुद्धसिंहजी को बूँदी वापिस मिली**—भीमसिंहजी की सैयद हुसैनअलीखाँ से विशेष मित्रता थी और वह इस समय दक्षिण में था। उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठा कर सवाई जयसिंहजी ने बुद्धसिंहजी को बूँदी वापिस दिलाने का प्रयत्न करना आरम्भ किया। उन्होंने फर्रुखसियर से कहा कि बुद्धसिंहजी शाही फरमान मिलने पर इसलिये दरबार में हाजिर नहीं हुये थे कि उनको बहादुरशाह के देहान्त का अत्यन्त शोक था। यदि अब बुद्धसिंहजी के पास फरमान भेजा जावेगा तो तत्काल शाही दरबार में उपस्थित होंगे। फर्रुखसियर ने सवाई जयसिंहजी की बात मान ली और बुद्धसिंहजी को वापिस बूँदी दिलाने का निश्चय कर लिया। नवाब दिलावरखाँ को शाही सेना के साथ बूँदी पर बादशाह का अधिकार स्थापित करने के लिये रवाना किया गया और उसके साथ सवाई जयसिंह के कामदार को भी भेजा गया। दिलावरखाँ ने बूँदी पर आसानी से अधिकार स्थापित कर लिया और

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३०४९–५०।
(२) कागजात सम्वत् १७७३, सीगा मुतफर्रिकात।

उसको विधिपूर्वक खालसे करके अर्थात् मुगल साम्राज्य में मिला कर फिर तत्काल बुद्धसिंहजी को देदिया। भीमसिंहजी ने जो स्थान स्थान पर अपने थाने स्थापित कर रक्खे थे वे उठवा दिये गये। सम्वत् १७७२ में दिलावरखाँ ने बूँदी के राज्य में बुद्धसिंहजी की दुहाई फिरवादी। इस प्रकार भीमसिंहजी ने बूँदी का जीता हुआ प्रदेश तो सब वापिस कर दिया परन्तु बाराँ और मऊ के परगने जिनकी बूँदी और कोटा के बीच राव माधोसिंहजी के समय से निरन्तर लौटा फेरी हो रही थी और जो इस समय कोटे के अधिकार में थे, वापिस नहीं किये[1]।

**बाराँ और मऊ बुद्धसिंहजी को दिये**—सवाई जयसिंहजी चाहते थे कि अपने बहनोई बुद्धसिंहजी को बाराँ और मऊ के इलाके भी मिल जावें। इस उद्देश्य से वे मालवे से हाड़ौती में आये। इन्द्रगढ़, करवर, बलवन, खातौली आदि के सरदारों से उन्होंने मुलाकात की और यह निश्चय किया कि बुद्धसिंहजी के साथ दिल्ली जाकर बादशाह से आग्रह किया जावे कि भीमसिंहजी से बाराँ और मऊ के परगने भी वापिस दिलाये जावें। इस निश्चय के अनुकूल दिल्ली पहुँच कर बड़ी युक्ति के साथ सवाई जयसिंहजी ने फर्रुखसियर से निवेदन किया कि अर्से से भीमसिंहजी और बुद्धसिंहजी परस्पर लड़ कर क्षीण हो रहे हैं अतः कृपा करके उनके पारस्परिक द्वेष को शान्त करके मेल करवाया जावे। यह सुन कर बादशाह फर्रुखसियर ने भीमसिंहजी के नाम फरमान भेजा कि सवाई जयसिंह के पास जाकर बुद्धसिंह से मेल करो और शाही हुक्म से जो बुद्धसिंह का इलाका छीना गया है, वह वापिस दो[2]। फरमान मिलते ही भीमसिंहजी भयभीत होगये और सवाई जयसिंहजी

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३०५२-५३।

(२) उपरोक्त, पृष्ठ ३०५४-५८।

के पास जाकर बातचीत की। जयसिंहजी ने बाराँ और मऊ वापिस बुद्धसिंहजी को देदेने का और उनके साथ एक थाल में भोजन करने का भीमसिंहजी से प्रस्ताव किया। भीमसिंहजी को पता था कि सवाई जयसिंहजी और फर्रुखसियर दोनों एकमत हैं। भीमसिंहजी का सहायक सैयद हुसैनअली उस समय सुदूर दक्षिण में था, इसलिये उन्होंने यही श्रेयस्कर समझा कि बादशाह की आज्ञा का तत्काल पालन किया जावे। अतः उन्होंने बाराँ और मऊ के परगने वापिस बुद्धसिंहजी को देदिये और बुद्धसिंहजी तथा जयसिंहजी के साथ एक थाल में भोजन किया। यह घटना सम्वत् १७७३ में हुई और इसके कुछ मास बाद ही सैयद हुसैनअली दक्षिण से वापिस आया[1]।

**दिल्ली के पास भीमसिंहजी और बुद्धसिंहजी में लड़ाई ( सं० १७७४ )**—फर्रुखसियर को शाही तख्त से उतार कर बन्दी बना देने के बाद भीमसिंहजी ने सैयद भाइयों को सलाह दी कि सवाई जयसिंह बादशाह का मित्र है और बुद्धसिंह जयसिंह का बहनोई है। इसलिये ये दोनों मिल कर बादशाह को पुनः तख्त पर बिठाने का प्रयत्न करेंगे। अतः बुद्धसिंह को जैसे तैसे मार डालना चाहिये। सैयदों ने यह सलाह मान ली और बुद्धसिंह के डेरे पर जो शहर के पास था, आक्रमण कर दिया। सैयद हुसैनअली के साथ अजीतसिंहजी, भीम-

---

(१) बर जोर आयस साह को सुनि भीम भी जुत धी भई।
जयसिंह के घन रूप डेरन जाय बिन्नति मंडई॥
कछवाह कहि बाराँ मऊ अब छोरि इन लिख दीजिये।
बुंदीससों मिलि सामकैं इकथाल भोजन कीजिये॥
तब साह ओ कछवाह द्वै मन मन्त्र इक्कत जानि कैं।
कोटेस वह तजि देस दीनो लेख कग्गर ठानि कैं॥

—वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३०५६।

सिंहजी और राजसिंहजी भी थे। सैयदों में और बुद्धसिंहजी में घोर संग्राम हुआ। बुद्धसिंहजी लाहौरी दरवाजे से निकल भागे परन्तु उनका सामन्त जैतसिंह और प्रधान जोधराज बड़ी वीरता के साथ लड़ते हुये धराशायी हुये[१]।

खाफीखाँ ने इस लड़ाई का वर्णन और तरह से लिखा है। वह लिखता है कि २२ फरवरी सन् १७१९ (३ रबीउल आखिर) को सैयदों के दबाव में आकर फर्रुखसियर ने राजा जयसिंह और बुद्धसिंह को दिल्ली छोड़कर अपने देश को कूँच करने का हुक्म दिया। राजा जयसिंह ने इस हुक्म के अनुसार दिल्ली से कूँच करके सराई साहिल में अपनी सेना का पड़ाव डाला। इसी दिन राजा भीमसिंह और राजा बुद्धसिंह में जो दोनों चचेरे भाई थे, और जिनमें बूँदी की गद्दी के लिये झगड़ा चल रहा था, लड़ाई हुई। बुद्धसिंह का दीवान और बहुत से राजपूत मारे गये। भीमसिंह को विजय प्राप्त हुई और बुद्धसिंह अपने बचे बचाये सैनिकों को साथ लेकर सराई अल्लावर्दीखाँ को चला गया और अपने सहायक राजा जयसिंह का आश्रय ग्रहण किया[२]।

उपरोक्त लड़ाई का सम्वत् वंशभास्कर में १७७४ दिया हुआ है जो माननीय नहीं है क्योंकि फर्रुखसियर का सम्वत् १७७६ (फरवरी सन् १७१९) में शाही तख्त से उतारा जाना कई फारसी इतिहासों के आधार पर निर्विवाद है। खाफीखाँ का यह कथन भी विश्वसनीय नहीं मालूम होता कि फर्रुखसियर के तख्त से उतारने के एक दिन पूर्व भीमसिंहजी और बुद्धसिंहजी में लड़ाई हुई थी क्योंकि जब सैयद भाई फर्रुखसियर को गद्दी से उतारने के और शाही ताकत अपने हाथ में

---

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३०६५-६७।
(२) i खाफीखाँ: मुन्तखब-उल-लुब्बाब, पृष्ठ ८०६।
ii इर्विन: लेटर मुगल्स, जिल्द १, पृष्ठ ३७६।

लेने के प्रयत्न में थे तो भीमसिंहजी के लिये बुद्धसिंहजी के साथ लड़ कर अपनी शक्ति के व्यय करने का अवसर नहीं था। अतः वंशभास्कर और मुन्तखब-उल-लुब्बाब में दिये हुये इस लड़ाई के वर्णन से यह सारांश निकाला जासकता है कि यह लड़ाई फर्रुखसियर को तख्त से उतार देने के बाद हुई होगी। बुद्धसिंहजी उस समय स्थिति का अध्ययन कर रहे होंगे, और यह प्रतीक्षा करते हुये कि अन्त में विजय फर्रुखसियर की होती है या सैयदों की, दिल्ली के पास अपनी सेना के साथ ठहरे हुये होंगे। फर्रुखसियर के गिरफ्तार होजाने के बाद अपना मार्ग निष्कण्टक करने के लिये सैयदों ने उचित समझा होगा कि बुद्धसिंहजी को दिल्ली से भगा दिया जाय या सम्भव हो तो मार दिया जाय। भीमसिंहजी और उनमें द्वेष था ही। अतः सैयदों ने अपनी कुछ सेना देकर भीमसिंहजी को बुद्धसिंहजी से लड़ने के लिये प्रेरित किया होगा।

**इन्द्रसिंह का सवाई जयसिंहजी से मिलना**—शिवपुर बड़ौदे के रईस इन्द्रसिंह को हराकर उसका देश भीमसिंहजी ने अपने राज्य में मिला लिया था, जिससे अब इन्द्रसिंह इधर उधर मारा मारा फिरता था। जब उसको मालूम हुआ कि सवाई जयसिंहजी बुद्धसिंहजी के कारण भीमसिंहजी के विरुद्ध हैं तो वह सवाई जयसिंहजी के पास आश्रय और सहायता के लिये गया। इस समय सवाई जयसिंहजी का मुकाम टोडा में था। बुद्धसिंहजी भी भीमसिंहजी से दिल्ली के पास हार कर सवाई जयसिंहजी से टोडा में आकर मिले। यहाँ पर इन्द्रसिंह ने दोनों रईसों से अपनी सहायता के लिये बातचीत की[1]। परन्तु बुद्धसिंहजी के सामने स्वयम् अपनी ही समस्या उपस्थित थी। वे भीमसिंहजी से हार चुके थे और अब सैयदों की सहायता से भीमसिंह

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३०७० ।

जी के बूँदी पर आक्रमण करने की पूरी सम्भावना थी। सवाई जयसिंहजी की स्थिति भी दृढ़ नहीं थी। सैयद भाई उनको बादशाह के पक्ष का समझते थे। इसलिये फर्रुखसियर पर दबाव डालकर उन्होंने जयसिंहजी को दिल्ली से विदा करवा दिया था। अब फर्रुखसियर कत्ल किया जा चुका था और साम्राज्य के शासन का सूत्र सैयदों के हाथ में था। अतः सवाई जयसिंहजी भी त्रस्त और आशंकित थे। परन्तु बुद्धसिंहजी की अपेक्षा वे कहीं अधिक नीतिनिपुण और रण कुशल थे। तो भी सवाई जयसिंहजी इन्द्रसिंह को किसी प्रकार की सहायता पहुँचाने में समर्थ नहीं थे।

**बूँदी और आमेर पर आक्रमण की तैयारियाँ और भीमसिंहजी का वैराग्य**—सवाई जयसिंहजी सैयदों के विरुद्ध और तख्त के हकदार बादशाह के पक्षपाती थे। बुद्धसिंहजी में अब स्वयम् न विशेष बुद्धि थी और न वीरता। वे सवाई जयसिंहजी के अनुयायी थे और उन्हीं की सहायता से उन्हें बूँदी वापिस मिली थी। अतः बुद्धसिंहजी उनके बहुत कृतज्ञ थे। सैयदों को डर था कि सवाई जयसिंहजी और बुद्धसिंहजी मिलकर शायद कुछ विद्रोह खड़ा करदें। इसलिये उन्होंने महाराजा अजीतसिंहजी और भीमसिंहजी से इस विषय में सलाह की और दोनों को आदेश किया कि अपने अपने देश जाकर सेना सजाकर जयसिंह और बुद्धसिंह दोनों पर चढ़ाई करके उनको मार दिया जावे जिससे भविष्य निष्कण्टक हो। इस आदेश को पाकर महाराजा अजीतसिंहजी अपने देश को लौटे और आमेर पर चढ़ाई करने की तैयारी करने लगे। महाराव भीमसिंहजी सैयदों से विदा होकर अपने देश को लौटते हुये जब ब्रजभूमि में पहुँचे तो उनको एकाएक वैराग्य उत्पन्न होगया। वृन्दावन में उन्होंने गुसाईं जी सेदीक्षा

प्राप्त की और चाँदी का तुलादान किया। अपना नाम कृष्णदास रख लिया और बृजनाथजी के सेवक कहलाने लगे। कोटे का नाम नन्दगाँव और शेरगढ़ का नाम बरसाना जारी किया गया। व्रजभूमि में बहुत से ब्राह्मणों को भोजन करवाया और बहुत सा दान दिया। कोटा नगर बृजनाथजी के अर्पण कर दिया और स्वयम् व्रजभूमि में एकान्त सेवन करने लगे[1]।

**कोटा पर सालमसिंह की चढ़ाई**—जब भीमसिंहजी को इस प्रकार १५ दिन एकान्त सेवन करते हुये होगये तो उनके विषय में कई प्रकार की अफवाहें उड़ने लगीं। कोई कहता था रोगी हैं और कोई कहता था उनका देहान्त होगया। भीमसिंहजी भजन में मग्न थे। उन्होंने स्वयम् अपने विषय में कोटे कोई खबर नहीं भेजी। अतः कोटे के कर्मचारी भी विश्वास करने लगे कि शायद उनका देहान्त होगया। १८ वीं शताब्दी में आवागमन के साधनों की कमी के कारण ऐसी खबरें प्रायः फैल जाती थीं। अतः कोटे में लोगों को भय होने लगा कि बूँदी की सेना कहीं कोटे पर आक्रमण नहीं करदे। इस प्रकार भयभीत होकर कोटे की रक्षा के लिये कर्मचारीगण तैयारी करने लगे। शहरपनाह पर तोपें सजादी गई और शत्रु का सामना करने के लिये सैनिक तैयार कर लिये गये। ये तैयारियाँ की जा रही थीं कि राजकर्मचारियों की आशंका भी पूरी होगई। सालमसिंह सेना सजा कर कोटे पर चढ़ आया और राज्य में लूट मार करने लगा। इस समय सालमसिंह बूँदी का दीवान था। बुद्धसिंहजी ने बादशाह की सहायता से बूँदी वापिस मिलने पर उसको इस पद पर नियत कर दिया था। बुद्धसिंहजी तो इधर उधर मारे मारे फिरते थे परन्तु सालमसिंह ने बूँदी में बहुत अच्छी

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३०७१।

व्यवस्था स्थापित करदी थी[1]। यही कारण था कि उसकी चढ़ाई से कोटे के कर्मचारी इतने भयभीत होगये थे। कोटे की रक्षा का संचालन कोयले के आप अजबसिंहजी ने अपने हाथ में लिया था और सालमसिंह का मुकाबला करने के लिये सब तैयारियाँ करके शहरपनाह के दरवाजे बन्द कर दिये गये थे। सालमसिंह ने सैनिक दृष्टि से कोटा नगर पर आक्रमण करना उचित नहीं समझा इसलिये वह इलाके में लूटमार करने लगा। इस समय कोटे के कर्मचारियों के सामने बड़ी विकट समस्या उपस्थित थी। सब राजसेना एक प्रकार से नायकहीन थी। अजबसिंहजी के साहस से नगर रक्षा का प्रबन्ध होगया था परन्तु इलाका सालमसिंह की लूटमार से बरबाद होता जाता था और यह भय था कि इलाका नष्ट होजाने पर नगर की रक्षा अधिक समय तक नहीं हो सकेगी।

**भीमसिंहजी की चढ़ाई**—जब भीमसिंहजी को मालूम हुआ कि सालमसिंह कोटे के राज्य में लूट मार कर रहा है तो उनको बड़ा आवेश आया और भगवत्कीर्तन छोड़ कर फिर उन्होंने राज्य की रक्षा के लिये तथा आततायी के दमन के लिये तलवार उठाई। गोकुल से कूँच करके बहुत जल्द वे कोटे आ पहुँचे और देखा कि शहरपनाह की प्रत्येक बुर्ज पर तोपें सजी हुई हैं और रन्ध्रों में जम्बूर लगे हुये हैं तथा दरवाजों में घुसने की या उनमें से निकलने की सख्त मुमानियत है। भीमसिंहजी जब कोटे पहुँचे तो रात्रि का समय था। द्वारपाल ने दरवाजा नहीं खोला बल्कि उनके साथ सेना देख कर सनसनी फैल गई और नगर रक्षकों ने समझा कि सालमसिंह चढ़ आया। जब भीमसिंहजी ने द्वारपालों को बहुत आश्वासन दिलाया तब आप

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३०७१–७२।

अजबसिंहजी बुलाये गये। उन्होंने महाराव भीमसिंहजी की आवाज पहचान ली और दरवाजा खुलवा कर उनका स्वागत किया। भीमसिंहजी के आगमन से नगरनिवासियों को बहुत सन्तोष हुआ और लोगों को विश्वास होगया कि अब कोटे को कोई नहीं छीन सकता। भीमसिंहजी बड़े सतर्क सैनिक थे और युद्ध संचालन में समय के महत्त्व को खूब समझते थे। अतः वे रात में कोटे पहुँचे और दूसरे दिन प्रातःकाल ही उन्होंने सालमसिंह पर चढ़ाई कर दी। इस समय सालमसिंह कोटे के आटोण परगने में लूटमार कर रहा था। जब भीमसिंहजी वहाँ पहुँचे तो उन्होंने देखा कि सालमसिंह के पास बहुत बड़ी सेना है; परन्तु भीमसिंहजी शत्रुपक्ष की प्रबलता से घबराने वाले नहीं थे उन्होंने सालमसिंह के साथ प्राणपण से संग्राम करने का निश्चय कर लिया। दूसरे दिन आटोण के पास सालमसिंह से घोर युद्ध हुआ जिसमें वह परास्त होकर बूँदी की ओर भाग गया[1]।

**भीमसिंहजी की बूँदी पर चढ़ाई**—सालमसिंह को परास्त करके तथा अपने राज्य को निष्कण्टक बना कर ही भीमसिंहजी सन्तुष्ट नहीं हुये। वे जानते थे कि जयसिंहजी और बुद्धसिंहजी उनके विरुद्ध मन्त्रणा करने में लगे हुये हैं और शिवपुर बड़ौदे का रईस इन्द्रसिंह भी सवाई जयसिंह के पास ठहरा हुआ अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है। अतः आशंका थी कि मौका मिलते ही सालमसिंह पुनः कोटे पर आक्रमण कर देगा। यही कारण था कि भीमसिंहजी ने आटोण के पास विजयश्री प्राप्त करके फौरन सालमसिंह का पीछा करते हुये बूँदी पर चढ़ाई कर दी। सालमसिंह ने बूँदी पहुँच कर नगर रक्षा का प्रबन्ध किया और दरवाजे सब बन्द करवा दिये। इधर

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३०७२–७४।

भीमसिंहजी ने नगर के घेरा डाल कर गोलों की वर्षा करना आरम्भ किया। कुछ काल तक तो सालमसिंह भीमसिंहजी के आक्रमण को सहता रहा परन्तु वह एक बार पहले उनसे हार चुका था अतः उसकी सेना में लड़ने के लिये उत्साह और उमंग नहीं थी। वह एक दिन इस प्रकार नगर रक्षा का प्रयत्न करके फिर बूँदी को छोड़ भागा और झलाय जाकर उसने सवाई जयसिंहजी का आश्रय ग्रहण किया। भीमसिंहजी ने विजयी होकर बूँदी में प्रवेश किया, नगर को लूटा, जलाया और फिर फाल्गुण शुक्ला ७ सम्वत् १७७६ के दिन बूँदी में अपनी दुहाई फेर कर शासन स्थापित किया। तदनन्तर बूँदी के सब देश पर अपना राज्य स्थापित करके तथा बूँदी की लूट का बहुतसा धन अपने साथ लेकर वे वापिस कोटे आये[1]।

**सालमसिंह को धमकी**—इतने पर भी सालमसिंह ने साहस नहीं छोड़ा। झलाय में बैठा हुआ वह पुनः बूँदी पर बुद्धसिंहजी का अधिकार स्थापित करने का प्रयत्न करता रहा और मौका पाकर बूँदी राज्य में कभी कभी प्रवेश करके लूट खसोट करने लगा। सालमसिंह साधारण पुरुष नहीं था। वह वीर था और निपुण प्रबन्धक भी। अतः भीमसिंहजी भी उसकी गतिविधि को सतर्क देखा करते थे। बार बार उस पर सेना चढ़ा कर लेजाना सम्भव नहीं था और साथ ही उस पर विजय प्राप्त करना भी अवश्यम्भावी नहीं था। अतः बूँदी पर अपना राज्य स्थापित कर लेने पर भी भीमसिंहजी को सालमसिंह के कारण चिन्ता बनी रहती थी। इस कारण सालमसिंह का पूर्णरूपेण दमन करने के लिये भीमसिंहजी ने सैयदों की सहायता ली। इस समय चिनकुलीचखाँ निजाम-उल-मुल्क का दमन करने के लिये सैयद

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३०७४-७५।

भाइयों को भीमसिंहजी के सहयोग और साहाय्य की आवश्यकता थी अतः सैयदों ने दिलावरअलीखाँ और नरवर नरेश गजसिंह को भारी सेना के सहित रवाना किया। भीमसिंहजी की सेना इस सेना के साथ मिल जाने पर इनका पक्ष इतना प्रबल होगया था कि चालीस हजार सैनिकों का भी सफलतापूर्वक सामना किया जासकता था। दिलावरखाँ स्वयम् शाही सेना का बख्शी था इसलिये उसने अपने साथ छटे हुये सैनिक और सवार लिये थे। इस तैयारी से अनुमान किया जा सकता है कि सालमसिंह को भीमसिंहजी ही नहीं परन्तु सैयद भाई भी कितना बलवान् समझते थे। यह प्रबल सेना सालमसिंह के साथ युद्ध करने के लिये नहीं किन्तु उस पर आतंक जमाने के लिये तथा उसको धमकाने के लिये रवाना की गई थी[1]। इसका परिणाम यह हुआ कि सालमसिंह ने बूँदी पर पुनः अधिकार स्थापित करने का प्रयत्न छोड़ दिया और भीमसिंहजी, निष्कण्टक रूप से बूँदी के नरेश माने जाने लगे।

## भीमसिंहजी और मुगल दरबार

**भीमसिंहजी पर बहादुरशाह का क्रोध**—तख्त पर बैठने के बाद बहादुरशाह ने भीमसिंहजी के प्रति क्रोध प्रकट किया। शाही मतालबा बढ़ा दिया। कुँवर अर्जुनसिंहजी को शायद माँगरोल की फौजदारी से हटा दिया और पेशकशी की बहुत भारी रकम कायम की[2]। इतना ही करके वह सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने बुद्धसिंहजी को इजाजत दे दी कि कोटे का राज बूँदी में मिला लिया जावे। राजपूताने

---

(१) खाफीखाँ, पृष्ट ८४४-८५१।

(२) कागजात सम्वत् १७६९, बस्ता नं० २८।

पर दूसरी चढ़ाई करते समय कामबख्श का दमन करके दक्षिण से वापिस लौटते हुये बहादुरशाह कोटा राज्य में होकर गुजरा था। ५ अप्रैल सन् १७१० को दरे की नाल में होकर उसने कोटे के राज्य में प्रवेश किया और २८ अप्रैल को लाखेरी की घाटी में होकर वह रवाना हुआ। इस प्रकार तेईस दिन तक बहादुरशाह कोटे के राज्य में रहा[1]। इस मौके पर भीमसिंहजी ने बहादुरशाह से निवेदन किया था कि उनके राज्य में बहुत से परगनों की मामलत घटा दी जावे, बादशाह के रास्ते में जो गाँव आवें, उनमें लूट खसोट न की जावे, पेशकशी माफ़ की जावे, और माँगरोल में कुँवर अर्जुनसिंहजी को फौजदार रहने दिया जावे[2]। यह पता नहीं चलता कि बादशाह ने इस दरख्वास्त को किस हद तक मन्जूर किया था।

**जजिया संग्रह में कठोरता**—बहादुरशाह के जमाने में कोटा राज्य के परगनों से जजिया वसूल करने में विशेष कठोरता की जाती थी। कस्बा आटोण के निवासियों ने भीमसिंहजी से इस विषय में रक्षा के लिये प्रार्थना भी की थी परन्तु वे क्या कर सकते थे? उन्होंने केवल यही उत्तर दिया कि यदि आसपास के इलाके जजिया देते हों तो आटोण के लोगों को भी देना चाहिये। वास्तव में जजिया विधिपूर्वक तो बन्द नहीं की गई थी परन्तु औरंगजेब के अन्तिम समय से ही यह पूरी वसूल नहीं हुआ करती थी। देश के किसी भाग से वसूल होजाती थी और किसी से नहीं। कोटा राज्य में शायद बहादुरशाह ने खास सख्ती करने का हुक्म दिया होगा[3]।

(१) कामबारखाँ : तजकिरात अस्सलातीन चगतैया।

(२) कागजात सम्वत् १७६९, बस्ता नं० २८।

(३) कागजात सम्वत् १७६७।

**जहाँदारशाह और भीमसिंहजी**—बहादुरशाह के मरने पर जहाँदारशाह गद्दी पर बैठा। उसने केवल एक वर्ष के लगभग राज्य किया। उसको गद्दी पर बिठाने में और विजय प्राप्त करवाने में भी बुद्धसिंहजी ने सहायता दी थी। अतः वह भी कोटे पर क्रूर दृष्टि रखता था। फिर भी उसने भीमसिंहजी को कोटे का राजा मान लिया था और उनके नाम तथा कुँवर अर्जुनसिंहजी के नाम इस विषय के फरमान भेजे थे। सम्भवतः एक फरमान में भीमसिंहजी को कोटे का राजा और दूसरे में अर्जुनसिंहजी को माँगरोल का फौजदार माना गया होगा[1]। जहाँदारशाह ने बकाया मामलत जमा करने की भीमसिंहजी से ताकीद की थी। उस समय कोटा, साँगोद, बड़ौद, आवाँ, घाटी, घाटोली, और खाताखेड़ी के परगनों की मामलत के २,१८,६३,११२ दाम अर्थात् ५,४६,५७५) रुपये बाकी थे। यह बकाया केवल सात परगनों की थी[2]। इससे अनुमान किया जा सकता है कि कोटा राज्य के परगनों की मामलत बहादुरशाह ने कितनी बढ़ा दी थी। जहाँदार-शाह ने केवल दस महीने और पच्चीस दिन राज्य किया। ११ फरवरी सन १७१३ को वह मारा गया और फर्रुखसियर सैयद भाइयों की सहायता से शाही तख्त पर बैठा।

**मुगल दरबार में भीमसिंहजी का सम्मान**—बहादुरशाह और जहाँदारशाह दोनों भीमसिंहजी से रुष्ट थे। जब फर्रुखसियर तख्त पर बैठा तो उसकी भी कृपा प्राप्त होने की भीमसिंहजी को कोई आशा नहीं थी, इसलिये राजनैतिक दृष्टि से भीमसिंहजी ने सैयद भाइयों का पक्ष ग्रहण करना अधिक उपयोगी और लाभदायक समझा। फर्रुखसियर आरम्भ में सैयदों के हाथ की कठपुतली था। सैयद भाई जिसको

(१) कागजात सम्वत् १७६९।
(२) उपरोक्त,।

चाहते थे उसको बादशाह द्वारा सम्मानित या अपमानित करवा सकते थे। सैयदों की कृपा बादशाह की कृपा मानी जाती थी, और उनका कोप बादशाह का कोप। सैयदों का पक्ष ग्रहण करने से भीमसिंहजी का शाही दरबार में बहुत सम्मान बढ़ गया। उनको पंजहजारी मन्सबदार बना दिया गया और बूँदी राज्य, पठार अर्थात् माँडलगढ़ से बूँदी तक के इलाके और खींचीवाड़े तथा उमटवाड़े का उनको पट्टा दे दिया गया[1]। इसी अवसर पर गागरोण का किला भी उनके सुपुर्द किया गया[2]। इसके बाद शाही दरबार में भीमसिंहजी के सम्मान की चर्चा सर्वत्र होने लगी और सब नरेश उनको अधिक आदर की दृष्टि से देखने लगे[3]।

**शाही दरबार में प्रपञ्च**—तख्त पर बैठने के १५ दिन बाद तक तो फर्रुखसियर और सैयदों में प्रेम बना रहा परन्तु फिर मतभेद प्रगट होने लगा। उच्च पदों पर नियुक्ति करने में, जहाँदारशाह के अमीरों की सम्पत्ति के अपहरण करने में और अन्य कई महत्वपूर्ण कार्यों में सैयद भाई न फर्रुखसियर से परामर्श करते थे और न उसकी सम्मति मानते थे। सैयदों के आकस्मिक अभ्युदय के कारण शाही दरबार के बड़े बड़े अमीर भी उनसे द्वेष करते थे। परन्तु सैयदों का पक्ष भी बहुत प्रबल था। अतः शाही दरबार में दो पार्टियाँ बनने लग गई थीं। सैयदों के पक्ष में महाराजा अजीतसिंह जी और महाराव भीमसिंहजी थे और फर्रुखसियर के पक्ष में महाराजा जयसिंहजी और बुद्धसिंहजी। सैयदों में और फर्रुखसियर में कभी अन-

(१) टॉड: राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५५५।

(२) फर्रुखसियर का फरमान (पुराने दफ्तर में)।

(३) दिल्लीशसम्मानितबाहुवीर्य्यः।
वैद्यनाथ (उदयपुर) के—मन्दिर की प्रशस्ति, प्रकरण ५।

बन होती थी और कभी मेल; परन्तु फर्रुखसियर को यह शिकायत निरन्तर बनी रहती थी कि शासन का सूत्र सैयदों ने पूर्णरूप से अपने हाथ में ले रक्खा है। उधर सैयद समझते थे कि फर्रुखसियर एकमात्र उन्हीं की सहायता से तख्त पर बैठ सका है। अतः शासन का संचालन करना उनका अधिकार है। इस मतभेद के कारण दोनों पक्षों का पारस्परिक द्वेष उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। इस आशा से बादशाह ने महाराजा जयसिंहजी को दिल्ली बुलाया और उनसे एकान्त में परामर्श करना चाहा। अजीतसिंहजी फर्रुखसियर के श्वसुर थे अतः उसको आशा थी कि कठिनाई के समय में वे सहायता देंगे। अजीतसिंहजी बुलाने से दिल्ली तो चले गये परन्तु बादशाह से एकान्त में बातचीत करने से उन्होंने इन्कार कर दिया और सैयदों के पक्ष में बने रहना ही अपने लिये हितकर समझा[१]। महाराव भीमसिंहजी निरन्तर सैयदों के साथ रहे। वे महाराजा अजीतसिंहजी से प्रायः पत्र व्यवहार किया करते थे[२]। ऐसा मालूम होता है कि अजीतसिंह जी ने बादशाह फर्रुखसियर से एकान्त में मिलने से जो इन्कार किया था, उसमें भीमसिंहजी की भी सलाह होगी।

**शाही दरबार में भीमसिंहजी के विरुद्ध प्रपञ्च**—सैयद हुसैनअली ज्योंही दक्षिण को रवाना हुआ त्योंही उसके भाई अब्दुल्ला के विरुद्ध फर्रुखसियर ने प्रपञ्च रचने आरम्भ कर दिये। बादशाह अधिकतर शिकार में रहने लगा और किसी न किसी प्रकार अब्दुल्ला को मार डालने के दाँव पेंच सोचने लगा। इधर अब्दुल्ला भी फर्रुखसियर

(१) i इरविन: लेटर मुगल्स, जिल्द १, पृष्ठ ३४८–५१।
ii वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३०५०।

(२) कागजात सम्वत् १७७६, कासिदों का खर्च।

की चालों को भाँप गया और सचेत होकर आत्मरक्षा के निमित्त अपने साधनों को सुदृढ़ करने लगा। इसी अर्से में अर्थात् २० मार्च सन् १७१६ को फर्रुखसियर ने राजा जयसिंहजी को फरमान भेज कर दिल्ली बुलवाया। ये उस समय मालवे में सूबेदार थे। वहाँ से रवाना होकर बूँदी में अनेक जागीरदारों से मिलते हुये बुद्धसिंहजी को साथ लेकर वे १४ जून को दिल्ली के पास सराई अलावर्दीखाँ में पहुँचे। दो दिन बाद बादशाह के बहुत बड़े अमीर शमसुद्दौला ने उनका स्वागत किया। फर्रुखसियर सवाई जयसिंहजी से अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मिला और उनका बड़ा सम्मान किया। वे लगभग दो मास तक दिल्ली ही रहे। इस अर्से में उन्होंने फर्रुखसियर को बुद्धसिंहजी के दुख की कहानी सुनाई कि सैयदों ने भीमसिंहजी को उत्तेजित करके बुद्धसिंहजी को राज्यभ्रष्ट कर दिया है और आश्रयहीन होकर वे इधर उधर मारे मारे फिर रहे हैं और सम्राट् ही उनकी सहायता कर सकता है[1]। फर्रुखसियर को अपना पक्ष प्रबल करने के लिये सवाई जयसिंहजी की सहायता की आवश्यकता थी। उसने यह भी समझा होगा कि समय पड़ने पर बुद्धसिंहजी भी उपयोगी सिद्ध होंगे। जब अजीतसिंहजी ने अकेले मिलने से इन्कार किया था तब ही से फर्रुखसियर समझ चुका था कि भीमसिंहजी सैयदों के सहायक हैं और शाही पक्ष कभी ग्रहण नहीं करेंगे। अतः फर्रुखसियर ने जयसिंहजी की बात मान ली और शाही सेना के साथ दिलावरखाँ और सवाई जयसिंहजी के दीवान को तत्काल रवाना कर दिया जिन्होंने बूँदी बुद्धसिंहजी के सुपुर्द करदी[2]।

(१) i खाफीखाँ—जिल्द २, पृष्ठ ७७१।
ii मिर्जा मुहम्मद—तजकिरा या इबरतनामा, पृष्ठ २६०–७५, २९३–३०२।
iii कामवरखाँ: तजकिरात अस्सलातीन चगतैया, पृष्ठ १६३–६५।

(२) वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३०५२–५३।

**फर्रुखसियर के विरुद्ध सैयदों की तैयारियाँ**—जब सैयद हुसैनअली को औरंगाबाद में खबर मिली कि फर्रुखसियर अपनी शक्ति को दृढ़ कर रहा है और सैयद अब्दुल्ला का जीवन सुरक्षित नहीं है तो वह पच्चीस हजार सवार, दस हजार पैदल और बहुत बड़ा तोपखाना अपने साथ लेकर दिल्ली की ओर रवाना हुआ। उसकी सेना में बालाजी विश्वनाथ पेशवा भी था जिसके साथ मराठों की बहुत बड़ी सेना थी। उसकी कूँच की सूचना पाकर फर्रुखसियर बहुत भयभीत हुआ। उसने हुसैनअली के नाम फरमान भेजा कि उसे दक्षिण में ही ठहरना चाहिये[1]। परन्तु हुसैनअली तेजी के साथ दिल्ली की ओर बढ़ता ही रहा। जब उसकी सेना मेवाड़ में होकर निकली तो आरम्भ में कुछ लूट मार हुई परन्तु फिर बन्द कर दी गई। जयपुर राज्य के गाँव बहुत लूटे गये। यहाँ तक कि स्त्रियाँ और बच्चे भी सैनिक लोग छीन कर अपने साथ लेगये। जयपुर की ओर से हुसैनअली के पास नजर भेजी गई परन्तु वह स्वीकार नहीं कीगई और लूट खसोट जारी रही। इस प्रकार कूँच करती हुई हुसैनअली की विपुल सेना जब देहली के निकट पहुँची तो फर्रुखसियर त्रस्त होगया। फिर भी उसको यह विश्वास बना रहा कि आपत्ति अवश्य टल जायगी। उधर हुसैनअली बढ़ता आरहा था। इधर सैयद अब्दुल्ला भी अपने पक्ष को प्रबल कर रहा था।

**भीमसिंहजी ने सैयदों का पक्ष ग्रहण किया**—सैयद अब्दुल्ला ने महाराव भीमसिंहजी और महाराजा अजीतसिंहजी को जो पहिले से ही सैयदों के पक्ष में थे, अब दृढ़ रूप से अपना सहायक बना लिया[2]। १६ फरवरी सन् १७१९ को हुसैनअली की सेना दिल्ली से दो कोस

(१) खाफीखाँ—मुन्तखब-उल-लुब्बाब, पृष्ठ ७९४–८०३।
(२) मिर्जा मुहम्मद: तजकिरा, पृष्ठ ४४५।

के अन्तर पर वजीराबाद पहुँची। शहर के बाहर सैनिकों ने खेत, गाँव और दुकानें सब निर्दयतापूर्वक लूटलीं। हुसैनअली फर्रुखसियर का कुछ विचार न करके निरन्तर नौबत बजवाता हुआ राजधानी में घुसा और सीधा अपने मकान को चला गया। इस व्यवहार को देख कर सम्पूर्ण नगर में आतंक छागया और सब नागरिकगण त्रस्त हृदय से विकराल भविष्य की प्रतीक्षा करने लगे। फर्रुखसियर इतना घबरा गया था कि उसने हुसैनअली के अशिष्ट व्यवहार पर कुछ ध्यान नहीं दिया बल्कि उसको मनाने के लिये प्रतिदिन पान, फल और इत्र आदि की भेंट भेजता रहा, और मीठे मीठे सन्देशे कहलाता रहा। हुसैनअली का अभिमान अब इतना बढ़ गया था कि वह बड़े कठोर उत्तर देता रहा। बड़े बड़े अमीर हुसैन अलीखाँ का पक्ष ग्रहण करने लगे और फर्रुखसियर की शक्ति तीव्र वेग से क्षीण होने लगी[1]।

**महाराव भीमसिंहजी षड्यन्त्र में सम्मिलित हुये**—१९ फरवरी सन् १७१९ को महाराव भीमसिंहजी, महाराजा अजीतसिंहजी और कुतुबुल्मुल्क हुसैनअलीखाँ से मिले। इनमें बहुत अर्से तक बातचीत हुई और कार्य रेखायें निश्चित की गईं। हुसैनअली को सबसे अधिक भय मुगलों का था क्योंकि ये लोग फर्रुखसियर के बड़े भक्त थे। मुगल पार्टी का नेता मुहम्मद अमीनखाँ था। यह फर्रुखसियर के लिये बड़े दुर्भाग्य की बात थी कि मुहम्मद अमीनखाँ भी उससे असन्तुष्ट था। उसी दिन यह हुसैनअली के पास आया और प्रस्ताव किया कि फर्रुखसियर को तख्त से उतार दिया जावे। अब हुसैनअली को अपनी शक्ति

(१) i मिर्जा मुहम्मद: तजकिरा, पृष्ठ ४४७।
ii कामवरखाँ: तजकिरात अस्सलातीन चगतैया, पृष्ठ १८९।
iii खाफीखाँ—मुन्तखब-उल-लुब्बाब पृष्ठ ८०४।

पर पूर्ण विश्वास होगया और उसको पता चल गया कि बादशाह का पक्ष अत्यन्त निर्बल है[1]। हुसैनअली ने यह भी प्रसिद्ध कर रक्खा था कि उसके साथ एक शाहजादा है जो शाही तख्त का हकदार है। इससे फर्रुखसियर और भी अधिक घबराया। बादशाह के अफसर सन्धि करवाने के लिये रोज आने जाने लगे। हुसैनअली वास्तव में किसी प्रकार की सन्धि करने के लिये तैयार नहीं था। सवाई जयसिंहजी ने फर्रुखसियर से स्पष्ट कह भी दिया था कि हुसैनअली से सन्धि होना असम्भव है। उन्होंने कहा था कि यदि बादशाह की इच्छा हो तो मैं अपने बीस हजार सैनिकों के साथ सैयदों पर आक्रमण कर सकता हूँ और मेरे शरीर में श्वास रहेगा तब तक मैं लड़ूँगा। जयसिंहजी को विश्वास था कि और भी अनेक अमीर बादशाह का साथ देंगे। वे चाहते थे कि चाहे बादशाह हार जाय परन्तु ऐसे अवसर पर कायरता नहीं प्रगट की जावे[2]।

**सवाई जयसिंहजी को बिदा**—फर्रुखसियर में इतना साहस नहीं था कि सवाई जयसिंहजी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता। उसको अब तक यह आशा बनी हुई थी कि सैयद अनुकूल हो जावेंगे। अतः वह निरन्तर उनके साथ समझौता करने के प्रयास में लगा हुआ था। हुसैनअली ने फर्रुखसियर से कहलाया कि पहिले राजा जयसिंहजी को तथा राव बुद्धसिंह को अपने २ वतन को विदा कर दिया जावे तब समझौते की बातचीत की जासकती है। कुतुबुलमुल्क ने भी बादशाह को सलाह दी कि यह बात मानली जावे। अतः फर्रुखसियर ने २२ फरवरी

(१) इरविन: लेटर मुगल्स, जिल्द १, पृष्ठ ३७४।

(२) i मिर्जा मुहम्मद: तजकिरा, पृष्ठ ४४९।

ii खाफीखाँ: जिल्द २, पृष्ठ ८०५।

को अपने हाथ से जयसिंहजी तथा बुद्धसिंहजी के नाम हुक्म लिखकर भेजा कि अगला दिन उनके प्रस्थान के लिये शुभ है, इसलिये उनको रवाना होजाना चाहिये। बिदा की खिलत भी दोनों रईसों के लिये भेजदी और कहला दिया कि इजाजत हासिल करने के लिये रूबरू हाजिर होने की आवश्यकता नहीं है। सवाई जयसिंहजी हुक्म को पढ़कर सैयदों की चाल को समझ गये परन्तु फर्रुखसियर अब उनकी सलाह सुनने के लिये बिल्कुल तैयार नहीं था। अतः विवश उन्होंने दिल्ली से प्रस्थान कर दिया। अब सैयदों को किसी का भय नहीं रहा। महाराव भीमसिंहजी और अजीतसिंहजी उनके साथ थे ही। इसके अतिरिक्त मराठों की भारी सेना भी दिल्ली में पड़ी हुई थी। मुगल लोगों का नेता सैयदों से पहिले ही आ मिला था। उधर फर्रुख-सियर के साथ कोई उल्लेखनीय अमीर नहीं था[1]।

**शाही किले में भीमसिंहजी का प्रवेश**—२७ फरवरी को प्रातः काल कुतुबुलमुल्क ने शाही किले में प्रवेश किया। उसके साथ महाराव भीमसिंहजी, राजा अजीतसिंहजी और राजा गजराजसिंहजी थे। शाही पहरेदार और गोलन्दाज हटा दिये गये और उनके स्थान पर सैयदों के विश्वसनीय आदमी नियत किये गये। हुसैनअलीखाँ ने शहर में स्थान स्थान पर सैनिक नियत कर दिये। कितनी ही गलियों में मराठों को नियत किया और महल के दरवाजों पर भी मराठे घुड़सवार खड़े करदिये गये। सायंकाल होते २ फर्रुखसियर ने कहलाया कि मैं सैयदों की सब शर्तें स्वीकार करने के लिये तैयार हूँ; परन्तु सैयद किसी प्रकार की शर्त के इच्छुक नहीं थे। साथ ही बादशाह के बड़े बड़े

(१) i कासवरखाँ: तजकिरात अस्सलातीन चगतैया, पृष्ठ १९१।
ii खाफीखाँ: जिल्द २, पृष्ठ ८०६।

अफसर उसका साथ छोड़ कर भागने लगे। यह खबर तमाम नगर में फैलगई जिससे सर्वत्र आतंक छागया। अन्त में फर्रुखसियर ने महाराजा अजीतसिंहजी से सहायता के लिये प्रार्थना की। उसकी धारणा थी कि अजीतसिंहजी उसके श्वसुर हैं, इसलिये शायद वे संकट के समय में उस की रक्षा करें। इस समय फर्रुखसियर विपन्नावस्था में था और घोर संकट के कारण वह इस बात को भूल गया था कि अजीतसिंहजी विवश होकर उसके श्वसुर बने थे, स्नेह से प्रेरित होकर नहीं। बल्कि वे इस सम्बन्ध को अपने लिये घोर कलंक मानते थे। फर्रुखसियर ने अजीतसिंहजी को लिखा कि जमुना की तरफ महल की पूर्वी बाजू पर सैयदों का कोई पहरा नहीं है। यदि आप अपने कुछ आदमी वहाँ बिठादें तो मैं उधर से भागकर कहीं चला जाऊँ। यह पत्र बादशाह ने एक आदमी के हाथ भेजा। अजीतसिंहजी ने उत्तर दिया कि अब समय निकल गया। अब मैं क्या कर सकता हूँ? इस पत्रव्यवहार की खबर भी सैयदों तक पहुँच गई और जमुना की तरफ कड़ा पहरा बिठा दिया गया।

**फर्रुखसियर को तख्त से उतार कर बन्दी बना लिया**—२८ फरवरी सन् १७१९ को शाहजादा रफीउद्दरजात को तख्त पर बिठाने का और फर्रुखसियर को तख्त से उतारने का सैयदों ने निश्चय कर लिया। इस समय शाही महल पर सर्वत्र सैयदों का अधिकार था और बादशाह अपने प्राणों की रक्षा करने के लिये अन्तःपुर में छिपा हुआ था। जब बहुत समझाने बुझाने पर भी वह बाहर नहीं आया तो सैयदों ने राजा रत्नचन्द्र, राजा बख्तमल, नजमुद्दीनअलीखाँ और दिलदारखाँ के नेतृत्व में ४०० पठानों को अन्तःपुर में घुसने का और फर्रुखसियर को पकड़ लाने का हुक्म दिया। जब ये लोग हरमखाने में घुसे तो सशस्त्र तुर्की स्त्रियों ने वीरतापूर्वक सामना किया जिनमें से

कितनी ही मारी गईं और कितनी ही घायल हुईं। फर्रुखसियर एक छोटे से कमरे में छिपा हुआ था। जब उसका दरवाजा तोड़ा गया तो वह अपने जीवन से निराश होकर तलवार हाथ में लिये हुये बाहर आया और आततायियों पर कितने ही वार किये परन्तु अब क्या हो सकता था ? वह लड़ता भी तो कितनों से लड़ता। अन्त में उसकी माता, स्त्री, पुत्री और अन्य महिलाओं ने उसे चारों ओर से घेर लिया और अत्यन्त दीनतापूर्वक आक्रमणकारियों से उसके प्राणों की भिक्षा माँगी। परन्तु सिपाहियों ने इन देवियों को एक तरफ ढकेल दिया। फर्रुखसियर को घसीटा और बाहर ले आये। कुतुबुल्मुल्क ने दीवाने खास में उसकी आँखें फुड़वाई और किले में उसको कैद कर दिया।

**बेगमों की करुणावस्था**—हरमखाने में बेगमों के सोने और मोतियों के जेवर ही नहीं उतराये गये बल्कि चाँदी, ताँबा और पीतल के बरतन तक लूट लिये गये और अन्तःपुर की दासियों और उपपत्नियों को माल असबाब की भाँति विजेता लोग लेगये। अजीतसिंहजी के कहने पर उनकी लड़की इन्द्रकुँवर जिसका डोला फर्रुखसियर को भेजा गया था, सैयदों ने उनके सुपुर्द करदी। इन्द्रकुँवर ने हिन्दू विधि से अपनी शुद्धि करवाई और पुनः हिन्दू पोशाक पहन ली। लगभग एक करोड़ निजी सम्पत्ति लेकर वह अपने पिता के साथ जोधपुर चली गई। इससे कट्टर मुसलमानों को बड़ा असन्तोष हुआ, परन्तु शान्ति स्थापन करने के लिये सैयदों को अजीतसिंहजी की सहायता की आवश्यकता थी। अतः विवश होकर उनको अजीतसिंहजी की बात माननी पड़ी[१]।

(१) i कामवरखाँ: तजकिरात अस्सलातीन चगतैया पृष्ठ १९४।

ii खाफीखाँ: जिल्द २, पृष्ठ ८१४ व ८३३।

**भीमसिंहजी को बूँदी पर चढ़ाई करने की आज्ञा मिली—** फर्रुखसियर के गिरफ्तार होते ही सवाई जयसिंहजी और बुद्धसिंहजी का शाही दरबार में प्रभाव निःशेष होगया। भीमसिंहजी बूँदी पर चढ़ाई करने के अवसर की प्रतीक्षा में थे। फर्रुखसियर ने जयसिंहजी के प्रपञ्च में पड़ कर जिस प्रकार बूँदी वापिस बुद्धसिंहजी को दिलाई थी, उसको भीमसिंहजी नहीं भूल सकते थे। सैयदों की विजय होने पर भीमसिंहजी ने उनसे कहा कि अब कोई उपद्रव कर सकता है तो जयसिंह और बुद्धसिंह ही कर सकता है। सैयदों के यह बात समझ में आगई और भीमसिंहजी को इजाजत देदी गई कि बूँदी को छीन कर अपने राज्य में मिला लें।

**आगरे में नेकुस्सियर तख्त पर बैठा—** फर्रुखसियर को तख्त से उतार देने पर देश में कई प्रकार की अफवाहें फैलने लगीं। सैयदों को इस बात का भय था कि आमेर के राजा सवाई जयसिंहजी, अलाहाबाद का सूबेदार राजा छबेलाराम और नवाब निजामुल्मुल्क मिलकर कुछ उपद्रव करेंगे। इस समय शाही खानदान आगरे में कैद था और सैयदों को यह डर था कि जीवित शाहजादों में से कोई तख्त का हकदार न खड़ा कर दिया जावे। अन्त में मित्रसेन नामक एक ब्राह्मण वैद्य ने सवाई जयसिंहजी, राजा छबेलाराम और निजामुल्मुल्क से मिल कर १८ मई सन् १७१९ को आगरे में नेकुस्सियर को तख्त पर बिठा दिया। नेकुस्सियर ने मित्रसेन को राजा बीरबल की पदवी प्रदान की और सात हजारी मन्सबदार बनाया। शाही खजाने में से एक करोड़ रुपया निकाल कर सैनिकों में वितरण कर दिया। आगरे में गैरतखाँ के मकान पर जो सैयदों का नाजिम था, गोलाबारी शुरू हुई। गैरतखाँ ने वीरतापूर्वक शत्रुओंका सामना किया और तत्काल दिल्ली खबर भेजी[1]।

(१) खाफीखाँ: जिल्द २, पृष्ठ ८२८।

**भीमसिंहजी आगरा पहुँचे**—आगरे से नेकुस्सियर के तख्त पर बैठने की खबर मिलते ही महाराव भीमसिंहजी और चूड़ामण जाट को गैरतखाँ की रक्षा के निमित्त आगरा भेजा गया। इनके साथ तीन बड़े बड़े मुसलमान उमराव भी रवाना किये और गैरतखाँ को पत्र लिखा गया कि उसकी रक्षा के लिये दिल्ली से और सेना शीघ्र ही भेजी जावेगी[1]। भीमसिंहजी और चूड़ामण जाट के आगरे पहुँचने पर गैरतखाँ और अधिक साहस से लड़ने लगा और नेकुस्सियर का पक्ष निर्बल होने लगा। उधर सवाई जयसिंहजी आमेर से प्रस्थान करके टोडा तक तो आगये परन्तु वहाँ से आगे नहीं बढ़े। अपनी सेना का पड़ाव डाल कर राजा छबेलाराम और निजामुल्मुल्क की प्रतीक्षा करने लगे। छबेला-राम के सूबे में उसी समय एक बलवा होरहा था इसलिये वह नहीं आसका और निजामुल्मुल्क ने इस विषय की कुछ चिन्ता ही नहीं की क्योंकि वह अपने व्यक्तिगत लाभ के आयोजन में लगा हुआ था। २३ जून सन् १७१९ को दिल्ली से रवाना होकर हुसैनअलीखाँ आगरे पहुँचा और उसने किले को घेर लिया। १२ अगस्त को नेकुस्सियर ने आत्मसमर्पण कर दिया। तब भीमसिंहजी आगरे से वापिस कोटा आये[2]।

**सैयदों ने मुहम्मदशाह को तख्त पर बिठाया**—रफीउद्-रजात राजयक्ष्मा का रोगी था और अफीम बहुत खाया करता था। तख्त पर बैठते समय उसकी आयु केवल २० वर्ष की थी परन्तु रोग और व्यसनों के कारण वह क्षीण होता जाता था। कुछ मास में ही

(१) i कामराज: इबरतनामा, पृष्ठ ६८ ए इरविन: लेटर मुगल्स जिल्द १, पृष्ठ ४१३ पर उद्धृत।
ii कागजात सम्वत् १७७६।

(२) खाफीखाँ जिल्द २, पृष्ठ ८३६।

यह मालूम होने लगा कि उसका अन्त समय दूर नहीं है। अपनी दशा असाध्य समझ कर उसने स्वयम् सैयदों से कहा कि यदि मेरे स्थान पर मेरे भाई रफीउद्दौला को बिठा दिया जावे तो मेरा शेष जीवन शान्ति से कटेगा। अतः सैयदों ने ४ जून सन् १७१९ को रफी-उद्दरजात को तख्त से उतार कर हरमखाने में भेज दिया और दीवाने आम में रफीउद्दौला को तख्त पर बिठा दिया। सात दिन बाद अर्थात् ११ जून सन् १७१९ को रफीउद्दरजात इस संसार से चल बसा। उसने केवल तीन महीने और नो दिन राज्य किया था। रफीउद्दौला बहादुरशाह का तृतीय पुत्र था और रफीउद्दरजात से केवल १८ महीने ही बड़ा था। वह भी सैयदों के हाथ में पूर्णरूप से कठपुतली था। सैयद उसके प्रत्येक कार्य की निगरानी करते थे। यहाँ तक कि उसके भोजन और पोशाक का भी निरीक्षण हुआ करता था। अपने भाई की भाँति वह भी रोगी और क्षीण था। तख्त पर बैठने पर उसने अफीम छोडने का प्रयास किया परन्तु इससे वह और भी अधिक बीमार होगया और १८ सितम्बर सन् १७१९ को उसका देहान्त होगया। उसने ४ महीने और १६ दिन राज्य किया। इसकी मृत्यु के पश्चात् सैयदों ने बहादुरशाह के पोते, शाहजादा रौशनअख्तर को नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह बादशाह गाजी के नाम से तख्त पर बिठाया।

**बुद्धसिंहजी ने छबेलाराम को सहायता दी**—अलाहाबाद का सूबेदार छबेलाराम नागर सैयदों के विरुद्ध था। फर्रुखसियर को तख्त से उतार देने के बाद वह आगरा आकर नेकुस्सियर की सहायता करना चाहता था परन्तु उसके सूबे में उसी समय एक राजपूत ने विद्रोह खड़ा कर दिया था, इससे उसको अपने ही सूबे में रुकना पड़ा। इस विद्रोह को दबाने के बाद उसने सैयदों के विरुद्ध विद्रोह करने

की तैयारी करना शुरू किया और अपने पक्ष को प्रबल करने के लिये बुद्धसिंहजी को तथा शत्रुशाल बुन्देला को अपने साथ मिलने के लिये बुलाया। बुद्धसिंहजी सैयदों के विरुद्ध थे ही। अब सैयदों ने भीमसिंहजी को बूँदी पर चढ़ाई करने की इजाजत दे दी थी और सालमसिंह को हरा कर उन्होंने बूँदी पर अधिकार कर लिया था। बुद्धसिंहजी को अब एकमात्र सहारा सवाई जयसिंहजी का था। अभी बूँदी को वापिस लेने का प्रयत्न उन्होंने छोड़ा नहीं था, परन्तु साथ ही वे समझते थे कि जब तक सैयदों के हाथ में शक्ति है तब तक बूँदी उनको वापिस नहीं मिल सकती। अतः जब छबेलाराम ने उनको विद्रोह में शामिल होने के लिये आमन्त्रित किया तो वे दस हजार सवारों के साथ उसमें जा मिले[१]।

**बूँदी पर शाही सेना की चढ़ाई**—जब सैयदों ने सुना कि बुद्धसिंहजी छबेलाराम के साथ जा मिले तो उन्होंने १७ नवम्बर सन् १७१९ को बूँदी पर शाही सेना चढ़ादी। हुसैनअली के फौज बख्शी दिलावरअलीखाँ को पन्द्रह हजार चुने हुये सवारों के सहित रवाना किया गया। इसी सेना के साथ भीमसिंहजी और नरवर के राजा गजसिंहजी भी थे और दोनों रईसों के साथ अपनी अपनी सेनायें अलग थीं। १२ फरवरी सन् १७२० को दिल्ली खबर पहुँची कि महाराव भीमसिंहजी और दिलावरअलीखाँ की राव बुद्धसिंहजी के चाचा के साथ एक बड़ी लड़ाई हुई जिसमें बुद्धसिंहजी का काका मारा गया और उसके साथ लगभग छः हजार राजपूत काम आये[२]।

(१) इरविन: लेटर मुगल्स, जिल्द २, पृष्ठ १०-११।

(२) i खाफीखा: जिल्द २, पृष्ठ ८४४-८५१।

ii कामवरखाँ: पृष्ठ २१६-१८।

**शाही सेना का वास्तविक उद्देश्य**—दिलावरखाँ के साथ सैयदों ने जो सेना भेजी थी उसका मुख्य उद्देश्य वास्तव में भीमसिंहजी की सहायता करना नहीं था बल्कि निजामुल्मुल्क पर चढ़ाई करना था[1]। भीमसिंहजी बूँदी को पहिले ही अधिकृत कर चुके थे। शाही सेना की चढ़ाई से भीमसिंहजी की विजय की पुष्टि अवश्य हुई और सालमसिंह की शक्ति निःशेष होगई परन्तु यह भीमसिंहजी को और अधिक कृतज्ञ करने के लिये सैयदों की चाल थी। इस समय निजा-मुल्मुल्क ने सैयदों की आज्ञा मानना छोड़ दिया था और उनका विरोध करने की तैयारियाँ कर रहा था। उसका दमन करने के लिये सैयदों को भीमसिंहजी की सहायता की आवश्यकता थी और यह शाही सेना वास्तव में उसके विरुद्ध कूँच करने के लिये संगठित की गई थी। दिल्ली से दक्षिण जाने के लिये कोटा राज्य में होकर मार्ग था ही। अतः दिलावरखाँ को यह हुक्म दिया गया था कि सालमसिंह को तम्बीह करके महाराव भीमसिंहजी और गजसिंहजी के साथ वह अपनी सेना का पड़ाव मालवा प्रान्त की सीमा पर डाले रहे और दिल्ली से दूसरे हुक्म की प्रतीक्षा करता रहे। इस अवसर पर भीमसिंहजी को वचन दिया गया था कि निजामुल्मुल्क का दमन होने के पश्चात् उनको उच्च कोटि का महाराजा बनाया जावेगा, सात हजारी मन्सब दिया जावेगा,

---

(१) हुसेनअली सय्यद वजीर, सुनि एह बंटि जर।
नाम दिलावरखान, मुगल पिल्लयो तिंहिं ऊपर॥
नरउर पति गजसिंह, संग सहसेन दयो सजि।
कोटापति प्रति पत्र, त्वरित लिखवाय गब्ब तजि॥
मारहु कलीजखानहिं मरद, खानदलावर संग रहि।
जयसिंह जेर पिच्छैं करहिं, यह करि जेर कलीज अहि॥

वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३०७७।

और सात हजार सवारों का अफसर नियत किया जावेगा। साथ ही उनको शाही मरातिब भी मिलेगा[1]।

**निजामुल्मुल्क दक्षिण का सूबेदार बना**—चिनकुलीजखाँ निजामुल्मुल्क ने औरंगजेब के शासनकाल में बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। इसके पिता ने और इसने मराठों के साथ संग्राम करने में बड़ी वीरता दिखाई थी, जिससे प्रसन्न होकर औरंगजेब ने पिता और पुत्र दोंनों को बहुत सम्मानित किया था। औरंगजेब के उत्तराधिकारियों ने उसका यथोचित मान नहीं किया जिससे निजामुल्मुल्क निरन्तर असन्तुष्ट रहने लगा। बहादुरशाह की सेवा भी इसने विमन होकर ही की और दो बार त्यागपत्र तक दे दिया। फर्रुखसियर को तख्त पर बिठाने में और जहाँदारशाह को परास्त करने में इसका बड़ा हाथ था। इस सेवा के पुरस्कार स्वरूप फर्रुखसियर ने तख्त पर बैठते ही उसको दक्षिण का सूबेदार बना दिया था। दक्षिण की सूबेदारी को वह अपने लिये स्वतन्त्र रईस बनने की प्रथम सीढ़ी समझता था। इसलिये बड़े उत्साह के साथ वह दक्षिण पहुँचा और अपने शासन को सुसंगठित और सुव्यवस्थित करने लगा।

---

(१) हुसनअलीखाँ दर तहरीके असबाब शोरिश दर आमदा बा महाराव भीमसिंह अहदो पेमां दरमियान आवुर्द कि बाद तम्बीह सालमसिंह जमीदार बूँदी व इनसिरामे कारे निजामुल्मुल्क ब रुतबये वालाये महाराजगी बि रसद व बाद मरातवए महाराजा अजीतसिंह मरतए उ बरहमां राजहा फायक बाशद। मन्सबे हफ्त हजारी हफ्त हजार सवार व माही मरातिब दादः ओरा व राजा गजसिंह नरवरी व दिलावर अलीखाँ वगैरः रा बा फौजे पाँजदह हजार सवार जर्रार ताय्युन कर्द कि तम्बीह व इखराज सालमसिंह रा दस्त आवेज साख्ता अज अहवाल निजामुल्मुन्क खबरगीरां बाशन्द।

—खाफीखाँ: जिल्द २, पृष्ठ ८५१।

**उसका सैयदों से वैमनस्य**—परन्तु सैयद भाई भी सोये हुये नहीं थे। निजामुल्मुल्क जैसे शक्तिशाली अमीर की हरकतों को वे सचेत और सावधान होकर देख रहे थे। उनको आसानी से पता चल गया था कि निजामुल्मुल्क किसी गुप्त उद्देश्य की पूर्त्ति में संलग्न है। अतः निजामुल्मुल्क दक्षिण की सूबेदारी छः महीने भी नहीं कर पाया था कि सैयद हुसैनअली उसके स्थान पर नियत कर दिया गया और उसको मुरादाबाद भेज दिया गया। कुछ दिवस फर्रुखसियर की इच्छा से वह दिल्ली में भी रहा परन्तु सैयदों को यह रुचिकर नहीं था कि वह बादशाह के सान्निध्य में रहे। अतः उसकी शक्ति को क्षीण करने के लिये उसको बिहार का सूबेदार बना कर पटना भेज दिया गया। वह पटना के लिये प्रस्थान भी नहीं कर पाया था कि फर्रुखसियर को सैयदों ने षड़यन्त्र रचकर महाराव भीमसिंहजी तथा महाराजा अजीत सिंहजी की सहायता से तख्त से उतार दिया और मरवा डाला। इस समय मालवा की सूबेदारी खाली थी अतः निजामुल्मुल्क को हुक्म दिया गया कि पटना जाने के बजाय वह मालवा जाकर सूबेदारी का काम आरम्भ करे। इस प्रकार की लौटा फेरी से निजामुल्मुल्क अत्यन्त असन्तुष्ट था। मालवा जाने के लिये तो वह तैयार होगया परन्तु उसने यह शर्त करली कि मालवे से उसको नहीं हटाया जावे। सैयदों ने यह शर्त स्वीकार करली और १५ मार्च सन् १७१९ को उसने मालवे की ओर कूँच कर दिया।

**लड़ाई की तैयारी**—मालवा पहुँच कर निजामुल्मुल्क सेना में नई भर्ती करने लगा और कोष को बढ़ाने लगा। इस खबर को सुन कर सैयदों को चिन्ता हुई। निजामुल्मुल्क से उन्होंने जवाब तलब किया। उसके उत्तर से सैयदों को सन्तोष नहीं हुआ और उसके नाम

फरमान भेजा गया कि वह मालवे को छोड़ कर अकबराबाद, अलाहाबाद, मुलतान और बुरहानपुर इन चार सूबों में से किसी एक की सूबेदारी पर जा सकता है। इस फरमान के पहुँचने से पहले ही चिनकुलीजखाँ को पता चल गया था कि दिलावरअलीखाँ महाराव भीमसिंहजी और राजा गजसिंहजी के साथ बहुत बड़ी सेना लेकर मालवा की सीमा पर पड़ाव डाले हुये हैं। उसको यह भी मालूम था कि इन तीनों सेनानायकों को यह हुक्म दिया गया है कि सालमसिंह को तम्बीह करने के बाद वे निजामुल्मुल्क की हरकतों का निरीक्षण करते रहें और दिल्ली से दूसरे हुक्म की प्रतीक्षा करें। प्रत्यक्ष में दिलावरअलीखाँ यह कहता था कि मैं नवाब हुसैनअलीखाँ के परिवार को लिवाने के लिये औरंगाबाद जारहा हूँ; परन्तु निजामुल्मुल्क इन चालों को भलीभाँति समझता था। अतः वह सैयदों का मुकाबला करने की तैयारी करने लगा।

**निजामुल्मुल्क और मुहम्मदशाह का षड़यन्त्र**—निजामुल्मुल्क को उसके चचेरे भाई ने सूचित करदिया था कि नेकुस्सियर और छबेलाराम का दमन करने के बाद सैयदों का इरादा दक्षिण पर चढ़ाई करने का है। उधर मुहम्मदशाह सैयदों के व्यवहार से अधिकाधिक असन्तुष्ट होता जाता था क्योंकि सैयदों ने उसको केवल राजसी चिन्हों से अलंकृत कर रक्खा था और सम्पूर्ण राजसत्ता अपने हाथ में ले रक्खी थी। अतः उसने तथा उसकी माता ने निजामुल्मुल्क को सैयदों के विरुद्ध और उकसाया और बादशाह को उनके चंगुल से मुक्त करने के लिये प्रेरित किया[1]। इस भाँति उत्साहित होकर निजामुल्मुल्क सैनिक तैयारी करने लगा और सैयदों के हुक्म को कोई न

(१) खाफीखाँ: जिल्द २, पृष्ठ ८५०-५२।

कोई बहाना करके टालता रहा। उसने अपने मित्रों को सहायता के लिये सर्वत्र पत्र लिखे और उज्जैन की ओर कूँच किया। असीरगढ़ के किलेदार को रिश्वत देकर किला अपने कब्जे में कर लिया।

**भीमसिंहजी की निजामुल्मुल्क पर चढ़ाई**—सैयदों को निजामुल्मुल्क का पहले ही भय था। अब प्रगट ही होगया कि वह लड़ाई की तैयारियाँ कर रहा है। अतः सैयदों ने उसके विरुद्ध सेना संचालन करने का आदेश किया। उस समय औरंगाबाद में आलिम अलीखाँ नामक सूबेदार था जो सैयदों के पक्ष में था। उसके नाम हुक्म भेजा गया कि तुम औरंगाबाद से उत्तर की ओर निजामुल्मुल्क पर चढ़ाई करो। उत्तर की तरफ मालवे की सीमा पर भीमसिंहजी, गजसिंहजी और दिलावरअलीखाँ की सेना का पड़ाव पहिले ही पड़ा हुआ था। इनके नाम हुक्म हुआ कि तुम दक्षिण की ओर बढ़ो। इस प्रकार सैयद चाहते थे कि दक्षिण से आलिमअलीखाँ और उत्तर से महाराव भीमसिंहजी आदि चढ़ कर निजामुल्मुल्क को बीच में घेर लें। आलिमअलीखाँ तीस हजार सवारों के साथ ७ जून सन् १७२० को उत्तर की ओर रवाना हुआ [१]। इस समय निजामुल्मुल्क ने देवगढ़ में अपनी सेना का पड़ाव डाल रक्खा था और वर्षा ऋतु वहीं बिताना चाहता था। परन्तु जब उसने सुना कि आलिमअलीखाँ औरंगाबाद से रवाना होगया है तो वह भी उसका मुकाबला करने के लिये दक्षिण की तरफ बढ़ा और ताप्ती पार करके बुरहानपुर के पास उसने अपनी सेना के डेरे डाले। इसी समय उसको खबर मिली कि दिलावरअलीखाँ, भीमसिंहजी और गजसिंहजी अति शीघ्र गति से बढ़े चले आरहे हैं और बुरहानपुर

(१) i खाफीखाँ: जिल्द २, पृष्ट ८७४।

ii मआसिर-उल-उमरा: प्रथम जिल्द, पृष्ट ३५२।

से लगभग २८ मील तक आपहुँचे हैं। निजामुल्मुल्क जानता था कि आलिमअलीखाँ को हराना कठिन नहीं है परन्तु दिलावरअलीखाँ और दोनों राजपूत रईस बहुत शक्तिशाली हैं अतः पहले उनका मुकाबला करना चाहिये[1]। इस निश्चय के अनुकूल निजामुल्मुल्क ने अपना परिवार और असबाब तो असीरगढ़ में रक्खा और दिलावरअलीखाँ का मुकाबला करने के लिये उत्तर की ओर कूँच किया। गयासखाँ और शेख मुहम्मदशाह फर्रुखी के नेतृत्व में अपना तोपखाना उसने आगे भेज दिया और स्वयम् पीछे से १५ जून को रवाना हुआ। बुरहानपुर से २७ मील उत्तर पहुँच कर उसने अपनी सेना का पड़ाव लगाया। यहाँ से दिलावरखाँ का खेमा लगभग ६ मील के अन्तर पर था। निजामुल्मुल्क ने सन्धि का प्रस्ताव किया जो दिलावरखाँ ने स्वीकार नहीं किया[2]।

**भीमसिंहजी की सेना**—दिलावरखाँ सैयदों का फौज बख्शी था इसलिये वह अपने साथ चुने हुये छः हजार सवार लाया था। महाराव भीमसिंहजी के साथ लगभग दो हजार राजपूत थे जो सब शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित थे औरं कवच पहने हुये थे। इसके अतिरिक्त नरवर के राजा गजसिंहजी के साथ तीन हजार राजपूत थे। दोस्तमुहम्मद खाँ रुहेला भी साढ़े तीन हजार सैनिकों के साथ सेना में सम्मिलित हुआ था। इस प्रकार सैयद पक्ष की सम्पूर्ण सेना लगभग तेरह हजार थी[3]।

**पन्धार की लड़ाई**—१९ जून सन् १७२० को निजामुल्मुल्क चार कोस आगे बढ़ा और फिर अपनी सेना की व्यवस्था की। गयासखाँ

(१) खाफीखाँ: जिल्द २, पृष्ठ ८७५।

(२) खाफीखाँ—जिल्द २, पृष्ठ ८७५।

(३) उपरोक्त, पृष्ठ ८७७।

हरावल का अफसर नियत किया गया और उसकी मातहती में शेख मुहम्मदशाह और नूरुल्ला फर्रुखी को रक्खा। दायीं और बायीं तरफ बड़े बड़े मुसलमान अमीर नियत किये। बीच में मुतवासिलखाँ और इस्माइलखाँ आदि विश्वसनीय वीर खड़े हुये। सेना के पृष्ठ भाग की रक्षा का भार रुस्तमबेगखाँ को सौंपा गया [1]। उधर दिलावरखाँ ने निजामुल्मुल्क के लश्कर से पूर्व की तरफ एक ऊँचे मैदान पर कब्जा किया। अपना असबाब उस मैदान के पीछे छिपा कर उसने अपने सेनाग्र भाग को सैयद शेरखाँ और बाबरखाँ के नेतृत्व में आगे बढ़ाया। इस भाग में तीन हजार सवार और आठ हजार बन्दूकची थे। फिर प्रधान सेना के आगे हाथी पर बैठ कर दिलावरखाँ आगे बढ़ा। उसके एक तरफ महाराव भीमसिंहजी अपने हाथी पर सवार थे और दूसरी तरफ गजसिंहजी।

**भीमसिंहजी की वीरता**—१९ जून सन् १७२० को मध्याह्न बाद युद्ध आरम्भ हुआ। सब से पहले तोपखाने ने अग्नि वर्षा आरम्भ की। गयासखाँ और ऐवजखाँ ने दो तरफ से दिलावरखाँ पर आक्रमण किया परन्तु ऐवजखाँ जख्मी होकर रणक्षेत्र से हट गया। इसके बाद घमासान युद्ध हुआ जिसमें शेरखाँ और बाबरखाँ जो सैयद पक्ष के दो वीर योद्धा थे, मारे गये। यह देखकर दिलावरअलीखाँ ने स्वयम् विपक्ष दल के मध्य भाग पर आक्रमण करना आरम्भ किया। वह कुछ ही आगे बढ़ने पाया था कि उसकी छाती में गोली लगी और तत्काल उसका प्राणान्त होगया। उसी के साथ कितने ही वीर सैयदों की लाशों का ढेर लग गया। दिलावरअलीखाँ और अधिकांश सैयद सैनिकों के मारे जाने पर भी महाराव भीमसिंहजी और राजा गजसिंहजी

---

(१) i खाफीखाँ: जिल्द २, पृष्ट ८७६।
ii मआसिर-उल-उमरा: जिल्द ३, पृष्ठ ८७७।

रणक्षेत्र में दृढ़तापूर्वक डटे रहे। भीमसिंहजी हाथी पर बैठे हुये थे और बृजनाथजी की प्रतिमा सामने हौदे में स्थापित थी। शत्रु का सामना करते हुये तथा अपने चित्त को ईश्वर में लीन किये हुये वे आगे बढ़ते जाते थे। अकस्मात् उनके गोला लगा और उन्हें वीरगति प्राप्त हुई[1]।

**गजसिंहजी की वीरता**—तब भी गजसिंहजी ने रणाङ्गण नहीं छोड़ा। वे हाथी से उतरे और लगभग पचास भ्रातृ सैनिकों के साथ उन्होंने शत्रुसेना के अग्र भाग पर भयंकर आक्रमण किया जिस में वे मारे गये। फिर भी चार सौ राजपूत और बचे हुये मुसलमान अपने सरदारों के साथ वीरगति प्राप्त करने के लिये मैदान में डटे रहे।

---

(१) **मुनि हय सत्तरू इक्क सक, (१७७७ वि०) जेठरू पूर्णम दीह।**
**पर्‌यो दिलावरखान रए, सहित भीम गजसिंह॥**
**मारि हजारन भीम जिमि, पर्‌यो भीम चौहान॥**

—वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३०७९।

दरहमा गर्मी दारोगीर दिलावरअलीखाँ कि दिलावराना फील सवारह मुकाबिले फौज कोल जमीयत कम मुशाहिदा नमूदा ब कमाल जुरअत रसीदा बूद गोलये बन्दूक बदो रसीद व कारे उ साख्ता शुद व फौजे बारहा व दोस्तमुहम्मद अफगान जमीदार रोहेला रू ब हजीमत गुजाश्तन्द। राजा भीम व राजा गजसिंह आरे फरार बर खुद हमवार न नमूदा बदस्तूर तहव्वुर पेशगान जान सिपारे हिन्दोस्तान बा राजपूताने जाँनिसार अज फील व असपान फरोद आमदन्द व शमशीर व सिपर दर दस्त गिरफ्ता हमला आवर गरदीदा कारबर हरावल व दीगर फौज तंग आवुर्दा दादे दिलावरी मी दादन्द मरहेमतखाँ बहादुर सफे नवर्द अज जानिबे चप बहादुराना वरौं साख्त आवुर्दा चुनाँ शर्त तहव्वुरी ब कार बुर्द कि हर दो राजपूत नामी बाद तरद्दुदे नुमायां कि जाये सद आफरीन दाश्त। बा करीब चहार सद राजपूत दीगर व बाजे जमाहादारान बारहा मजमुये चहार व पंच हजार सवार व पियादा अलफे तेग व तअमये तीर व सिनाँने मुगलाने शेर नवर्द गरदीदन्द।

—खाफीखाँ: जिल्द २, पृष्ट ८८०।

सम्पूर्ण सेना इस अद्भुत वीरता के साथ लड़ती हुई उच्छिन्न हो गई और निजामुल्मुल्क को विजयश्री प्राप्त हुई [१]।

**भीमसिंहजी निजामुल्मुल्क के पगड़ी बदल भाई थे—** महाराव भीमसिंहजी और चिन्कुलीजखाँ दोनों पगड़ी बदल भाई थे। अतः चिन्कुलीजखाँ ने युद्ध आरम्भ होने से पहले ही उनको पत्र लिखा था कि अपनी घनिष्ठ मैत्री का स्मरण करके आपको मेरा सामना नहीं करना चाहिये परन्तु भीमसिंहजी ने उसकी बात नहीं मानी और सैयदों की आज्ञा का पालन करना अपने लिये अधिक श्रेयस्कर समझा। इसका कारण यह था कि सैयदों ने भीमसिंहजी की बहुत प्रतिष्ठा बढ़ाई थी और बुद्धसिंहजी के तथा सवाई जयसिंहजी के संयुक्त प्रपञ्चों से ही नहीं बचाया था बल्कि बूँदी पर अपना अधिकार स्थिर करने में भी उनको सहायता दी थी। अतः भीमसिंहजी सैयदों के बहुत कृतज्ञ थे और इसी कारण वीरतापूर्वक अन्त समय तक लड़ कर उन्होंने अपनी कृतज्ञता का क्षत्रियोचित परिचय दिया था।

---

(१) i इरविन: लेटर मुगल्स, जिल्द २, पृष्ठ २८–३१।

ii टॉड: जिल्द २, पृष्ट ५५६–५७।

iii वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३०७८–७९।

दूसरे लेखक ने भीमसिंहजी की वीरगति का अन्य प्रकार से वर्णन किया है। भीमसिंहजी ने निजामुल्मुल्क के हरावली अफसर गयासखाँ पर आक्रमण किया। उन्हीं के साथ गजसिंहजी थे। दोनों अपने हाथियों पर से उतर पड़े। घोड़ों पर सवार हुये और दो हजार राजपूतों के साथ आगे बढ़ कर शत्रुसेना से जा भिड़े। कुरेशबेग और ख्वाजा मासूम ने इनका बहादुरी के साथ सामना किया; परन्तु दो हजार राजपूतों के सामने जिनको राव भीमसिंह अपनी नक्कारे की आवाज से जोश दिला रहा था ये क्या कर सकते थे? भीमसिंहजी और कुरेशबेग दोनों में खूब लड़ाई हुई। कुरेशबेग असंख्य घावों से आहत होकरे मारा गया लेकिन भीमसिंह को मार कर।

**राज्य विस्तार**—महाराव भीमसिंहजी ने देहान्त से पूर्व अपने राज्य को बहुत विस्तृत कर लिया था। उनका राज्य उत्तर में नैणवा से दक्षिण में नरसिंहगढ़ तक और पश्चिम में बूँदी राज्य की पूर्वी सीमा से पूर्व में थाने तक फैला हुआ था। यह सब उनके बाहुबल का फल था। आरम्भ में तो उनकी स्थिति बहुत नाजुक थी इसलिये केवल परगना कोटे के सिवाय सब राज्य बूँदी को देकर वे सन्तोष करना चाहते थे। परन्तु फिर उनका भाग्य चमका और अपने राज्य को विस्तृत तथा समृद्ध अवस्था में देखने के बाद उनका देहान्त हुआ। भीमसिंहजी ने बूँदी के अतिरिक्त अनेक शहर और कस्बे जीते थे जिनमें विशेष उल्लेखनीय निम्नलिखित हैं:—

राजगढ़, नरसिंहगढ़, राघोगढ़, खिलचीपुर, नया किला, शाहाबाद, गागरोण, भँवरगढ़, भीमगढ़, खण्डेला, सीसोदियों की ऊमरी, भदोरा, डिगडोली, वसीई, गागरोणी, चाचोरनी, गंगधार, डग, पिड़ावा, आवर, सुनारा, भानपुर, गरोठ, सणीजा आदि[1]।

**बूँदी राज्य कोटे में मिलाया गया**—देहान्त से पूर्व बूँदी राज्य को उन्होंने कोटा राज्य का एक अंश बना दिया था। बूँदी की दूसरी विजय के समय अर्थात् फाल्गुण शुक्ला चतुर्थी सम्वत् १७७६ को उन्होंने बूँदी में कोई राजसी चिन्ह नहीं छोड़ा। वे बूँदी के महल का छत्र उतरवा कर कोटे ले आये जो राजमहल के ऊपर लगाया गया। धूलधाणी और कड़क बीजली नामक दो तोपें बूँदी से लाकर कोटे के किले पर रक्खी गई। बूँदी के छत्रमहल की ड्योढ़ी के किवाड़ कोटे में बोलसिरी की ड्योढ़ी पर लगाये गये। कई नौबत और नक्कारों की जोड़ियाँ वहाँ से लाकर कोटे के नक्कारखाने में रक्खी

(१) ठाकुर लक्ष्मणदानजी।

गई। बूँदी के राजमहल के दरवाजे के हाथी कोटे में हथियाँ पोल पर लगाये। सारे बूँदी राज्य पर अपना प्रभुत्व स्थापित करके वहाँ अपना प्रतिनिधि भगवानदास धाभाई को नियत किया।

**शिवपुर बड़ौदे का विजय**—सम्वत् १७७५ में परगना शोपुर बड़ौदा को विजय करने के लिये सेना भेजी गई थी। वहाँ कई दिन तक किले का घेरा जारी रहा। फिर सुरंग लगा लगा कर दुर्ग का ध्वंस कर डाला[1]। इस इलाके का स्वामी इन्द्रसिंह राज्य भ्रष्ट होकर सवाई जयसिंहजी के पास सहायता तथा आश्रय के लिये गया परन्तु भीमसिंहजी के जीवन काल में वह अपना राज्य पुनः प्राप्त नहीं कर सका[2]।

**उनका मुसलमान सेनानायक**—गुलमीरखाँ पठान उनका सेनानायक था। उसके नेतृत्व में कई हजार पठान सैनिक थे। इसके अतिरिक्त उनके जागीरदार और उमराव भी अपने सवारों के साथ उनकी सेना में सम्मिलित होते थे। स्वयम् भीमसिंहजी अनेक घोर युद्धों में सफलतापूर्वक सम्मिलित होकर अद्भुत रणपाण्डित्य प्राप्त कर चुके थे।

**मनोहरथाना विजय**—इस समय मनोहरथाना भीलों के अधिकार में था। भील राजा चक्रसेन यहाँ पर राज्य करता था और दूर दूर के भील उसको अपना मुखिया मानते थे तथा उसके पास पांच सौ सवार और ८०० तीरन्दाज सदैव रक्षार्थ रहा करते थे। इस हिस्से पर कई सदियों से निरन्तर भील राज्य कर रहे थे परन्तु भीमसिंहजी ने राजा चक्रसेन को हरा कर भगा दिया और मनोहरथाना अपने राज्य

---

(१) कागजात सम्वत् १७७५।

(२) वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३०७०।

में सम्मिलित कर लिया[१] । चक्रसेन मनोहरथाने से भाग कर मालवे में चला गया जहाँ उसके वंशज मानधाता औंकारनाथ में अब तक राज्य करते हैं ।

**उमटवाड़ा विजय**—भीलों को जीतने के बाद भीमसिंहजी ने उमटवाड़े पर आक्रमण किया । राजगढ़, नरसिंहगढ़ और पाटण के राजाओं को हरा कर उनसे अधीनता स्वीकार करवाई और कर लेना शुरू किया । इन रियासतों के रईस भीमसिंहजी के समय से अर्थात् सन् १७१९ से १८१८ तक पूर्णरूप से कोटे के मातहत थे । इन रियासतों में गद्दीनशीनी कोटा नरेश की इजाजत से हुआ करती थी और आवश्यकता पड़ने पर कोटे की सेना में इनको सम्मिलित होना पड़ता था ।

**शाहाबाद विजय**—उस समय शाहाबाद का इलाका खाँडेराव नामक सनाढ्य ब्राह्मण के अधीन था । खाँडेराव का पिता नरवर का सेना नायक था । अपने स्वामी की निर्बलता और मराठों के आक्रमणों से लाभ उठा कर उसने शाहाबाद का परगना दबा लिया था और अपने लिये एक छोटा सा राज्य स्थापित कर लिया था । भीमसिंहजी जैसे महत्त्वाकांक्षी नरेश के सान्निध्य में ऐसे छोटे राज्य का अस्तित्व रहना कठिन था । उन्होंने उस पर सेना चढ़ाई और आसानी से वहाँ अपना अधिकार स्थापित कर लिया । अमरसिंह धंधेड़ा खाँडेराव का मित्र था। विजय के पश्चात् कोटा राज्य में अमरसिंह को वे रिआयतें नहीं दी गई जो खाँडेराव दिया करता था । इसलिये उसने शाहाबाद पर हमला कर दिया[२], परन्तु शाहाबाद के हवालगीर ने उसका वीरतापूर्वक मुकाबला किया और शीघ्र शान्ति स्थापित कर दी ।

(१) टॉड : राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ५५५ ।

(२) कागजात सम्वत् १७७१ ।

**विस्तृत राज्य और भीमसिंहजी का आयोजन**—भीमसिंहजी के विषय में उस समय लोग अनुमान करते थे कि वे अपने एक पुत्र को बूँदी का, दूसरे को कोटे का और तीसरे को शेपुर बड़ौदे का राज्य देकर स्वयम् मालवे में अपनी एक पृथक राजधानी स्थापित करना चाहते हैं। भीमसिंहजी ने विस्तृत राज्य जमा लिया था और लगभग ३४०० गाँवों पर तथा कई नगर, कस्बे और किलों पर उनका अधिकार था। अतः सम्भव है उन्होंने इस प्रकार की योजना का कभी विचार किया हो[1]। भीमसिंहजी के शासन काल में कोटा राज्य जितना विस्तृत होगया था उतना न पहले कभी हुआ था और न पीछे हुआ। उस समय उपजाऊ भूमि, समृद्ध नगर और सुदृढ़ दुर्गों की दृष्टि से कोटा राज्य राजपूताने में सब से बड़ा था और क्षेत्रफल भी इसका जोधपुर या उदयपुर के बराबर था। सवाई जयसिंहजी का राज्य अभी विस्तृत नहीं होने पाया था।

**शाही दरबार और देशी राज्यों में सम्मान**—महाराव भीमसिंहजी की शाही दरबार में व राजपूताने की सब बड़ी बड़ी रियासतों में बड़ी प्रतिष्ठा थी। फर्रुखसियर ने उनको पंजहजारी मन्सब दिया था और पाँच हजार सवारों का अफसर बनाया था तथा माही मरातिब से उनको सम्मानित किया था। मुहम्मदशाह के समय में चिन्कुलीजखाँ के विरुद्ध इनको विदा करते हुये सैयदों ने इनको सप्तहजारी मन्सबदार बना देने का वचन दिया था। फर्रुखसियर ने ही इनको महाराव की पदवी से विभूषित किया था[2]। चिन्कुलीजखाँ के पगड़ी बदल भाई

---

(१) वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३०७५।

(२) i वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३०४२।
ii टॉड: राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५५५।
iii खाफीखाँ: जिल्द २, पृष्ठ ८५१।

थे । उदयपुर महाराणा, किशनगढ़ के महाराजा तथा बाँसबहाले के ठाकुर और देवरिया प्रतापगढ़ के ये जामाता थे । महाराजा अजीतसिंहजी जोधपुर वालों के ये गहरे मित्र थे। सम्वत् १७६९ में महाराणा उदयपुर और उनके बड़े कुँवर कोटे आये थे और लगभग तीन महीने तक यहाँ ठहरे थे । आगरा और अजमेर के सूबेदार उनको बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे और उन से सलाह लिया करते थे । उज्जैन के सूबेदार से वे दो बार मिलनें गये थे । आगरा, अजमेर और उज्जैन के सूबेदारों से तथा उदयपुर और जोधपुर के नरेशों से उनका निरन्तर पत्रव्यवहार जारी रहता था । पत्रव्यवहार के लिये वे अनेक कासिद नौकर रखते थे। सम्वत् १७७६ में कासिदों पर १,१७६) रुपये खर्च हुये थे [१]। इससे अनुमान किया जा सकता है कि वे अपने चारों ओर की राजनैतिक परिस्थिति से कितने परिचित रहते थे। आगरा, उज्जैन और अजमेर के सूबेदारों से महाराव भीमसिंहजी इतनी मित्रता रखते थे कि कोटा राज्य में होकर जिन व्यापारियों का माल गुजरता था उनके पास यदि इन सूबेदारों में से किसी की चिट्ठी होती थी तो उनसे राहदारी नहीं ली जाती थी । महाराव भीमसिंहजी जहाँ वीर और महत्त्वाकांक्षी थे वहाँ साथ ही परम धार्मिक और जाति हितैषी भी थे। यही कारण है कि एक सन्यासी के उपदेश से उन्होंने करवर का घेरा उठा लिया था और भरतपुर के इलाके के कितने ही राजपूतों को विपत्ति के समय में उन्होंने हजारों रुपयों का ऋण दिया था [२] ।

**राज्य प्रबन्ध**—अधिकांश समय युद्ध क्षेत्र में व्यतीत करने के कारण भीमसिंहजी अपने विस्तृत राज्य के आन्तरिक प्रबन्ध को सुदृढ़ नहीं कर पाये । राज्य भी उन्होंने केवल १३ वर्ष ही किया ।

---

(१) कागजात सम्वत् १७७६ ।

(२) कागजात सम्वत् १७७१ ।

नरसिंहगढ़, राजगढ़, खिलचीपुर, राघोगढ़ आदि राज्यों से तो वे केवल खिराज मात्र लेते थे। बूँदी को उन्होंने अपने राज्य में ही मिला लिया था और वहाँ अपना प्रतिनिधि नियत करके अपना शासन स्थापित कर दिया था। जो परगने उन्होंने अपने राज्य में मिला लिये थे, उनका शासन प्रायः स्थानीय जागीरदारों के द्वारा किया जाता था। इन परगनों के अधिकांश गाँव जागीरदारों के अधिकार में थे। परगना खाताखेड़ी में कुल ४४५ गाँव थे जिनमें से ११५ गाँव ठाकुर अमरसिंह उमट, ८२ गाँव दीवान फतहसिंह, ४२ गाँव धृतिसिंह खींची और ३१ गाँव शक्तिसिंह की जागीर में थे। इनके अतिरिक्त कई छोटे २ जागीरदार और भी थे[1]। इसी प्रकार अन्य नये परगनों का शासन होता था। जागीरदारों पर कड़ा नियन्त्रण रखा जाता था। हाड़ा जागीरदारों की विशेष कर मोहन सिंहोत, किशोरसिंहोत आदि की तो बड़ी प्रतिष्ठा थी, परन्तु अन्य जागीरदारों की स्थिति ऐसी नहीं थी। एक जागीरदार की जागीर छीन लेना या छीन कर दूसरे को देदेना मामूली बात थी[2]। इन जागीरों के बदले में जागीरदारों को नौकरी करनी पड़ती थी। किसी की नौकरी स्थानीय थी और किसी की दरबार के साथ। जागीरदारों की प्रजा पर अत्याचार नहीं होने दिया जाता था। यदि कोई अत्याचार करता था तो प्रजा दरबार में अर्ज कर सकती थी। परगना भीलवाड़ी के मौजा कूँडला के जागीरदार की, एक बार उसकी प्रजा ने शिकायत की थी जिस पर उसकी जागीर जब्त कर ली गई थी और उसके गाँव का हासिल भी जब्त कर लिया गया था। जागीरदार को जागीर के बदले १४००) रुपये देना मन्जूर किया

---

(२) कागजात सम्वत् १७७३।

(१) कागजात सम्वत् १७७१।

गया था[1]। परगनों के अफसर समय समय पर प्रबन्धविषयक रिपोर्टें भेजा करते थे। इन अफसरों के विरुद्ध दरबार में प्रजा की शिकायतें भी बहुत हुआ करती थीं। बरसात के दिनों में सेना का वेतन नहीं मिला करता था। गुलमीरखाँ पठान ने जो भीमसिंहजी का सेनानायक था, इस विषय में अर्ज की थी। तब उसको ५००) रुपये मासिक मिलने की स्वीकृति हुई थी। वैसे उसको लगभग ४,०००) रुपये मासिक मिलता था। इसी में से उसको निजी सैनिकों का वेतन चुकाना पड़ता था। भीमसिंहजी की सेना के प्रधान अंग थे, घुड़सवार, पैदल, शुतुरसवार, अहदी, हाथी और तोपखाना। किले के दरवाजों को तोड़ने के औजार, सुरंग लगा कर दुर्ग प्राचीर को उड़ाने के साधन, सब सेना के साथ रहते थे। शोपुर को विजय करते समय ऐसे साधनों का उपयोग किया गया था[2]। केवल विशेष अवसरों पर ही बेगार में काम करवाया जाता था। दशहरा, दीपावली आदि त्यौहारों पर जिन आदमियों से काम करवाया जाता था, उनको पेटिया मिलता था। मजदूरी उस समय बहुत सस्ती थी। कमठाणे में काम करने वाले पुरुष को २॥ पैसा रोज, स्त्री को १॥ पैसा, और बच्चों को १॥ पैसा नित्य दिया जाता था। इसी प्रकार अन्य प्रकार की मजदूरी भी सस्ती थी। घास ढोने में १०० पूलों का एक पैसा, नौबत मढ़ने में ३ पैसा रोज, डेरा खड़ा करने या उठाने में २ पैसा रोज, सूत का कोया करने में १ सेर सूत के ८ पैसे, सण धोने में १ मण के ६ पैसे, चमड़े की नाड़ी बनाने में २ पैसे रोज, मियाल या बलींडा चढ़ाने में २ पैसे रोज और जाजम और चादर की मरम्मत करने में ३ पैसे रोज फी आदमी दिया जाता था[3]।

(१) कागजात सम्वत् १७७०।
(२) कागजात सम्वत् १७७५।
(३) कागजात सम्वत् १७७६।

**माधोसिंह झाला**—भीमसिंहजी ने एक ऐसे राजपूत कुल को अपने यहाँ आश्रय दिया जिसके वंशज् ने ५० वर्ष बाद कोटा राज्य का कर्ता धर्ता बन कर बड़ा यश कमाया। माधोसिंह झाला अपने साथ ५० सवार लेकर गुजरात प्रान्तान्तर्गत हलवद से कोटे आया और सेना में नौकर होगया। थोड़े ही अर्से में अपनी कुलीनता, चतुरता और वीरता से उसने भीमसिंहजी को मुग्ध कर लिया। अतः कोटे के ज्येष्ठ राजकुमार के साथ उसकी बहिन का सम्बन्ध होगया[1]। इससे माधोसिंह की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। थोड़े दिन बाद वह फौजदार के पद पर नियत हुआ और उसको नान्ते की जागीर मिली।

**महाराव भीमसिंहजी की सफलता**—रामसिंहजी के देहान्त के पश्चात् गद्दी पर बैठते ही भीमसिंहजी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था परन्तु अपनी बुद्धि, चतुरता, और वीरता के बल से उन्होंने अत्यन्त दारुण कठिनाइयों को पार कर लिया और संसार को छोड़ते समय वे कोटा राज्य को स्मृद्ध, शक्तिशाली और विस्तृत बना गये। जिस समय वे गद्दी पर बैठे थे तो बुद्धसिंहजी का शाही दरबार में बहुत जोर था। इतना ही नहीं बुद्धसिंहजी को कोटा जीत कर अपने राज्य में मिलाने की भी इजाजत मिल गई थी। हर तरह बहादुरशाह द्वारा भीमसिंहजी को बहुत तंग किया जाता था। इन्हीं दिनों एक मराठा सरदार ने भी कस्बा आटोण में और उसके आसपास के इलाके में बड़ा ऊधम मचा रक्खा था[2]। बहादुरशाह कोटा राज्य में होता हुआ जब राजपूताने में घुसा तो वहाँ की जनता बहुत त्रस्त होगई थी। जब जहाँदारशाह तख्त पर बैठा तो उसको एक मुश्त

(१) टॉड: राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ४६४-६६।

(२) कागजात सम्वत् १७६७।

लगभग पाँच लाख रुपये शाही मतालबे के देने पड़े थे[1]। ऐसी कठिना-
इयों में भी भीमसिंहजी ने साहस नहीं छोड़ा और दृढ़तापूर्वक अपने
लिये अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करते रहे। शनैः शनैः उनकी शक्ति
बढ़ने लगी। फर्रुखसियर के तख्त पर बैठते ही उन्होंने सैयदों का पक्ष
ग्रहण कर लिया और उनका भाग्य चमक उठा। वे साम्राज्य के एक
प्रसिद्ध व्यक्ति बन गये। उनके शासनकाल में दिल्ली के तख्त पर कई
बादशाह बैठे जिनके उत्थान और पतन में उनका प्रत्यक्ष या परोक्ष
हाथ रहा। जब केन्द्रीय शक्ति क्षीण होने लगी तो भीमसिंहजी अपने
राज्य के परगनों में मुसलमान काजियों को स्वयम् नियत करने लगे।
और स्वयम् ही हटाने लगे[2]। उन्होंने अपनी शक्ति इतनी बढ़ाली थी
कि सिक्का भी अपना ही चलाने लगे थे और कोटे में अपनी ही टक-
साल स्थापित कर दी थी। इस समय दिल्ली के सिंहासन पर मुहम्मद
शाह था और सैयदों का जोर पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था। ऐसी
स्थिति में पृथक् टकसाल स्थापित करना भीमसिंहजी के बल और प्रभाव
का ही फल था।

**भीमसिंहजी की धार्मिकता**—महाराव भीमसिंहजी वीर
विजेता ही नहीं थे वे परम धार्मिक भी थे। सम्वत् १७६६ में जब
उनकी स्थिति डाँवाडोल हो रही थी तब भी उन्होंने कई हजार रुपये खर्च
करके बाराँ में साँवलाजी के मन्दिर का निर्माण करवाया था[3]। वे
बल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे परन्तु किसी अन्य मतों से उन्हें
कोई द्वेष नहीं था। यहाँ तक कि वे बराह प्रतिमा के भी एक बार
दर्शन करने के लिये बाघेर गये थे। यह स्थान डिग्गी के पास है।

(१) कागजात सम्वत् १७६९।
(२) उपरोक्त।
(३) कागजात सम्वत् १७६६।

वहाँ पर आषाढ़ कृष्णा षष्ठी सं० १७७० में चार आने प्रतिदिन तेल भोग के लिये उस मन्दिर को भेंट किये थे[१]। वे जहाँ जाते थे वहाँ मन्दिरों के दर्शनार्थ जाया करते थे और फिर गुसाईं अर्थात् बल्लभ मतानुयायियों के मन्दिरों में जाते थे। कितने ही मन्दिरों को भीमसिंहजी ने जमीनें माफी में दी थीं[२]। सूर्य और चन्द्र ग्रहण के अवसर पर ब्राह्मणों को भूमिदान दिया जाता था। पुरोहित भीखाजी को परगना मऊ में आलणपुर नामक गाँव ऐसे ही अवसर पर उदक कृष्णार्पण किया था[३]। फर्रुखसियर को तख्त से उतार कर तथा बुद्धसिंहजी को दिल्ली के निकट रणक्षेत्र से भगाकर अपनी राजधानी में लौटते हुये जब उन्होंने मथुरा में यमुना स्नान किया और पुण्यदान किया तो सात्विक धर्मभाव उनमें इतना जागृत होगया था कि उन्होंने अपने महल और राजधानी भगवान के अर्पण कर दिये थे और कृष्णदास नाम धारण करके संन्यास धारण करने को प्रस्तुत होगये थे[४]। उस समय यदि सालमसिंह कोटे पर चढ़ाई न करता तो निःसन्देह भीमसिंहजी प्राचीन राजाओं की परिपाटी को निभाते अर्थात् संन्यास धारण कर लेते। बल्लभ मत में भीमसिंहजी इतने रंग गये थे कि तत्कालीन हुक्मों में दरबार की ओर से जयगोपाल लिखा जाता था और शेष जीवन में वे कृष्णदास ही कहलाते रहे। उनके हुक्मों से भी उनके धार्मिक और दार्शनिक भाव तथा प्रजावात्सल्य प्रतीत होता है[५]। दक्षिण में चिनकुलीजखाँ के विरुद्ध लड़ते हुये उन्होंने अपने इष्टदेव

(१) कागजात सम्वत् १७७०।
(२) कागजात सम्वत् १७७५।
(३) उपरोक्त।
(४) कागजात सम्वत् १७७५ और १७७६।
वंशभास्कर चतुर्थभाग, पृष्ठ ३०७१।
(५) कागजात सम्वत् १७७५ बड़ारन आशा के नाम हुक्म।

की प्रतिमा हाथी के हौदे में अपने सामने रक्खी थी। यह उनकी धार्मिकता, भगवन्निष्ठा और निष्काम कर्म का ज्वलन्त तथा अनुकरणीय उदाहरण है। इससे यह भी स्पष्ट है कि शाही सेना में उनका कितना लिहाज किया जाता था।

**सतियाँ और भवन निर्माण**—महाराव भीमसिंहजी के देहावसान का समाचार जब कोटा पहुँचा तो उनके साथ दो रानियाँ और पाँच उपपत्नियाँ सती हुईं। इनके समय में बारहदरी के नीचे का कृष्णमहल, सलहखाने का महल, भीमविलास, श्री बृजनाथजी का मन्दिर, आशापुराजी का मन्दिर, कृष्ण भण्डार, भीमगढ़ का किला और अनेक देवालय तथा कुएँ बावड़ियों का निर्माण हुआ था।

**घाव और गाम्भीर्य्य**—भीमसिंहजी के शरीर पर अनेक घाव थे। कहते हैं कि वे अपने पासवानों के सामने भी अपने शरीर पर से कपड़े नहीं उतारते थे। उनकी प्रकृति इतनी गम्भीर थी कि वे बहुत कम हँसते थे और उच्च कर्मचारियों के अतिरिक्त अन्य लोगों से बहुत कम बातचीत करते थे। इनके प्रधान मन्त्री राय द्वारकादास थे जो मदारुलमुहाम की पदवी से अलंकृत थे।

**अल्पावस्था**—यह दुःख की बात है कि ऐसे वीर, प्रतापी, प्रभावशाली, शक्तिमान् और धार्मिक नरेश ने केवल तेरह वर्ष ही राज्य किया। यदि कुछ वर्ष और वे जीवित रहते तो अपने बढ़ाये हुये राज्य को तथा संचित किये हुये बल को सुस्थिर और सुदृढ़ कर देते परन्तु अल्पावस्था में ही उनका देहान्त होगया।

सृजति तावदशेषगुणाकरम्
पुरुष रत्न मलं करणं भुवः।
तदपि तं क्षणभङ्गि करोतिचेत्
अहह हन्त अपण्डितता विधेः॥

# महाराव अर्जुनसिंहजी

( सम्वत् १७७७—१७८० विक्रम् )

**राज्याभिषेक और बादशाह द्वारा सम्मान**—महाराव भीमसिंहजी के चार पुत्र थे। अर्जुनसिंहजी, श्यामसिंहजी, दुर्जनशालजी और किशनसिंहजी[1]। इनमें सब से बड़े अर्जुनसिंहजी थे और इनकी माता उदयपुर के महाराणा अमरसिंहजी की पुत्री थीं। महाराव भीमसिंहजी के देहान्त के पश्चात् अर्जुनसिंहजी राजगद्दी पर बैठे। उस समय मुहम्मद शाह बादशाह था। उसने अर्जुनसिंहजी का उत्तराधिकार प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया और मसनदनशीनी का फरमान, खिलअत, हाथी, घोड़े तथा जेवर राजतिलक के अवसर पर दस्तूर में भेजे।

**मुहम्मदशाह की स्थिति**—दोनों सैयद भाइयों का अन्त करके सम्वत् १९७७ के शरत्काल में मुहम्मदशाह ने बड़े समारोह के साथ दरबार किया। जिसमें सवाई जयसिंहजी का बड़ा सम्मान किया गया[2]। इस समय यदि मुहम्मदशाह में शक्ति होती तो सवाई जयसिंहजी कोटा राज्य को अवश्य हानि पहुँचाते, परन्तु मुहम्मदशाह इस समय अपनी स्थिति को सँभालने की चिन्ता में लगा हुआ था। वह अकारण ही कोटा राज्य के नये महाराव अर्जुनसिंहजी को अपना शत्रु नहीं बनाना चाहता था। अतः जब महाराव अर्जुनसिंहजी गद्दी पर बैठे तो उसने मसनदनशीनी का फरमान और खिलअत भेजदिया। यदि वह अपनी स्थिति को सुरक्षित समझता तो महाराव अर्जुनसिंहजी के साथ इतनी कृपा का व्यवहार नहीं करता क्योंकि अर्जुनसिंहजी के

---

(१) मन्सब का हिसाब सम्वत् १७७४।

(२) खाफीखाँ पृष्ठ ९३५।



महाराव अर्जुनसिंहजी
(१७७७–१७८० वि०)

पिता महाराव भीमसिंहजी सैयद भाइयों के गहरे मित्र थे और निजामुल्मुल्क के विरुद्ध युद्ध करते हुये उन्होंने वास्तव में मुहम्मदशाह के विरुद्ध युद्ध किया था। अतः अर्जुनसिंहजी को खिलअत और फरमान भेजना मुहम्मदशाह की उदारता का परिचायक नहीं बल्कि उसकी निर्बलता और क्षीणता का सूचक है।

उदयपुर और जोधपुर नरेशों ने तथा अजमेर के सूबेदार ने टीके का सत्कार भेजा। राजा सवाई जयसिंहजी और भीमसिंहजी में खुल्लमखुल्ला द्वेष था। फिर भी राजतिलक के अवसर पर उन्होंने कोटे दस्तूर भेजकर शिष्टाचार निभाया। ऐसे ही उद्देश्य से प्रेरित होकर ठिकाना उणियारा की ओर से भी दस्तूर भेजा गया। इसके अतिरिक्त भैंसरोड़, करौली, राजगढ़ आदि कई स्थानों से राज्याभिषेक के समय सत्कार लेकर प्रतिनिधि आये[१]।

**मुगल साम्राज्य की परिस्थिति**—दिलावरअलीखाँ के पराजय का समाचार जब सैयदों को मिला तो वे बहुत चिन्तित हुये। विशेष चिन्ता इस बात की थी कि औरंगाबाद से प्रस्थान करते समय हुसैनअलीखाँ अपनी स्त्री और बच्चों को वहीं छोड़ आया था। सोच विचार कर बादशाह की ओर से निजामुल्मुल्क के नाम फरमान जारी किया गया जिसमें उसको सम्पूर्ण दक्षिणी सूबों का हाकिम नियत किया गया और लिखा गया कि "दिलावरखाँ को वास्तव में औरंगाबाद से हुसैनअलीखाँ के परिवार को लिवालाने के लिये रवाना किया गया था लेकिन उसने भूल से तुम्हारा मुकाबला किया जिसका दण्ड ईश्वर ने उसको देदिया"। वास्तव में सैयद भाई निजामुल्मुल्क की विजय से त्रस्त हो गये थे और येन केन प्रकारेण अपनी स्थिति की रक्षा

(१) कागजात सम्वत् १७७७।

करना चाहते थे। अन्त में निश्चय किया कि मुहम्मदशाह को साथ लेकर हुसैनअलीखाँ दक्षिण को कूँच करे और अब्दुल्लाखाँ उत्तर भारत में शान्ति स्थापित रखने के लिये आगरे से दिल्ली रवाना हो[1]। इस निश्चय के अनुकूल ३ सितम्बर सन् १७२० को बादशाह और हुसैन अलीखाँ ने कूँच किया। इससे पहिले ही हुसैनअलीखाँ के विरुद्ध षड्यन्त्र चल रहा था। दारुण परतन्त्रता का अन्त करने के लिये बादशाह और उसकी माता हुसैनअली के प्राणों का अन्त करना चाहते थे[2]। हुसैनअली इतना सतर्क था कि उसको षड्यन्त्र का अनुमान होगया था, इसलिये वह अपने प्राणों की रक्षा करने के लिये खूब सावधान रहने लग गया था तो भी वह षड्यन्त्र को विफल नहीं कर सका। जब वह बादशाह से मिलकर वापिस अपने डेरे में जारहा था तो एक मुगल ने उसकी बगल में खन्जर घुसेड़ दिया और दूसरे ने पैर खींचकर उसको पालकी से नीचे गिरा दिया और छाती पर चढ़कर उसका सिर काट डाला। जब अब्दुल्लाखाँ को भ्रातृबध की सूचना मिली तो उसने तत्काल बदला लेने का आयोजन किया और निश्चय किया कि शाही खानदान के किसी शाहजादे को शाही तख्त पर बिठाया जावे[3]।

उधर मुहम्मदशाह ने हुसैनअली की हत्या के बाद कई लोगों को तरक्कियाँ दीं, कई के मन्सब बढ़ाये और महत्त्वपूर्ण पदों पर अपने विश्वस्त पुरुष नियत किये। हुसैनअली का सिर निजामुल्मुल्क के पास भेजा

---

(१) खाफीखाँ : जिल्द २, पृष्ठ ८६४।

(२) खाफीखाँ : जिल्द २, पृष्ठ ९०२–०३।

(३) i खाफीखाँ : जिल्द २, पृष्ठ ९११–१३।

ii कामवरखाँ : पृष्ठ २१४–२३८।

गया और उसको हुक्म दिया गया कि तुरन्त दरबार में हाजिर होवे, परन्तु वह नहीं आया।

मुहम्मदशाह कूँच करता हुआ पल्वल के परगने में पहुँचा। यमुना के तट पर शाहपुर में उसने अपनी सेना का पड़ाव डाला। इस समय अब्दुल्लाखाँ की सेना हसनपुर से छः मील दूर बिलोचपुर में थी। दोनों ओर से लड़ाई के लिये सेना सजाई जाने लगी। १३ नवम्बर सन् १७२० को लड़ाई हुई। अब्दुल्लाखाँ हार गया और गिरफ्तार होगया। दिल्ली में उसका घर तथा हसनपुर में उसके डेरे शाही हुक्म से लूट लिये गये। मुहम्मद इब्राहीम जो अब्दुल्लाखाँ ने बादशाह बना दिया था, अपने प्राणों की रक्षा के निमित्त एक स्थान पर जा छिपा; परन्तु भेदियों ने उसको जा पकड़ा। ४०) रुपये रोज उसके निर्वाह के लिये देकर उसको कैद कर दिया गया[1]। अब्दुल्लाखाँ लगभग दो वर्ष तक कैद में रहा। उसके साथ बादशाह ने शिष्टता का व्यवहार किया परन्तु विरोधी मुगलों के आग्रह से अन्त में ११ अक्टूबर सन् १७२२ को उसको विष देकर मार दिया गया।

**अर्जुनसिंहजी के प्रति उदासीनता**—अर्जुनसिंहजी सैयद हुसैनअलीखाँ के साथ लगभग एक वर्ष तक औरंगाबाद में रह चुके थे। सैयदों को कोटा नरेश की दृढ़ भक्ति पर पूरा विश्वास था और मुहम्मदशाह को उनके विरोध का पूरा पता था। सैयद भाई अर्जुनसिंहजी से पूर्णरूपेण परिचित थे और उन पर पूरी कृपा रखते थे। उनके राज्याभिषेक के समय बादशाह के नाम से उन्होंने खिअलत और हाथी, घोड़े आदि सम्मानार्थ भिजवाये थे। इतना होते हुये भी यह आश्चर्य की बात है कि अर्जुनसिंहजी को न सैयद हुसैनअली निजामुल्मुल्क पर

(१) खाफीखाँ: जिल्द २, पृष्ठ ९३०–३३।

चढ़ाई करते हुये अपने साथ लेगया और न सैयद अब्दुल्लाखाँ ने अपनी सहायता के लिये इनको दिल्ली बुलाया। सन् १७२० की घटनायें ऐसी शीघ्रता के साथ घटित हुईं कि सैयदों को या मुहम्मदशाह को अपनी २ शक्तियों को संग्रह करने का पूरा अवसर नहीं मिला। इस समय कोटे की सैनिक शक्ति भी क्षीण होचुकी थी और उसको पुनः संगठित करने के लिये भीमसिंहजी जैसा व्यक्ति कोटे में नहीं था चिनकुलीजखाँ के विरुद्ध लड़ते हुये भीमसिंहजी ने तो अपने प्राणों का उत्सर्ग किया ही था परन्तु उनके साथ उनके कई वीर माधानी जागीरदार और दो हजार कवचधारी वीर सैनिक भी धराशायी हुये थे। इस भारी क्षति की पूर्ति अर्जुनसिंहजी एक दो महीने में नहीं कर सकते थे, विशेषकर इसलिये कि भीमसिंहजी का देहान्त होते ही बूँदी राज्य उनके हाथ से निकल गया था। ऐसी अवस्था में या तो सैयदों ने उनको लड़ने के लिये आमन्त्रित ही नहीं किया होगा और यदि बुलाया होगा तो स्वयम् अपनी कठिनाइयों के कारण वे नहीं गये होंगे। इस समय मुहम्मदशाह तो अधिकार दृष्टि से पंगु बना ही हुआ था परन्तु चिनकुलीजखाँ की विजय के कारण सैयद भी इतने त्रस्त और परेशान थे कि आज्ञा उल्लंघन करने वाले अमीर या राजा को दण्ड देने के लिये न उनके पास अवकाश था और न बल। वास्तव में मुगलशक्ति मरणशय्या पर पड़ी हुई अपने अन्तिम श्वास लेरही थी ।

**बूँदी पर बुद्धसिंहजी का अधिकार**—इस समय महाराव भीमसिंहजी का धाभाई भगवानदास उनके प्रतिनिधि की हैसियत से बूँदी का शासन कर रहा था। ज्योंही उसने महाराव भीमसिंहजी के देहान्त का समाचार सुना त्योंही वह अनुभव करने लगा कि अब बूँदी पर कोटे का अधिकार स्थिर नहीं रह सकता। कोटा राज्य के सहायक

सैयद भाई त्रस्त और विपद्ग्रस्त थे। मुहम्मदशाह का षड़यन्त्र पुष्ट होता जाता था। उधर सैयदों के पराजय ने जयसिंहजी और बुद्धसिंहजी में नवीन साहस का संचार कर दिया था। इसलिये उसने बूँदी का इलाका बुद्धसिंहजी को वापिस देदिया और बूँदी के सब परगनों से कोटे के थाने उठवा लिये[1]। यह खबर सुन कर सालमसिंह झलाय से कूँच करके बूँदी आ पहुँचा और बुद्धसिंहजी का मन्त्री बन कर राजकार्य करने लगा।

**दूसरे इलाकों पर प्रभुत्व बना रहा**—रामपुरा, भानपुरा, राजगढ़, खिलचीपुर, नरसिंहगढ़, आदि कोटे की मातहती से निकलने का प्रयत्न करने लगे। इनमें से कुछ इलाके कोटा राज्य से अलग होगये, परन्तु नरसिंहगढ़, राजगढ़ और पाटन प्रयत्न करने पर भी कोटे की मातहती से नहीं निकल सके। सैयद बन्धुओं का अन्त करने के बाद अपनी स्थिति को दृढ़ करने के हेतु मुहम्मदशाह राजपूत नरेशों से मैत्री स्थापित करने की चिन्ता में था। अतः उसने अकलेरा, मनोहरथाना, बकानी, पाटण आदि इलाके जो भीमसिंहजी ने अपने बाहुबल से जीत कर कोटा राज्य में मिलाये थे, उनके लिये अर्जुनसिंहजी को फरमान दे दिया, और उन पर कोटा नरेश का अधिकार पूर्णरूपेण स्थापित होगया[2]। सरकारी कागजों में अर्जुनसिंहजी के परगनों की संख्या ३२ और गाँवों की संख्या चार हजार के लगभग दी हुई है। परन्तु इन परगनों में वे इलाके सम्मिलित नहीं हैं जो भीमसिंहजी ने जीते थे और जिनका फरमान मुहम्मदशाह ने हाल ही में अर्जुनसिंहजी के नाम जारी किया था[3]।

---

(१) i वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३०७९।
ii ठाकुर लक्ष्मणदान।

(२) मुन्शी मूलचन्द, पृष्ठ १५४।

(३) दो वर्की सम्वत् १७७७।

**देहान्त**—महाराव अर्जुनसिंहजी ने केवल तीन वर्ष राज्य किया। उनके कोई पुत्र नहीं हुआ। कार्तिक शुक्ला सप्तमी सम्वत् १७८० को उनका देहान्त होगया। इनके समय में अर्जुन महल और ऊपर के मोती महल का निर्माण हुआ[१]।

---

(१) ठाकुर लक्ष्मणदान।

# मुगलों से राजनैतिक सम्बन्ध

**मन्सब**—सन् १६२४ में जहाँगीर की आज्ञा से माधोसिंहजी कोटा राज्य के राजा हुये और उनका बूँदी से कोई राजनैतिक सम्बन्ध नहीं रहा। यह राज्य सीधा मुगलों के अधीन होगया। माधोसिंहजी शाहजहाँ के समय में पंज हजारी मन्सबदार रहे। मुकुन्दसिंहजी भी शाहजहाँ के दरबार में तीन हजारी मन्सबदार थे। जगतसिंहजी, किशोरसिंहजी और रामसिंहजी तीनों नरेशों ने औरंगजेब के समय में राज्य किया और तीनों ही तीन हजारी मन्सबदार और दो हजार सवारों के अफसर रहे। भीमसिंहजी ने बहादुरशाह, जहाँदारशाह, रफीउद्दरजात, रफी-उद्दौला और फर्रुखसियर की बादशाहत के जमाने में कोटे का शासन किया और पंज हजारी मन्सबदार बने। यदि चिनकुलीजखाँ हार जाता तो वे सप्त हजारी मन्सबदार बन जाते।

मुगलों के शासन काल में सब अधीन राजा सम्राट् की सेना में मन्सबदार हुआ करते थे। किसी का मन्सब बड़ा होता था और किसी का छोटा। मन्सब दश घोड़ों से दश हजार घोड़ों तक दश की भाज्य संख्या का होता था। किसी हिन्दू राजा को प्रायः पाँच हजार से ऊपर का मन्सब नहीं मिला करता था परन्तु अकबर के बाद यह नियम शिथिल होने लगा था। जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंहजी सप्तहजारी मन्सबदार थे और महाराव भीमसिंहजी पंजहजारी। चिन-कुलीजखाँ के खिलाफ उनको रवाना करते समय उनको सप्तहजारी मन्सबदार बनाने का भी वचन दिया गया था। प्रायः जितने का मन्सब होता था उतने घोड़े राजा लोग नहीं रखा करते थे। पंजहजारी

मन्सबदार के पास यदि तीन हजार भी घोड़े हुये तो काफी माने जाते थे। अकबर के जमाने में निरीक्षण कड़ा था, तो भी नियम का पालन सर्वांश में नहीं हुआ करता था। अकबर के पश्चात् यह शैथिल्य अधिकाधिक बढ़ने लगा और औरंगजेब की मृत्यु के बाद पराकाष्ठा पर पहुँच गया। कई राजाओं के पास घोड़ों की संख्या ही कम नहीं होती थी परन्तु ऊँचाई तथा नस्ल भी नियम के विपरीत हुआ करती थी। इस प्रकार की सब गड़बड़ रिश्वत और खुशामद के कारण निभ सकती थी। मन्सब के घोड़े जाती कहलाते थे। इनके सिवाय मन्सबदार को सवार रखने की भी इजाजत मिला करती थी। जितने का मन्सब होता था अधिक से अधिक उतने ही सवार मन्सबदार अपनी नौकरी में रख सकता था। सवारों की संख्या से ही मन्सबदार का दर्जा निश्चित किया जाता था। जिसको अपने मन्सब के बराबर सवार रखने की इजाजत होती थी वह प्रथम श्रेणी का, जिसको मन्सब से लगभग आधे सवारों का अधिकार होता था वह द्वितीय श्रेणी का और जिसके सवार मन्सब के अर्धांश से भी कम होते थे वह तृतीय श्रेणी का मन्सबदार माना जाता था। प्रथम श्रेणी के तीन हजारी मन्सबदार को २४,६००) रुपये मासिक और द्वितीय श्रेणी वाले को २४,३००) रुपये मासिक वेतन मिला करता था।

हिन्दू नरेशों ने भी मन्सब व्यवस्था का परिवर्तित स्वरूप अपने अपने राज्यों में जारी किया था। उस समय किसी हिन्दू नरेश के पास सधी हुई ऐसी सेना नहीं रहती थी जो निरन्तर लड़ने को तैयार हो। प्रत्येक राजा की सेना अधिकांश उसके जागीरदारों से बनती थी। जागीरदार प्रायः राजपूत होते थे। जागीर देते समय शर्त की जाती थी कि आवश्यकता होने पर घुड़ सवारों की अमुक संख्या के साथ

जागीरदार नरेश की सेना में सम्मिलित होगा। कोटा राज्य में घोड़ों की चाकरी के लिये कई जाति के राजपूतों और मुसलमानों को जागीरें मिली थीं। इनमें से कोई तुर्की और कोई देशी घोड़ों की नियत संख्या के साथ हाड़ौती में या भारतवर्ष में, या अटक पार नौकरी देता था। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद भी यह प्रथा कोटा राज्य में जारी रही और नाममात्र को अब भी जारी है।

हिन्दू नरेशों की भाँति उनके राजकुमारों को भी मुगल सेना में मन्सब मिला करता था। राजकुमारों का मन्सब अपने पिता के मन्सब से सदैव छोटा हुआ करता था। नरेशों के भाई और प्रमुख जागीरदार भी मन्सबदार हुआ करते थे। माधोसिंहजी के समय में मोहनसिंहजी और किशोरसिंहजी दोनों ही बल्ख और बदख्शाँ में लड़े थे और दोनों ही मुगल सम्राट् शाहजहाँ के मन्सबदार थे। धर्मत की लड़ाई में मुकुन्दसिंहजी के साथ उनके चारों भाई कोटे के जागीरदार की हैसियत से नहीं किन्तु शाहजहाँ के मन्सबदारों की हैसियत से भी लड़े थे। रामसिंहजी अपने पिता के साथ महाराष्ट्र और कर्नाटक की कई लड़ाईयों में शामिल थे और औरंगजेब के मन्सबदार थे। भीमसिंहजी के चारों पुत्रों को मन्सब मिला हुआ था।

**वीरता**—माधोसिंहजी से भीमसिंहजी तक सब नरेशों ने मुगल दरबार में उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। माधोसिंहजी, भारतवर्ष के अनेक भागों में ही नहीं किन्तु बल्ख बदख्शाँ में भी, मुगल सेना के अग्र भागों में बड़ी वीरता के साथ लड़े थे। शेष पाँच नरेश अर्थात् मुकुन्दसिंहजी, जगतसिंहजी, किशोरसिंहजी, रामसिंहजी और भीम-सिंहजी मुगल सेना की हरावलों में अप्रतिम वीरता से लड़ते हुये धराशायी हुये थे। मुकुन्दसिंहजी के साथ उनके तीन भाई धराशायी

हुये थे और किशोरसिंहजी अनेक घावों से भरे हुये किंचित जीविता-वस्था में मिले थे। मोहनसिंहजी ऐसी अद्भुत वीरता के साथ लड़े थे कि मुसलमान इतिहासकारों ने धर्मत की लड़ाई का वर्णन करते हुये उनकी वीरता का विशेष उल्लेख किया है। अन्य नरेशों के साथ भी अनेक वीर जागीरदार और हजारों राजपूत मारे गये थे। विशेषकर धर्मत, जाजव और पन्धार के युद्धों में कोटे के नरेश की वीरगति के साथ साथ कोटे की सेना का प्रायः सर्वनाश होगया था।

**प्रतिष्ठा**—कोटा जहाँगीर और शाहजहाँ जैसे उदार, औरंग-जेब जैसे कट्टर और असहिष्णु, बहादुरशाह जैसे असन्तुष्ट तथा क्रुद्ध, जहाँदारशाह, रफीउद्दरजात, और रफीउद्दौला जैसे अस्थिर, फर्रुख-सियर जैसे चलप्रकृति और मुहम्मदशाह जैसे वीर बादशाहों के अधीन रहा। इनमें से कई सन्तुष्ट रहे और कई असन्तुष्ट, परन्तु किसी बादशाह ने कोटा छीन लेने का या अन्य प्रकार से राजवंश का अपमान करने का प्रयत्न नहीं किया। प्रायः सब नरेशों ने मुगल दरबार में प्रतिष्ठा प्राप्त की। सब को घोड़े, जेवर, खिलअत, नक्कारे आदि सम्मान चिन्ह मिले। कोटा के राजपरिवार से किसी बादशाह को कोई डोला नहीं दिया गया। औरंगजेब जैसे धर्मान्ध बादशाह के शासनकाल में चाँदखेड़ी के जैन मन्दिर का निर्माण हुआ। औरंगजेब ने इसको कई बार बन्द करने की ताकीद भी की परन्तु किशोरसिंहजी सुनी अनसुनी करके रह गये। भीमसिंहजी ने मुगल सेना में लड़ते हुये अपने इष्टदेव श्री बृजनाथजी की प्रतिमा अपने साथ हाथी के हौदे में रक्खी थी और मुगल सेनानायक दिलावरअलीखाँ ने इस पर कोई ऐतराज नहीं किया था।

**कोटा राज्य की स्थिति मुगल दृष्टि से**—शासन की दृष्टि

से अकबर ने अपने विस्तृत भारतीय साम्राज्य को १५ सूबों में बाँट रक्खा था। प्रत्येक सूबा सरकारों में और हर एक सरकार परगनों में विभक्त था। राजपूताना मुगल साम्राज्य का एक सूबा था जो सूबा अजमेर कहलाता था और वह कितने ही सरकारों में विभक्त था। अजमेर में एक सूबेदार या सिपहसालार रहता था जो सारे राजपूताने पर साम्राज्य के शक्तिशाली प्रतिनिधि की हैसियत से शासन करता था। सरकार का अफसर फौजदार कहलाता था और वह सूबेदार का मातहत होता था। वह प्रायः किले में रहा करता था और उसके पास अपने सरकार में शान्ति रखने के लिये काफी सेना रहती थी। सरकारी व्यवस्था में सूबा अजमेर अनेक सरकारों में विभक्त था और प्रत्येक सरकार अनेक परगनों में। सूबेदार और फौजदार तथा चौधरी कानूँगो बादशाह द्वारा नियुक्त होते ही थे। अतः राजपूताने में राजपूतों का राज्य या रियासतों का राजनैतिक अस्तित्व सरकारी तरीके से स्वीकार नहीं किया जाता था। सरकारी फरमानों और कागजों में आमेर के महाराजा, जोधपुर के महाराजा या कोटे के महाराव ऐसा कभी नहीं लिखा जाता था। केवल महाराजा अजीतसिंह, जयसिंह सवाई, महाराव भीमसिंह हाड़ा—ऐसा लिखा जाता था। किसी राजपूत रईस के राज्य को वास्तव में उसका राज्य नहीं माना जाता था। उसकी राजधानी को उसका वतन माना जाता था और राज्य को केवल जमींदारी। शाही मतालबा या कर प्रत्येक परगने का अलग अलग लिया जाता था और उसी सूबे के शाही कोष में जमा किया जाता था जिससे उस परगने का सम्बन्ध हो। कोटा राज्य के कुछ परगने सरकार गढ़ गागरोण सूबा उज्जैन के ताल्लुक थे और कुछ परगने सरकार गढ़ रणथम्भौर सूबा अजमेर के ताल्लुक। इनका मतालबा भी इन दोनों सूबों के खजानों में भेजा जाता था।

**कोटा राज्य की स्थिति वास्तव में**—इतना होते हुये भी राजपूत रियासतों का वास्तविक अस्तित्व था। कहने को मुगल सरकार इनको राज्य नहीं मानती थी परन्तु यह सिर्फ कागजी बातचीत थी। वास्तव में कोटा, बूँदी, जोधपुर, जयपुर आदि सब राजपूतों के राज्य माने जाते थे। यह अवश्य है कि राजपूताने पर मुगलों का नियन्त्रण था और सब हिन्दू नरेश मुगलों के मन्सबदार भी थे परन्तु अपने राज्य के आन्तरिक शासन में वे सब प्रायः स्वतन्त्र थे। बल्कि यों कह सकते हैं कि आधुनिक ब्रिटिश नियन्त्रण से मुगलों का नियन्त्रण बहुत कम था, क्योंकि मुगलों का शासन ब्रिटिश शासन की भाँति संगठित और व्यवस्थित नहीं था। साथ ही मुगल बादशाहों को राजपूत नरेशों की सहायता की निरन्तर आवश्यकता रहा करती थी। अतः व्यवहारिक दृष्टि से राजपूताना सरकारों में विभाजित नहीं था बल्कि हाड़ौती, मारवाड़, मेवाड़ आदि हिन्दू राज्यों से मिलकर बना हुआ था[१]। सूबेदार और फौजदार का सम्बन्ध इन राज्यों की प्रजा से कुछ नहीं था। आधुनिक अँग्रेज एजेन्ट गवर्नर जनरल या रेजीडेन्ट की भाँति वे राज्यों से शाही मतालबा वसूल करते और राजाओं की नीति और गति से मुगल बादशाहों को परिचित रखते थे।

**कोटा राज्य का स्वरूप**—माधोसिंहजी के समय से ही कोटा राज्य एक संगठित रियासत थी। इसमें कभी कुछ परगने घट जाते थे और कभी बढ़ जाते थे। परन्तु व्यवहारिक दृष्टि से कोटा राज्य हाड़ा राज्य था। इसकी शासन प्रणाली माधाणी नरेशों के अधिकार

---

(१) राजपूताने का यह चित्र 'आईन-ए-अकबरी' में दिये हुये चित्र से भिन्न है परन्तु "आईन-ए-अकबरी काल्पनिक चित्र है, तत्कालीन शासनशैली का वास्तविक चित्र नहीं।"

—सर जे. एन. सरकार: "मुगल एडमिनिस्ट्रेशन," पृष्ठ २५७।

में थी, यहाँ पूर्णरूप से हिन्दू कानून प्रचलित था, और यहाँ की प्रजा सब भाँति कोटा नरेश की प्रजा थी। मुगलों के शासनकाल में जहाँगीर के बाद नये मन्दिर बनाने की इजाजत नहीं थी परन्तु कोटा राज्य में शाहजहाँ के ही समय में नहीं बल्कि औरंगजेब के शासनकाल में भी कई मन्दिर बने थे। भीमसिंहजी ने शेरगढ़ का नाम 'बरसाना' और कोटे का नाम 'नन्दग्राम' रख दिया था। मुकुन्दसिंहजी ने मुकन्दरा पर्वत पर सैनिक उपयोग के लिये किलाबन्दी करवाली थी। ये सब बातें इसलिये सम्भव थीं कि इस हिस्से में कोटा नरेशों का पूर्ण राज्य था। भीमसिंहजी तो मुसलमान काजियों को भी स्वयम् हटा देते थे और नियुक्त करते थे। आन्तरिक शासन में मुगलों का केवल इतना हस्तक्षेप था कि सिक्का उन्हीं का चलता था।

**चौधरी-कानूँगो मुगल दृष्टि से**—प्रत्येक परगने में हकत और पड़त जमीन का हिसाब तथा उसकी उन्नति का काम कानूँगो के सुपुर्द रहता था। साम्राज्य के हर एक परगने का कानूँगो सम्राट् द्वारा नियत किया जाता था। जो परगने हिन्दू नरेशों की जागीर में थे उनके कानूँगो भी बादशाह ही नियत करते थे और यह नियुक्ति शाही फरमान द्वारा की जाती थी, जिस पर बादशाह की तथा वजीर की मुहर हुआ करती थी। कानूँगो का कर्त्तव्य था कि कृषि की उन्नति करे, परगने में आबादी बढ़ावे, लोगों को अच्छे मकान बनाने की प्रेरणा करे और सलाह दे; प्रजा के साथ समानता का व्यवहार करे और उन पर अन्याय होता हो तो उन्हें बचावे। यथासम्भव जागीरदार को (नरेश को) अन्याय तथा कठोरता करने से रोके और यदि उसका कहना जागीरदार न माने तो सच्चा हाल लिखकर सम्राट् की सेवा में भेजे। अपने परगने की भूमि, लगान, आमद तथा खर्च का हिसाब साफ लिखकर 'दफ्तर खाना आली' अर्थात् सर्वोच्च हिसाब

विभाग में प्रति वर्ष भेजता रहे। प्रत्येक परगने के हाकिम, आमिल तथा जागीरदार हाल व आयन्दा के नाम आदेश होता था कि कानूँगो की बात, सलाह तथा हिसाब को विश्वसनीय समझे। यह बात अवश्य थी कि कानूँगो उन्हीं विषयों पर सलाह दिया करता था जिनसे उसका सम्बन्ध हो। परगने के सबील, चौधरी, मुकद्दम और प्रजा तथा कृषकों के नाम हुक्म होता था कि नियुक्त व्यक्ति को अपना कानूँगो जानकर उसकी सलाह और मशवरे से मुश्किल कामों का बन्दोबस्त करे और उसकी बुद्धि तथा अनुभव से लाभ उठावे[1]।

कानूँगोई का फरमान बार बार जारी नहीं किया जाता था। कानूँगो प्रायः वंशपरम्परागत हुआ करते थे। पिता के मरने पर उसके पुत्र को नया फरमान तो प्राप्त करना पड़ता था परन्तु यदि कोई विशेष कारण न होता था तो फरमान अवश्य जारी कर दिया जाता था। बड़े परगने में एक से अधिक भी कानूँगो नियत हुआ करते थे। यदि मृतक कानूँगो के एक से अधिक पुत्र हुये तो वे सब उस परगने के कानूँगो बना दिये जाते थे। ये लोग प्रायः हिन्दू होते थे। परगने से जो भूमिकर वसूल होता था उसका प्रायः दो प्रतिशत कानूँगो को मिलता था और यह धन कानूँगो की रसूम कहलाता था। राजपूताने की रियासतों में इस समय भी ऐसे कानूँगो के वंशज वर्तमान हैं और ये लोग अब भी कानूँगो कहलाते हैं। कोटा राज्य में इन लोगों

---

(१) फरमान जहाँगीरी, जो लाला भँवरलाल कारकुन पेंशनर कोटा राज्य से प्राप्त हुआ है।

लाला भँवरलाल के बुजुर्ग जहाँगीर के शासन काल में परगना कोटा, सरकार गढ़ रणथम्भौर, सूबा अजमेर के कानूँगोयान थे। कोटा और उसके आसपास का प्रदेश सम्वत् १६८० से हाड़ा राजपूतों के अधिकार में है, परन्तु तो भी मुगल बादशाहों के दफ्तर में 'परगना कोटा', 'सरकार गढ़ रणथम्भौर' 'सूबा अजमेर' ऐसे लिखा जाता था।

को अब भी रसूम मिलती है परन्तु अब ये लोग पूर्ववत् कार्य नहीं करते। अतः रसूम किसी काम के बदले में नहीं बल्कि परवरिश के लिये दी जाती है। अकबर के समय में कानूँगो को नकद वेतन देने का प्रयत्न किया गया था। प्रथम श्रेणी के कानूँगो को २०) रुपये, द्वितीय श्रेणी वाले को ३०) रुपये और तृतीय श्रेणी वाले को ४०) रुपये मासिक वेतन मिलता था। यह व्यवस्था अधिक समय तक नहीं निभ सकी। विशेषकर राजपूताने में आय का अंश देना ही अधिक हितकर सिद्ध हुआ।

**कानूँगो पर कोटा नरेश का नियन्त्रण**—वास्तव में और व्यवहार में चौधरी और कानूँगो हिन्दू नरेशों के मातहत थे, मुगल शासन से उनका नाममात्र का सम्बन्ध था। अपनी नियुक्ति का फरमान वे लोग केवल अपनी गौरव वृद्धि के लिये बादशाहों से प्राप्त किया करते थे। कोटा राज्य के सब कानूँगो कोटा नरेश की आज्ञा का पालन करते थे। परगने के अफसरों में कानूँगो एक जिम्मेवर अफसर माना जाता था। कोटे के परगनों के नाम जो हुक्म जारी होते थे वे अमुक परगने के ठाकुर, चौधरी और कानूँगो के नाम जारी हुआ करते थे।

**जागीर और मुकाता**—परगनों पर हिन्दू नरेशों का अधिकार तीन प्रकार का माना जाता था; जागीर, मुकाता और इजारा। जागीर के परगने से मुगलों का सम्बन्ध नाममात्र का रहता था। हिन्दू रियासतों को मुगल सम्राट् जागीर मानते थे; परन्तु ये जागीरें नहीं वास्तव में परम्परागत राज्य थे। हिन्दू नरेशों ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी परन्तु राजपूतों के राज्य मुगलों की दी हुई जागीरें नहीं थीं और राजपूताने के किसी नरेश के पैतृक राज्य को छीनने का मुगलों को कभी साहस नहीं हुआ था। बहादुरशाह और फर्रुखसियर कोटे से नाराज थे परन्तु किसी ने कोटा राज्य छीन लेने का प्रयत्न नहीं किया।

उनसे इतना ही हुआ कि बुद्धसिंहजी को कोटा छीन लेने की प्रेरणा की। बाराँ और मऊ के परगनों की कोटा और बूँदी के बीच मुगलों ने कई बार लौटा फेरी की परन्तु इनको खालसे कभी नहीं किया और राजधानी के परगनों पर उन्होंने कभी दृष्टि नहीं डाली। मुकाते के परगनों की यह हैसियत नहीं थी। ऐसे परगने पर हिन्दू शासकों का उतना अधिकार नहीं माना जाता था जितना जागीर के परगनों पर। मुकाते के परगने का मतालबा भी जागीर के परगनों की अपेक्षा अधिक हुआ करता था। जागीर के परगने वास्तव में हिन्दू नरेशों के परम्परागत राज्य थे। परन्तु मुकाते के परगने मुगलों के ही परगने थे। वे विशेष कृपा के कारण हिन्दू नरेशों के सुपुर्द इसलिये कर दिये जाते थे कि मतालबा आसानी से वसूल हो जाया करे और हिन्दू नरेशों का भी सम्मान बढ़े। इजारा मुकाते से मिलता जुलता था। यह उस समय जारी किया गया था जब मुगल साम्राज्य का पतन होने लग गया था और दूर स्थित परगनों को सँभालने के लिये मुगल बादशाहों में शक्ति नहीं रही थी। इस विधि से जयपुर नरेश सवाई जयसिंहजी ने बहुत से परगने प्राप्त किये थे। मुकाते में और इजारे में केवल नाम ही का भेद था। यह बात अवश्य है कि मुकाता कृपा प्रदर्शित करने के लिये दिया जाता था और इजारा परिस्थिति की प्रेरणा का फल था। मुकाता और इजारा कोटा राज्य में भी प्रचलित होगया था। कोटा नरेश कभी कभी खास खास आदमियों को या बोहरों को गाँव मुकाते में देदिया करते थे। मराठों ने केशोराय पाटण के पूरे परगने को इजारे पर देदिया था।

**मतालबा**—कोटा राज्य के परगनों का मतालबा प्रायः अजमेर या उज्जैन के सूबों की राजधानियों में जमा किया जाता था। जब औरंगजेब मराठों के विरुद्ध सुदूर दक्षिण में युद्ध कर रहा था तो

मतालबा औरंगाबाद दक्षिण में भेजा जाता था। शाही खजाने में जमा होने से पहिले रुपये की रक्षा करना कोटा नरेश का कर्त्तव्य था। जब मतालबा जमा करने में देर होती थी तो सूबेदार की ओर से ताकीद करने के लिये अहदी भेजे जाते थे। कोटे में अहदियों को इनाम देकर सन्तुष्ट किया जाता था। मतालबे की अदायगी में यदि विलम्ब होता था तो उसको दरगुजर करना या न करना सूबेदार की इच्छा पर निर्भर था। यही कारण था कि सूबेदार को सदैव प्रसन्न रखने का प्रयत्न किया जाता था। जब कभी मालवा या अजमेर का सूबेदार कोटा राज्य में होकर गुजरता था या कोटे आता था तो कोटा नरेश उसके आतिथ्य में बहुत खर्च किया करते थे। पुष्कल भेंट द्वारा उसको, उसके परिवार को और उसके साथियों को यहाँ तक कि उसके नौकर चाकरों को भी सन्तुष्ट किया जाता था। सूबेदार की खातिर में इस प्रकार खर्च करना निष्फल नहीं था। सन्तुष्ट सूबेदार क्या नहीं कर सकता था? अपने सूबे के कुछ परगनों का मतालबा एक दो साल के लिये बाकी रख देना उसके लिये साधारण बात थी। औरंगजेब के शासन के उत्तरार्द्ध में इस प्रकार की शिथिलता विशेष रूप से आगई थी। कभी कभी कोई कारण बतला कर ऐसे मतालबे की पूरी या आधी माफी भी दिलवादी जाती थी। जो राजा सारा मतालबा एक दम जमा नहीं कर सकता था उस से सूबेदार की सिफारिश पर किस्तें करली जाती थीं।

यह पता नहीं चलता कि कोटा राज्य को सब परगनों का मतालबा कितना देना पड़ता था? सम्वत् १७४६ में एक महीने की किस्त में ३०,०००) रु० जमा किये गये थे। यदि सब किस्तें बराबर हों तो वार्षिक मतालबे के लगभग साढ़े तीन लाख देने पड़ते होंगे। परन्तु यह रकम घट बढ़ भी सकती थी।

**बादशाह का हस्तक्षेप**—यों तो बादशाह जिस बात में चाहे

हस्तक्षेप कर सकता था परन्तु अधिकतर हस्तक्षेप धार्मिक विषयों में ही होता था, और रियासतों में जजिया कर सम्राट् के कर्मचारी वसूल करते थे। ये लोग सीधे हिन्दू राजाओं के परगनों में पहुँचते थे और सख्ती के साथ जजिया संग्रह करते थे। यह भी औरंगजेब ने जारी किया था। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ अपने दम्भ और महत्त्व के लिये इतना ही काफी समझते थे कि राजपूत नरेश उनकी अधीनता स्वीकार करके उनके मन्सबदार बन जावें। औरंगजेब कट्टर सुन्नी था, और कठोरता से जजिया वसूल करना तथा मन्दिरों को तुड़वाना वह अपने धर्म का अंग समझता था। महाराव भीमसिंहजी के शासन काल में कोटा राज्य की प्रजा को शाही कर्मचारियों ने जजिया वसूल करने में बहुत उत्पीड़ित किया था और उत्पीड़ित प्रजा ने अपने नरेश से शिकायत की थी, परन्तु बादशाह की आज्ञा का विरोध कौन कर सकता था? औरंगजेब ने अपने राज्य में ही नहीं किन्तु राजपूताने में भी नये मन्दिरों का निर्माण बन्द करवा दिया था। इधर उधर एकान्त स्थानों में छोटे मोटे मन्दिर या छतरियाँ बनवाली जाती थीं परन्तु इस बात की निरन्तर चिन्ता रहती थी कि बादशाह को पता न लग जावे। औरंगजेब जिस रियासत में होकर गुजरता था, वहाँ रास्ते के मन्दिरों को तुड़वा दिया करता था। उसके पड़ाव से दूर रदू घंटे और शंख नहीं बज सकते थे। इतना असहिष्णु होते हुये भी औरंगजेब कभी कभी साधारण मन्दिर बनवाने की इजाजत देदिया करता था। यह आश्चर्य की बात थी! उसका संगठन कितना निर्बल और शिथिल था, इसका अनुमान इस बात से होसकता है कि चाँदखेड़ी के जैन मन्दिर का निर्माण उसके शासन काल में हुआ था। कई बार इसके निर्माण को बन्द करने की ताकीद की गई थी, परन्तु फिर भी यह बन ही गया। इतना ही नहीं चाँदखेड़ी में हिन्दू और मुसलमान दोनों को कोटा नरेश ने यह सख्त

हिदायत कर दी थी कि किसी प्रकार के जीव की हत्या न की जावे।

**मुसलमान प्रजा की स्थिति**—हिन्दू राज्यों की मुसलमान जनता के लिये सम्राट् की ओर से शहर काजी नियुक्त किये जाते थे। कोटा, बाराँ, शेरगढ़, अन्ता आदि स्थानों में ऐसे शहर काजी नियत किये हुये थे। शहर काजी को कुछ जमीन माफी में मिलती थी और मुसलमानों से विवाह आदि अवसरों पर वह एक प्रकार का टेक्स लिया करता था। मुहर्रम, ईद आदि मुस्लिम त्यौहार उसके नेतृत्व में मनाये जाते थे। विशेष अवसरों पर मुसलमान लोग शहर काजी की नजर करते थे। कब्रिस्तान, मसजिदें, दरगाह आदि स्थानों की रक्षा करना भी काजी का काम था। ईद और मुहर्रम के त्यौहारों पर जुलूसों के लिये राज से हाथी, घोड़े तथा सिपाही शोभा के लिये दिये जाते थे। कहीं कहीं तो स्वयम् हिन्दू नरेश ऐसे जुलूसों में साथ जाया करते थे। परन्तु कोटा नरेश इन जुलूसों में कभी शामिल नहीं होते थे। मसजिदें बनवाने की भी प्रायः इजाजत मिल जाती थी। हिन्दू मन्दिरों के पास जो कई मसजिदें बनी हुई हैं, उनमें से कुछ बादशाहों के दबाव से और कुछ हिन्दू जनता की सहिष्णुता के कारण बनी हैं। मुसलमान इलाकों में मुसलमानों के मुकद्दमे कुरान के कानून के अनुसार फैसल किये जाते थे और शहरकाजी की सम्मति उनमें मुख्य मानी जाती थी, परन्तु हिन्दू राज्यों में प्रायः प्रथा और रूढ़ि से काम लिया जाता था। कोटा का शहर काजी अन्य कस्बों के काजियों की अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठित गिना जाता था। कोटा नरेश को शाही फरमान प्रायः उसके द्वारा मिला करते थे। इसका कारण शायद यह था कि वह फारसी पढ़ा हुआ होता था और फरमानों का अनुवाद कर सकता था। भीमसिंहजी के शासनकाल में मुगल साम्राज्य की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई निर्बलता के

कारण कोटा राज्य में काजियों का सम्मान घटने लग गया था। भीम सिंहजी काजियों को अपने पद से हटा दिया करते थे और उनके स्थान पर दूसरों को नियत कर देते थे। कई दरगाहों को और मसजिदों को राज की ओर से नकद या जमीन मिलती थी। वे सब बादशाहों की या बादशाहों के दबाव से दी हुई नहीं थीं। कुछ जमीनें केवल धर्म और पुण्य के भाव से भी दीगईं थीं।

**व्यापक प्रभाव**—मुगल शासन और मुगल संस्कृति का राजस्थान पर गहरा प्रभाव पड़ा था। भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों की भाँति राजस्थान का मुगल शासन और संस्कृति के साथ गहरा सम्पर्क तो नहीं था परन्तु फिर भी शासक जाति के प्रभाव से कोई देशी राज्य कैसे बच सकता था ? अधिकृत राजपूत रियासतों पर तो मुगल शासन प्रणाली, युद्ध विधि, भाषा, व्यवहार और संस्कृति ने अपना रंग जमाया ही परन्तु मेवाड़ भी जो निरन्तर मुगलों का विरोधी बना रहा और धर्म तथा संस्कृति की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझता रहा, मुगलों के प्रभाव से अछूता नहीं रह सका। कोटा राज्य का शासन मुगल शासन के साँचे का था और इसमें कोई ऐसी विशेषता नहीं थी जो शुद्ध हिन्दू संस्कृति का अंग मानी जासके। अन्तर केवल इतना था कि कोटा राज्य की व्यवस्था उतनी दृढ़ और पक्की नहीं थी जितनी मुगल साम्राज्य की। कोटा राज्य के आन्तरिक प्रबन्ध के लिये भाषा भी हाड़ौती की ही थी, फारसी नहीं। परन्तु हाड़ौती भाषा भी फारसी शब्दों से बेहद लद गई थी। संस्कृति में हिन्दूपन अवश्य था और धार्मिक तथा सामाजिक कट्टरता में भी कोई शिथिलता नहीं आ पाई थी, परन्तु पुरुषों में मुगल सभ्यता, मुगल शिष्टाचार और मुगल पोशाक का आधिपत्य था।

**भूमि प्रबन्ध**—भूमि, सेना और न्याय का प्रबन्ध सब मुगल

ढंग का था। टोडरमल ने अकबर के समय में उपज के अनुकूल भूमि का विभाग करके लगान निश्चित कर दिया था। यह लगान उपज का प्रायः तृतीयांश निश्चित किया गया था और कृषक लोग इच्छानुसार उपज या नकद जमा कर सकते थे। अकबर के बाद जब तक मुगल साम्राज्य रहा तब तक यही नीति जारी रही। कोटा राज्य में भूमि का विभाग शायद कभी भी नहीं किया गया था, परन्तु लगान टोडरमल के हिसाब से ही लिया जाता था। खड़ी हुई फसल को राजकर्मचारी गाँव के मुख्य कृषकों के सामने कूँता करते थे। कृषक इस कूँती हुई उपज का तीसरा हिस्सा राज में जमा करता था। उपज के अनुसार तृतीयांश में कुछ कमी बेशी कर दी जाती थी। जमीन को नापने का काम उसी समय पड़ा करता था जब किसी को माफी दी जाती थी।

**सेना प्रबन्ध**—सेना की व्यवस्था मुगल सेना से बहुत कुछ मिलती जुलती थी। हाथी, घोड़े, पैदल और तोपखाना सेना के मुख्य अंग थे। ऊँटों का रिसाला भी अकबर के समय से उपयोगी समझा जाने लगा था। इसके अतिरिक्त कितने ही भोई, सईस, नाई, जर्रे और दुकानदार सेना के साथ रहते थे। प्रत्यक्ष में सेना बहुत बड़ी प्रतीत हुआ करती थी परन्तु लड़ने वालों की संख्या वास्तव में ३० या ४० प्रतिशत से अधिक नहीं हुआ करती थी। अकबर के बाद मुगल लोग अपनी स्त्रियों को भी लड़ाई में जाते समय साथ रखने लग गये थे। परन्तु राजपूतों ने इस प्रथा का अनुकरण नहीं किया। मुगल लोग व्यवस्था के अनुकूल लड़ते थे परन्तु राजपूत लोग व्यवस्था को प्रायः भंग कर दिया करते थे और जब विजय प्राप्ति की कोई आशा नहीं रहती थी तो प्राणोत्सर्ग करना अपना जातीय धर्म समझते थे। धर्मत की लड़ाई में मुकुन्दसिंहजी ने, विजयपुर के घेरे में जगतसिंह जी ने, अरणी के युद्ध में किशोरसिंहजी ने, जाजव के रणक्षेत्र में

रामसिंहजी ने और पन्धार के युद्ध में भीमसिंहजी ने इसी प्रकार वीरगति प्राप्त की थी। राजपूतों के शस्त्रास्त्र भी मुगलों के से ही थे। कवच, तलवार, ढाल, भाला, बर्छी, तोप, जमूरे आदि जो मुगलकालीन भारतवर्ष में प्रचलित थे, प्रायः विदेशी शस्त्रास्त्र थे। इनमें कुछ भारत में बनते थे, परन्तु अमीर लोग प्रायः ईरान, तुर्किस्तान, अरब आदि देशों के शस्त्रों का उपयोग करते थे। हाथी, घोड़े और ऊँटों को भी शस्त्र और गोली तथा गोलों की चोट से बचाने के लिये फौलाद की प्लेटों से और जाली से सुरक्षित किया जाता था। राजपूत सैनिकों और अफसरों की पोशाक भी मुगलों से मिलती जुलती थी। राजपूतों ने सैनिक अफसरों के, सैनिक अंगों के और सैनिक कार्यों के नाम भी मुगलों से लिये थे। फौजदारी, फीलखाना, शुतुरखाना, तोपखाना, हरावल आदि सब शब्द राजपूत लोग उसी अर्थ में प्रयुक्त करते थे जिसमें मुगल लोग। कोटा राज्य की सेना की रचना, संगठन, संचालन या साधनों में ऐसी कोई विशेषता नहीं थी जो राजपूतों की उपज कही जा सके। आदि से अन्त तक सब ढंग मुगलों से लिया हुआ था। किलों के घेरा डलना, सुरंग लगा कर किले की दीवार को उड़ाना, तोपखाने की आड़ में वार और आक्रमण करना, दायीं और बायीं बाजू पर सेना जमाना, अन्तिम आक्रमण के लिये सेना का कुछ अंश पीछे खड़े रखना—ये सब मुगलों की संग्राम-विधि थी जिसको राजपूतों ने अपना लिया था। कुछ बातें भारतर्ष में पहले से भी प्रचलित थीं और वे मुगलों ने अपनाली थीं; परन्तु कालान्तर में वे इतनी बदल चुकी थीं कि उनका हिन्दू स्वरूप अब दिखाई भी नहीं देता था।

**न्याय**—राजपूत राज्यों में न्यायनीति परम्परागत थी। अपराधियों को देश और जातीय प्रथा के अनुकूल दण्ड दिया जाता था।

मुसलमानों के आने पर इसमें परिवर्तन होने लगा और अकबर के समय से शासन-संगठन सुदृढ़ होजाने के कारण दण्ड नीति पर इस्लामी कानून का असर पड़ने लगा। हिन्दुओं की पुरातन दण्ड नीति कठोर थी। कई अपराधों के लिये अंगभंग और प्राणबध का दण्ड दिया जाता था परन्तु मुसलमानों के सम्पर्क से हिन्दू दण्डनीति में अधिक बर्बरता और पाशविकता आगई। मुगलों की दण्डनीति निश्चित और व्यवस्थित नहीं थी। किस अपराध में कितना दण्ड दिया जाय, इस विषय में कोई राजनियम नहीं था। इसके अतिरिक्त हाथ नाक कटवा देना कोई असाधारण बात नहीं समझी जाती थी। प्राणडण्ड देते समय सूबेदार शायद कुछ विचार करते होंगे परन्तु ऐसे भारी दण्ड की अपील भी सम्राट् तक पहुँचाना प्रायः असम्भव बात थी। इस विषय में राजपूत नरेशों ने मुगल बर्बरता का पूर्णरूप से अनुकरण किया था। साधारण मामले ग्राम पंचायतों में ही तय होजाया करते थे। ग्रामीण लोगों को राज से न्याय की प्रार्थना करने में यह भय रहता था कि न जाने क्या दण्ड मिले? इसके अतिरिक्त न्यायविभाग भी उस समय अलग नहीं था। परगने के अफसर अपनी समझ, तरंग या स्वार्थ के अनुकूल न्याय किया करते थे। आने जाने के साधन भी उस समय बहुत कम थे और मार्ग भी निर्विघ्न नहीं थे। अतः गाँव वाले अपनी पंचायतों के फैसलों से ही सन्तुष्ट हो जाया करते थे। परगने के अफसरों से पुकार करने पर वे लोग यथामति अपराधी के लिये दण्ड निश्चित करते थे। प्रत्येक परगने के मुख्य गाँव में कोतवाली चबूतरा होता था। कोतवाल ही अपराधियों को पकड़ता था और वही उनको दण्ड दे दिया करता था। कभी कभी ठाकुर और चौधरी से भी परामर्श कर लेता था। जमीन और लेन देन के मामलों का कोतवाल से सम्बन्ध नहीं था। इनके विषय में लोग चौधरी,

कानूँगो और ठाकुर से इन्साफ करवाते थे। इन लोगों के निर्णय से असन्तुष्ट होने वाले लोग राजधानी में आकर पुकार किया करते थे। ऐसी शिकायतों को प्रायः सुनते ही तत्काल फैसला कर दिया जाता था। कागजी कार्यवाही या तो होती ही नहीं थी और यदि कभी हुई तो बहुत कम। चोरी, डकेती और हत्या के अपराधों में प्रायः अंगभंग या प्राणदण्ड ही दिया जाता था। लड़ाई झगड़े और व्यभिचार के अपराधों में अर्थदण्ड दिया जाता था। राजनियम का भंग करना घोर अपराध माना जाता था। ऐसी हालत में दण्ड की मात्रा कोई निश्चित नहीं थी। जिस पर राजाओं की कोपदृष्टि होती थी उसका सर्वस्व हरण कर लिया जाता था या बध करवा दिया जाता था, या अंगभंग करके या अन्य प्रकार से अपमान करके राज्य से निर्वासित कर दिया जाता था। ऐसे विषय में जो बर्बरतायें मुगल साम्राज्य में प्रचलित थीं वे सब हिन्दू राज्यों में भी जारी होगई थीं। कोटा राज्य में भी तोप से उड़ा देना, हाथी से रुँधवा देना, माथा कटवा देना, आदि दण्ड के स्वरूप काम में लाये जाते थे। कोटा राज्य की प्रजा को दरबार की आज्ञा के विरुद्ध अपील करने का कोई माना हुआ अधिकार नहीं था। यदि कोई दिल्ली तक पहुँचने का साहस भी करता तो सुनवाई की उस जमाने में कोई आशा नहीं थी। अतः राज्य जो कुछ करता था, उसको प्रजा अटल समझ कर सहन करती थी।

**दरबारी शिष्टाचार**—राजा अपने जागीरदारों के साथ और भाइयों के साथ उसी भाँति व्यवहार करता था जैसे मुगल सम्राट अपने अमीरों के साथ। दरीखाने में मुगल दरबार के शिष्टाचार की पूर्णरूप से नकल की जाती थी। जागीरदार किस स्थान पर बैठें इसका पूरा ध्यान रखा जाता था। ताजीम की प्रथा भी मुगलों से ली गई थी। राजसिंहासन को गद्दी या तख्त कहने की प्रथा मुगलकाल

में ही प्रचलित हुई थी। गादी का सम्मान मुगलों ने ही चलाया था।

**आमोद प्रमोद**—कोटा राज्य में गणगोर के घाट, हाथियों की होली, नावड़े की होली और गणगोर का बाग सब मुगलों की नकल थी। अकबर और जहाँगीर अपने महलों में और शाही बागों में अपने अन्तःपुर की स्त्रियों से या राजकर्मचारियों से और प्रजा की स्त्रियों से होली खेला करते थे। हाथी और नावड़े की होली ठीक उसकी नकल है। गणगोर का घाट और बाग मीना बाजार का रूपान्तर मात्र है। हाथी, चीते और सूअरों की लड़ाई भारतवर्ष में चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में भी प्रचलित थी। सम्भव है कि यह प्रथा उत्तर राजपूत काल तक जारी रही हो और मुसलमानों ने हिन्दुओं से सीखी हो परन्तु कोटा राज्य में यह मुगलों से सीखी गई थी और इसकी व्यवस्था ठीक मुगल ढंग पर की जाती थी।

**सामाजिक जीवन**—राजपूताने के सामाजिक जीवन पर भी मुगल शासन का गहरा प्रभाव पड़ा था। हिन्दूओं में विवाह के अवसर पर जो वर के साथ उपचार किये जाते हैं, उन में अधिकांश मुगल संस्कृति का आभास है। सम्पूर्ण राजपूत रियासतों में उर्दू और फारसी का खूब प्रचार होगया था। आन्तरिक प्रबन्ध के लिये कोटा राज्य में तो केवल हिन्दी का ही उपयोग किया जाता था परन्तु अन्य राज्यों में फारसी का कुछ व्यवहार जारी था। पुरुषों की पोशाक मुगलों से मिलती जुलती थी परन्तु स्त्रियों की पोशाक पर मुसलमानों का कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। महफिल और दावतों में मुगल शिष्टाचार का प्रचार हो गया था। हुक्का और इत्र पान मुगलों से लिये गये थे।

**सजीव स्मारक**—राजपूताने में मुगलों का शासन व्यवहारिक रूप से लगभग १७५ वर्ष तक रहा। कोटा राज्य का मुगलों से सम्बन्ध

इसके स्थापन से भीमसिंहजी के देहान्त तक अर्थात् सन् १७२० तक रहा। मुगल सम्राट् राजस्थान को अपने साम्राज्य का एक सूबा ही मानते रहे और हिन्दू राजाओं को अपना सूबेदार। उधर राजपूत नरेश येन केन प्रकारेण अपने परम्परागत राज्यों की रक्षा करते रहे। मुगलों की शक्ति कालचक्र के प्रभाव में लुप्त होगई और नादिरशाह के हमले के बाद इनको पुनः स्वाधीनता-प्राप्ति के स्वप्न दिखाई देने लगे, परन्तु इस समय दक्षिण में मराठों की शक्ति प्रबल वेग से बढ़ रही थी, और उसकी विजयबाढ़ राजपूताने में भी पहुँचने ही वाली थी। नहीं कहा जा सकता कि मराठों का उदय न होता तो मुगल साम्राज्य कब तक टिकता, और यदि अन्य कारणों से मुगलों की शक्ति क्षीण हो जाती और राजपूत राज्य स्वतन्त्र रूप धारण कर लेते तो उनका वर्त्तमान् स्वरूप क्या होता? इस समय ऐतिहासिक दृष्टि से इतना ही कहा जा सकता है कि यद्यपि राजपूत राज्य मराठों की विजय बाढ़ में डूब कर निकले हैं, और ब्रिटिश राज्य से इनका सम्बन्ध हुये सौ वर्ष से अधिक होगये तो भी ये मुगलों की शक्ति और संस्कृति के सजीव स्मारक हैं।

# महाराव दुर्जनशालजी

(सम्वत् १७८०—१८१३ विक्रम)

**अर्जुनसिंहजी की वसीयत**—महाराव अर्जुनसिंहजी के कोई सन्तान नहीं थी। श्यामसिंहजी, दुर्जनशालजी और किशनसिंहजी उनके सगे भाई थे। इनमें श्यामसिंहजी बड़े थे। राजपूतों की परम्परा के अनुकूल श्यामसिंहजी को गद्दी मिलना चाहिये थी परन्तु दुर्जनशालजी गद्दी पर बैठे और सरदारों ने उनको अपना स्वामी स्वीकार किया। ऐसा कहा जाता है कि अर्जुनसिंहजी दुर्जनशालजी से बहुत प्रेम करते थे और श्यामसिंहजी को राज-प्रबन्ध के अयोग्य समझते थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में ही राज्य के प्रमुख सरदारों के समक्ष यह इच्छा प्रकट की थी कि उनके देहावसान के अनन्तर दुर्जनशालजी को गद्दी पर बिठाया जावे।

**देश की राजनैतिक स्थिति**—इस समय देश की राजनैतिक परिस्थिति में बड़ा परिवर्तन हो रहा था। मुगलों का तख्त डाँवाडोल हो रहा था और राजपूताने से उनका शासन प्रायः उठ सा ही गया था। मुगलों के शक्तिक्षय से राजपूताने में एक प्रकार की अराजकता फैलगई थी। दिल्ली के तख्त पर यदि कोई शक्तिशाली बादशाह होता तो श्यामसिंहजी शाही दरबार में पुकार करते, परन्तु इस समय सिसकती हुई दारुलसलतनत में उनकी पुकार कोई सुनता भी तो होता क्या? अतः श्यामसिंहजी राजपूताने में ही इधर उधर सहायक ढूँढने लगे।

**श्यामसिंहजी ने सवाई जयसिंहजी का आश्रय लिया**—बूँदी के कारण कोटा और जयपुर में महाराव भीमसिंहजी के समय से वैमनस्य चला आता था। भीमसिंहजी का देहान्त होते ही बूँदी से कोटे का शासन उठ गया था। परन्तु फिर भी कोटा और जयपुर के द्वेष दाग नहीं धुले। जयसिंहजी की शक्ति इस समय खूब बढ़ी हुई थी। औरंगजेब, बहादुरशाह जहाँदारशाह और अब मुहम्मदशाह के वे कृपा पात्र थे। सैयद भाइयों का अन्त हो ही चुका था। अतः जयसिंहजी की सर्वत्र धाक फैली हुई थी। यह देख कर श्यामसिंहजी ने सवाई जयसिंहजी का आश्रय लिया और कोटे का राज्य दिलवाने की उनसे प्रार्थना की[१]।

**ऊदपुरथा का युद्ध**—सवाई जयसिंहजी ने श्यामसिंहजी को सैनिक सहायता दी। श्यामसिंहजी ने इस सेना के साथ जयपुर से कोटे की ओर कूँच की। कोटे से भी दुर्जनशालजी के नायकत्व में सेना ने प्रयाण किया और ऊदपुरथा ( निजामत दीगोद ) के मैदान में उनको रोका। वहीं दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। दोनों पक्ष के तीन हजार आदमी मारे गये। श्यामसिंहजी घायल हुये और रणक्षेत्र में ही उनके प्राण छूट गये[२]। इस घटना के घटते ही जयपुर की सेना खेत छोड़ भागी और दुर्जनशालजी ने जयदुन्दुभि बजा दी। राज्य लोभ और वीरता के आवेश में दुर्जनशालजी युद्ध तो करते रहे, परन्तु जब भाई मारा गया तो उनके मृतक शरीर के पास बैठ कर घण्टों तक

---

(१) ठाकुर लक्ष्मणदान।

(२) i श्यामरू दुर्जनसल्ल के, भो भूहित घमसान।
अग्रज श्यामहिं मारि कै, भो नृप दुज्जनसाल ॥
—वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३०६४।

ii टॉड: राजिस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५५९।



महाराव दुर्जनशालजी

(१७८०–१८१२ वि०)

रोते रहे और कहने लगे कि यदि मेरा भाई जीवित होजाय तो कोटे का राज्य उसको देकर मैं स्वयम् संन्यास ग्रहण कर लूँ। इस घटना की स्मृति उनको जन्म भर सताती रही। उनके कोई सन्तान नहीं हुई, और जब इसका प्रसंग आता था तो अपने भाई की मृत्यु का स्मरण करके वे कहा करते थे कि भ्रातृ-बध के कारण मेरे कोई पुत्र नहीं होसकता। सम्वत् १७९७ में ऊदपुरचा ( निजामत दीगोद ) के माल में उन्होंने अपने भाई के स्मारक स्वरूप एक छत्री का निर्माण करवाया[1]।

**मुख्य घटना**—दुर्जनशालजी का राज्यकाल अधिकतर बूँदी के झगड़े में व्यतीत हुआ। बूँदी प्रथम बुद्धसिंहजी को और फिर उम्मेदसिंहजी को दिलाने में उन्होंने निरन्तर प्रयत्न किया। इस हेतु वे कई बार महाराणा उदयपुर से मिले, जयसिंहजी से कई बार लड़े और उन्होंने लाखों रुपयों की क्षति उठाई। उदारता इतनी दिखाई कि पुराने द्वेष को भूल कर बुद्धसिंहजी के परिवार को अपने यहाँ शरण दी।

**बूँदी पर सवाई जयसिंहजी का अधिकार**—जब बुद्धसिंहजी बूँदी आगये तो सवाई जयसिंहजी ने नागराज नामक धाभाई को मन्त्री बना कर बूँदी भेजा। बुद्धसिंहजी शासन करने के अयोग्य थे और नागराज को सवाई जयसिंहजी का जोर था। इसलिये उसने आते ही शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। बुद्धसिंहजी को यह बात बहुत बुरी लगी, लेकिन जयसिंहजी की आज्ञा का भंग करना उनकी शक्ति से बाहर था। बुद्धसिंहजी पुकार भी करते तो किससे ? मुगलों की शक्ति क्षीण हो चुकी थी और मराठों का शासन अभी जमने नहीं पाया था। इसके अतिरिक्त अनेक विपदायें झेल चुकने के कारण तथा

(१) i टॉड: राजस्थान।
ii कागजात सम्वत् १७९७।

कौलमार्गीय प्रयोगों में निरन्तर लगे रहने के कारण बुद्धसिंहजी विक्षिप्त चित्त से रहा करते थे। सवाई जयसिंहजी कहते थे कि मैंने नागराज को बूँदी का प्रबन्धक इस अभिप्राय से नियुक्त किया है कि बूँदी में बुद्धसिंहजी का राज्य निरन्तर बना रहे, और शासन दृढ़ हो जावे। नहीं कहा जासकता कि वास्तव में सवाई जयसिंहजी का क्या उद्देश्य था[१] ?

**सवाई जयसिंहजी का नागराज को वापिस बुलाना—** बुद्धसिंहजी की राणी जो सवाई जयसिंहजी की बहिन थीं, नागराज के नियन्त्रण को पसन्द नहीं करती थीं और वे समझती थीं कि जयपुर बूँदी को हड़पना चाहता है। उन्होंने अपने भाई के नाम पत्र लिख कर नागराज की नियुक्ति का विरोध किया और चाहा कि उसको वापिस बुला लिया जावे। इसके उत्तर में सवाई जयसिंहजी ने बहुत खेद प्रगट किया और उत्तर दिया कि वास्तव में बूँदी के उलटे दिन आने वाले हैं। अपनी बहिन की इच्छानुसार उन्होंने नागराज को वापिस बुला लिया और बुद्धसिंहजी सालमसिंह को अपना राजमन्त्री नियुक्त करके स्वतन्त्रतापूर्वक राज्य करने लगे[२]।

**बूँदी पर पुनः सवाई जयसिंहजी का अधिकार—**इसी अरसे में कछवाही महाराणी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम भवानीसिंह रक्खा गया। इसके साथ बुद्धसिंहजी जो व्यवहार करते थे उससे लोगों में यह अपवाद फैल गया कि वह बुद्धसिंहजी का औरस पुत्र नहीं है। यह बात सवाई जयसिंहजी तक पहुँची जिससे उनको अपनी बहिन के चरित्र पर सन्देह होने लगा। एक समय जब कछवाही महाराणी जयपुर थीं तो जयसिंहजी ने उनकी विद्यमानता में इसका

(१) वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३०९४।
(२) उपरोक्त।

जिक्र कर दिया, जिस पर वे अपने भाई को मारने पर उतारू होगई और रुष्ट होकर बूँदी आगई। सवाई जयसिंहजी ने छलपूर्वक भवानी सिंह को अपने भानजे के नाते जयपुर बुलवाया और उसको मरवा डाला। कछवाही महाराणी ने इस पर अत्यन्त शोक किया और बुद्ध-सिंहजी से यह लिखवा कर जयसिंहजी के पास भेजा कि भवानीसिंह मेरा ही पुत्र था। इस पत्र को पढ़ कर सवाई जयसिंहजी को बड़ा सन्ताप हुआ और उन्होंने बुद्धसिंहजी से यह प्रतिज्ञा करवाई कि दूसरी राणी से जो सन्तान होगी वह सवाई जयसिंहजी के सुपुर्द करदी जावेगी। सवाई जयसिंहजी चाहते थे कि पुत्र हो तो उसको मार कर और पुत्री हो तो उसका विवाह अपने पुत्र ईश्वरसिंह के साथ करके भवानीसिंह की मृत्यु का बदला लिया जावे। कुछ समय बाद बुद्धसिंहजी की दूसरी राणी से उम्मेदसिंह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। बुद्धसिंहजी ने यह सवाई जयसिंहजी के सुपुर्द नहीं किया। इससे क्रुद्ध होकर सवाई जयसिंहजी ने बूँदी पर चढ़ाई करदी। बुद्धसिंहजी लड़ाई किये बिना ही बूँदी से भाग निकले और जयसिंहजी ने बूँदी पर अधिकार करके राजा सालमसिंह के लड़के दलेलसिंह को अपनी अधीनता में बूँदी का राजा नियत किया[1]।

**बुद्धसिंहजी का बूँदी प्राप्ति के लिये प्रयास और पराजय**— सवाई जयसिंहजी से हार कर बुद्धसिंहजी काणीकोह में रहने लगे और अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। इस समय मराठों की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। दिल्ली के राज्य को जीर्ण और शीर्ण समझकर वे लोग उत्तर की ओर बढ़े तो उनकी प्रलयङ्कारिणी बाढ़ को रोकने के लिये मुहम्मदशाह ने सवाई जयसिंहजी को मालवे की

(१) वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३०९५, ३११६, ३१२७, ३१३१ व ३१३३।

ओर भेजा[1]। जयसिंहजी उधर गये और इधर बुद्धसिंहजी ने थोड़ी सी सेना जुटा कर बूँदी पर चढ़ाई करदी। सालमसिंह ने कुशस्थल के पास उनका सामना किया और घमासान युद्ध हुआ।

**दुर्जनशालजी ने बुद्धसिंहजी को सहायता दी**—इस युद्ध में कोटे के कितने ही सैनिक बुद्धसिंहजी के पक्ष में लड़े थे और अभयसिंह हाड़ा ने अतुल पराक्रम का प्रदर्शन करके वीरगति प्राप्त की थी[2], परन्तु बुद्धसिंहजी हार गये और रणक्षेत्र से भाग निकले। अपनी राणियों को साथ लेकर वे कोटे आये और उनको महाराव दुर्जनशालजी के पास रख कर स्वयम् उदयपुर महाराणा से सहायता माँगने के लिये चले गये[3]।

**सवाई जयसिंहजी ने दलेलसिंह का राज्याभिषेक किया**—मालवे में अपने मित्र[4] निजामुल्मुल्क को मराठों के विरुद्ध सहायता देकर मुकन्दरा के मार्ग से सवाई जयसिंहजी वापिस बूँदी आये और वहाँ दलेलसिंह का राज्याभिषेक किया तथा उसके साथ अपनी पुत्री का सम्बन्ध कर दिया।

**दुर्जनशालजी ने यह स्थिति विवश स्वीकार की**—महाराव दुर्जनशालजी ने जो बुद्धसिंहजी की सहायता की थी उससे सवाई जयसिंहजी बहुत क्रुद्ध थे और उन्होंने दलेलसिंह का राज्य दृढ़ करने का प्रण कर लिया था। उज्जैन में ही उन्होंने कई नरेशों से इस विषय में अनुमति लेली थी और एक लेख लिखवा लिया था। अब जयसिंहजी ने बूँदी में दरबार किया और वह लेख महाराव दुर्जन

---

(१) वंशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ३१३४।

(२) उपरोक्त, पृष्ठ ३१३९–६३।

(३) उपरोक्त, पृष्ठ ३१८५।

(४) इरविन : जिल्द १ और २।

शालजी के सामने उपस्थित किया और उस पर हस्ताक्षर करने को कहा। विवश होकर दुर्जनशालजी ने उस पर अपनी छाप लगाई। इतना ही नहीं जब सवाई जयसिंहजी ने अपनी पुत्री कृष्णकुँवर की संगाई दलेलसिंह के साथ कर दी तो कोटा नरेश ने जयसिंहजी तथा दलेलसिंह को एक एक सरोपाव और दो दो घोड़े सत्कार के दिये। सब कार्य सम्पादन होने पर जयसिंहजी ने कोटा नरेश से अभिमान पूर्वक कहा कि अब अचल रूप से दलेलसिंह बूँदी का रावराजा बन गया है[1]।

**बुद्धसिंहजी ने महाराणा से सहायता माँगी और जयपुर उदयपुर का कलह**—बुद्धसिंहजी अपनी राणियों को कोटे छोड़कर और अपने पुत्र उम्मेदसिंह को बेगूँ भेजकर सहायता के लिये उदयपुर गये। उदयपुर के महाराणा अमरसिंहजी द्वितीय की पुत्री के साथ बुद्धसिंहजी का विवाह हुआ था। इस महिला का इस समय देहान्त हो चुका था और मेवाड़ के महाराणा इस समय संग्रामसिंहजी द्वितीय थे, परन्तु तो भी इस नाते से बुद्धसिंहजी को उदयपुर से सहायता की आशा थी[2]। महाराणा संग्रामसिंहजी भी जयसिंहजी से द्वेष रखते थे। कारण यह था कि इनकी बहिन चन्द्रकुँवर का विवाह सवाई जयसिंहजी के साथ इस शर्त पर किया गया था कि यदि उससे कोई पुत्र उत्पन्न होगा तो वही जयपुर राज्य का स्वामी होगा। सम्वत् १७८४ में चन्द्रकुँवर के माधोसिंह पैदा हुये। परन्तु इससे पूर्व ही जयपुर महाराजा के दो पुत्र श्रीसिंह और ईश्वरीसिंह मौजूद थे। अतः माधोसिंह के उत्पन्न होने पर विषम समस्या उत्पन्न हो गई। यदि माधोसिंह को राज्य दिया जाता तो जयपुर में कलह होता और यदि उन्हें राज्य

---

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३१९२-९३।
(२) उपरोक्त, पृष्ठ ३१९६।

न दिया जाता तो उदयपुर से विरोध। इस समस्या को हल करने के लिये सवाई जयसिंहजी ने माधोसिंह को मरवाने का उद्योग किया परन्तु उसमें सफलता नहीं हुई[१]। इससे महाराणा में और सवाई जयसिंहजी में और भी अधिक विरोध बढ़ गया और महाराणा संग्रामसिंहजी द्वितीय माधोसिंह को जयपुर के राज्यसिंहासन पर बिठाने का प्रयत्न करने लगे।

**महाराणा ने दुर्जनशालजी को आमन्त्रित किया**—जब बुद्धसिंहजी ने महाराणा से सहायता की याचना की तो महाराणा ने सलाह करने के लिये कोटा नरेश को आमन्त्रित किया। महाराव दुर्जनशालजी उदयपुर पहुँचने भी नहीं पाये थे कि बुद्धसिंहजी महाराणा के अन्तःपुर के शुष्क व्यवहार से खिन्न होकर बाँसबहाले विवाह करने चले गये। जब दुर्जनशालजी उदयपुर पहुँचे तो दोनों नरेशों में परामर्श हुआ कि बुद्धसिंहजी की किस प्रकार सहायता की जावे। परामर्श के समय महाराणा का विश्वासपात्र सलाहकार मायाराम नामक एक ब्राह्मण भी उपस्थित था। उसने महाराव दुर्जनशालजी से कहा कि बुद्धसिंहजी के ऊपर जो कुछ भी आपत्ति है, उनके कारण स्वयम् आप हैं। आपने ही पहले बूँदी को छीन कर जयसिंहजी को बूँदी छीनने का मार्ग दिखाया है। यह बात सुनकर महाराव दुर्जनशालजी ने समझा कि ये स्वयम् महाराणा के भाव हैं। अतः वे खिन्न मन होकर वापिस कोटा आगये। बुद्धसिंहजी बाँसबहाले में विवाह करके वहीं आनन्द करने लगे[२]।

**बूँदी प्राप्ति के लिये कछवाही महाराणी का आयोजन**—बुद्धसिंहजी निरन्तर मद्य और अफीम में डूबे हुये पहले बाँसबहाले में

(१) ओझा: राजपूताने का इतिहास, भाग ३, पृष्ठ ९२८।
(२) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३१९६ और ३२००।

और फिर बेगूँ में अपनी आयु को क्षीण कर रहे थे। उनकी कछवाही राणी कोटा में बैठी हुई अपनी विपत्ति के दिन काट रही थी। इसी समय सालमसिंह के घर में एक कलह उत्पन्न हुआ जिससे कछवाही राणी को प्रयास करने का अवसर मिला। सालमसिंह के दो पुत्र थे। दलेलसिंह और प्रतापसिंह, दलेलसिंह बूँदी की राजगद्दी पर बैठ चुका था, परन्तु प्रतापसिंह एक साधारण जागीरदार की हैसीयत में था। यह अपने भाई दलेलसिंह की नौकरी करता था और कुशस्थल के मैदान में बड़ी वीरता के साथ लड़ा था। तदनन्तर दलेलसिंह ने एक बार प्रमादवश इसका घोर अपमान किया जिससे रुष्ट होकर यह बदला लेने के आयोजन में लग गया। कोटे आकर उसने कछवाही राणी के सामने बूँदी विजय करने की एक तजवीज पेश की जिसको महाराणी ने पसन्द किया और निश्चय हुआ कि मराठों से सहायता माँगी जावे और उनके सैनिक बल के द्वारा बूँदी पर बुद्धसिंहजी का पुनः अधिकार स्थापित किया जावे[1]।

**बूँदी पर मराठों की चढ़ाई**—प्रतापसिंह कोटा से रवाना होकर दक्षिण गया और बाजीराव पेशवा, पण्डित रामचन्द्र, राणोजी सिन्धिया, आनन्दराव परमार तथा मल्हारराव होल्कर से मिला। मराठा सरदारों से बातचीत करके उसने छः लाख रुपये देना स्वीकार किया और उनको बूँदी पर चढ़ा लाया। वैशाख मास की अमावस्या के दिन सम्वत् १७९१ में जिस दिन सूर्यग्रहण पड़ रहा था, मराठों ने बूँदी को घेर लिया। मराठों की संयुक्त सेना के सामने सालमसिंह और दलेलसिंह कब तक लड़ सकते थे? अन्त में मराठों की विजय हुई। उन्हों ने उत्साह पूर्वक नगर में प्रवेश किया। सालमसिंह को

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३२१५।

बन्दी बनाया और बूँदी में बुद्धसिंहजी की दुहाई फिरवाई[१] ।

**कछवाही राणी ने होल्कर के राखी बांधी**—मराठों की विजय का समाचार सुनकर कछवाही राणी बूँदी पहुँची और विजयी मराठा सेना को बहुत सत्कृत किया । मल्हारराव होल्कर को उसने अपना धर्म-भाई बनाया । मल्हारराव की स्त्री का भी राणी ने भावज के समान सन्मान किया । बूँदी में इस प्रकार पुनः बुद्धसिंहजी का राज्य स्थापित करके स्वदेश लौटते समय मल्हारराव होल्कर ने उनको बूँदी विजय का शुभ समाचार लिख भेजा । बुद्धसिंहजी विक्षिप्त चित्त होकर बेगूँ में अपने दिन व्यतीत कर रहे थे और अपने खोये हुये राज्य की पुनः प्राप्ति को नैराश्य और सन्ताप के कारण केवल स्वप्न समझते थे । अतः मल्हारराव के भेजे हुये समाचार को उन्होंने उदासीनता के साथ पढ़ा और होल्कर से मिलने भी नहीं आये[२] ।

**बूँदी पर पुन सवाई जयसिंहजी का अधिकार**—मराठों की सैनिक सहायता से बूँदी में बुद्धसिंहजी की दुहाई फिर गई । कछवाही राणी बूँदी में रहने लगीं और प्रतापसिंह उनका मुख्य सलाहकार बन गया । परन्तु अठारहवीं शताब्दी में दूसरे की सहायता से कोई राज्य नहीं कर सकता था । मराठों की सेना अपना काम करके वापिस चली गई । अब बूँदी पर अधिकार बनाये रखना तो बुद्धसिंहजी का काम था । बुद्धसिंहजी अपने बल और साहस को विषय तथा वारुणी में डुबो चुके थे । अब उनमें राज्य करने की न हिम्मत थी न उमंग । ऐसी दशा में कछवाही राणी या प्रतापसिंह क्या करते ? उधर सवाई

---

(१) i **वंशभास्कर, चतुर्थभाग, ३२१६–१८ ।**

ii **टॉड: राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ५३७ ।**

(२) i **वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३२२० ।**

ii **सर्कार: फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर जिल्द १, पृष्ठ २५१–५२ ।**

जयसिंहजी जैसा रणविशारद, कुशल राजनैतिज्ञ आसानी से अपना पराजय स्वीकार करने वाला नहीं था। ज्योंही उनको सूचना मिली कि बूँदी में पुनः बुद्धसिंहजी की दुहाई फिर गई और सालमसिंह मराठों का बन्दी बन गया त्योंही उन्होंने बूँदी को वापिस छीन लेने का आयोजन आरम्भ कर दिया। शीघ्र ही २०,००० सेना ने बूँदी पर चढ़ाई की और प्रतापसिंह का साहस नहीं हुआ कि उसका मुकाबिला करता। सेना को आती देख कर ही बूँदी राज्य छोड़ भागा और मराठों की शरण ग्रहण की। सवाई जयसिंहजी की सेना ने युद्ध किये बिना ही बूँदी पर अधिकार स्थापित कर लिया। कछवाही राणी बूँदी छोड़ कर बेगूँ में रहने लगीं[1]।

**दुर्जनशाल जी का विवाह**—आषाढ़ कृष्णा ९ सम्वत् १७९१ को महाराव दुर्जनशालजी का उदयपुर की राजकुमारी ब्रजकुँवर बाई से विवाह हुआ। यह महिला महाराणा संग्रामसिंहजी द्वितीय की पुत्री थीं। संग्रामसिंहजी का देहान्त माघ सम्वत् १७९० में ही हो चुका था, अतः ब्रजकुँवर बाई का कन्यादान उनके भाई महाराणा जगतसिंहजी ने किया था[2]।

---

(१) वंशभास्कर, चतुर्थभाग, पृष्ठ ३२२१।
(२) ओझा: राजपूताने का इतिहास, तृतीय भाग, पृष्ठ ९३३।

# मुगलों से सम्बन्ध विच्छेद

**मुहम्मदशाह की नाजुक स्थिति**—सैयदों से पीछा छूट जाने पर मुहम्मदशाह की स्थिति सुदृढ़ नहीं थी। इस समय उसकी अवस्था लगभग २० वर्ष की थी। उसके कई बच्चे हो चुके थे और वह प्रायः रोगी रहा करता था। कोकी नामक एक मुसलमान औरत के चंगुल में वह फँसा हुआ था और शाही महल के नपुंसकों की संगति में अधिक रहा करता था[1]। साम्राज्य के बड़े २ पदों पर उन लोगों की नियुक्ति की जाती थी जो बादशाह को भारी घूस दे सकते थे। शाहजादों और शाहजादियों को बहुत बड़ी २ जागीरें दे दी गई थीं। जिससे शासन में अव्यवस्था, दुर्बलता और क्षीणता आगई थी। राजकोष में धन की कमी थी और निरन्तर युद्ध तथा कुप्रबन्ध के कारण देश के कई भागों में दुर्भिक्ष का भयंकर ताण्डव होने लगा था[2]।

**राठौड़ों का दिल्ली पर धावा**—फर्रुखसियर की मृत्यु के बाद जो राजनैतिक गड़बड़ मची उसका अजीतसिंहजी ने पूरा लाभ उठाया। वे सैयदों के तो प्रत्यक्ष में मित्र बने रहे परन्तु शाही मामलत जमा करना और शाही फरमानों का पालन करना उन्होंने बन्द कर दिया। मुहम्मदशाह की निर्बलता को देखकर उनका साहस और भी बढ़ गया और उन्होंने अजमेर पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया[3]। मुहम्मदशाह ने कई अमीरों से अजीतसिंहजी पर चढ़ाई करने का अनुरोध किया परन्तु सब टाल टूल करते रहे। अन्त में मुजफ्फर

---

(१) खाफीखाँ: पृष्ठ ९४०।

(२) उपरोक्त।

(३) उपरोक्त पृष्ठ ९३७।

अलीखाँ ने उनके विरुद्ध कूँच किया। परन्तु उसके सैनिक काबू में नहीं रह सके और डेरे छोड़ छोड़ कर सब अपने अपने गाँवों को भाग गये। इस स्थिति से लाभ उठा कर अजीतसिंहजी ने अपने पुत्र अभयसिंहजी के नेतृत्व में बारह हजार सशस्त्र ऊँट सवारों को नारनोल की तरफ रवाना किया जिन्हों ने नारनोल, अलवर, तिजारा, और शाहजहाँपुर को ही नहीं लूटा बल्कि दिल्ली से केवल ८ मील के फासले पर सराय अलीवर्दी खाँ तक धावा जा मारा और खूब लूटमार की जिससे दिल्ली में घोर कोलाहल मच गया[1]। मुहम्मदशाह इस समय विषम स्थिति में था। मेवाड़ के महाराणा मुगलों के विरुद्ध पहले से ही थे। अब मारवाड़ भी उनके साथ होगया।

**मुहम्मदशाह को दुर्जनशालजी की मित्रता की आवश्यकता—**बुद्धसिंहजी विलास, नैराश्य और प्रमाद में डूबे हुये थे। उनकी मित्रता या विपक्षता का मुहम्मदशाह के लिये कोई महत्त्व नहीं था। अतः राजपूताने में उल्लेख योग्य केवल दो नरेश थे जिनको अपने पक्ष में बनाये रखना बादशाह के लिये आवश्यक था। एक आमेर नरेश सवाई जयसिंहजी और दूसरे कोटा नरेश महाराव दुर्जनशालजी। सवाई जयसिंहजी ने प्रत्यक्ष में बादशाह के पक्ष का कभी त्याग नहीं किया था। गुप्त रूप से उन्होंने मराठों से मित्रता करली थी और उत्तर भारत से मुसल्मानों का उच्छेद करवाने के लिये उनको मालवे पर अपना अधिकार स्थापित कर लेने के लिये उकसाया करते थे। तो भी मुहम्मदशाह का उन पर पूर्ण विश्वास था और वह चाहता था कि दुर्जनशालजी भी उसके पक्ष में बने रहें।

**दुर्जनशालजी का बादशाह द्वारा सम्मान—**यह जानते

(१) इरविन लेटर मुगल्स, जिल्द २, पृष्ठ ११०।

हुये भी कि दुर्जनशालजी और सवाई जयसिंहजी में पारस्परिक द्वेष है और दुर्जनशालजी का सम्मान जयसिंहजी को अच्छा नहीं लगेगा, बादशाह मुहम्मदशाह ने साम्राज्य की भलाई के लिये यही उचित समझा कि दुर्जनशालजी के साथ परम्परागत शिष्टाचार निभाया जावे। अतः जब वे गद्दी पर बैठे तो उसने टीके का हाथी, और खिलअत तथा मसनदनशीनी का फरमान भेजा। तत्कालीन राजनैतिक स्थिति में इस शिष्टाचार की महाराव दुर्जनशालजी को इतनी आवश्यकता नहीं थी जितनी स्वयम् बादशाह मुहम्मदशाह को। इस सम्मान के उत्तर में महाराव दुर्जनशालजी ने भट्ट बेणीराम को अपना प्रतिनिधि बना कर दिल्ली बादशाह की सेवा में धन्यवाद अर्पण करने के लिये भेजा जिसने रूढ़िगत विधि से बादशाह की नजर वगैरह की[1]।

**दुर्जनशालजी द्वारा दिल्ली के कोतवाल का बध और गौओं की रक्षा**—गद्दी पर बैठने के कुछ अर्से बाद दुर्जनशालजी दिल्ली गये और बादशाह से मिले। जब वे मिल कर वापिस अपने डेरे पर आरहे थे तो उन्होंने देखा कि अनेक स्वस्थ और सुन्दर गायें कसाइयों ने घेर रक्खी हैं और वे लोग छुरे हाथ में लिये हुये उनका बध करने वाले हैं। इस कारुणिक दृश्य को देख कर उनको बड़ी दया आई। उनके साथियों ने सलाह दी कि उस रास्ते को छोड़ दिया जावे और दूसरे रास्ते से डेरों में लौटा जावे। महाराव दुर्जनशालजी ने इस बात को नहीं माना। वे परम वैष्णव और परम वीर महाराव भीमसिंहजी के पुत्र थे जिन्होंने अपने इष्टदेव श्रीबृजनाथजी की प्रतिमा को अपने सन्मुख हौदे में रख कर युद्ध किया था और अन्त में भगवन्निष्ठ होकर प्राणोत्सर्ग किया था। गायों की कातर दशा देख कर महाराव दुर्जनशालजी के

---

(१) कागजात सम्वत् १७८०।

हृदय में क्षात्र-तेज जागृत हो उठा। साथियों ने कहा कि गायें शाही बावर्चीखाने के वास्ते काटी जारही हैं और उनको बलपूर्वक बचाने का परिणाम अच्छा नहीं होगा, परन्तु उनका आवेश अदम्य तथा दुर्निवार्य्य होचुका था। उन्होंने अपने साथ के राजपूतों को कसाइयों पर आक्रमण करने का हुक्म दिया। आज्ञा पाते ही राजपूत उन पर टूट पड़े। हल्ला सुन कर शहर कोतवाल घटनास्थल पर आगया। उसने कसाइयों को बचाने का प्रयास किया, परन्तु वह स्वयम् भी मारा गया और उसके अनेक साथी तथा कसाई कट मरे। गायों को घिरा कर दुर्जनशालजी अपने डेरों पर, और फिर वहाँ से कोटे ले आये; और एक गऊशाला में रक्खा। उन गौओं की सन्तति महाराव शत्रुशालजी के समय तक मौजूद थी और बड़े सुख से रखी जाती थी।

प्रत्यक्षतः यह बात विश्वास के योग्य प्रतीत नहीं होती कि शाही राजधानी में कोटा नरेश कोतवाल और कसाइयों का वध करके उन गौओं को छुड़ा कर अपने देश को ले आवें जो बादशाह के बावर्चीखाने के वास्ते काटी जाने वाली थीं, परन्तु उस समय की अव्यवस्था और शिथिलता तथा मुहम्मदशाह की विलासिता पर विचार करने से यह बात कुछ आश्चर्यजनक नहीं मालूम होती। निम्नलिखित दो घटनाओं से राजधानी की तत्कालीन शोचनीय दशा का दिग्दर्शन हो सकेगा[1]।

---

(१) इस घटना के विषय में ठाकुर लक्ष्मणदानजी ने एक पद उद्धृत किया है जो उल्लेख योग्य है:—

दुर्जनसल्ल गयो शाह की मुलाजमत,  
दिल्ली के बजार बीच कटक समेट तें।  
संकट गऊ को देख वंकट म्लेच्छन पे,  
पल्लयो यों दिवाण ज्यों कराल काल थेट तें॥

**बादशाह के नाम का खुतबा नहीं पढ़ने दिया**—सम्वत् १७८३ की ग्रीष्मऋतु में एक हिन्दू मुन्शी ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया परन्तु उसकी स्त्री और लड़की ने उसका साथ नहीं दिया। मुंशी ने दिल्ली के प्रधान काजी को दरख्वास्त दी कि मेरी लड़की नाबालिग है, अतः कानून के अनुसार मेरे मुसलमान बन जाने पर वह खुद भी मुसलमान होगई। लड़की ने नाबालिग होने से इन्कार किया और तहकीकात शुरू होगई। उसके बाद स्वयम् लड़की ने नाबालिग होना स्वीकार कर लिया। लड़की के बयान के आधार पर काजी ने निर्णय दे दिया कि बह मुसलमान है। इस पर उर्दू बाजार के हिन्दुओं ने एकत्र होकर इन्साफ के वास्ते बादशाह से पुकार की। बादशाह ने मामला सदरसुदूर ( धर्माध्यक्ष ) के सुपुर्द कर दिया और उसने महल के अन्दर एक मसजिद में तहकीकात शुरू कर दी। सदर सुदूर ने फैसला दिया कि लड़की बालिग है। तब बादशाह ने उस लड़की को एक हिन्दू बजाज के सुपुर्द कर दिया। इससे मुसलमान बहुत उत्तेजित हुये। लगभग साठ हजार आदमियों की भीड़ जामा मसजिद में एकत्र होगई, और जब बादशाह के नाम का खुतबा पढ़ा जाने लगा तो उन लोगों ने बहुत शोर मचाया और खुतबा नहीं पढ़ने दिया। इतना ही नहीं दो हिन्दुओं को बलपूर्वक पकड़ लिया और मुसलमान बना डाला। बादशाह ने हार मान कर लड़की को कैद कर लिया और मुसलमानों से अपना

---

काट के कसाई पातसाई के बजार बीच,
कीनो कोतवाल बे हवाल खग्ग भेंट तें।
लायो धेनु दिल्ली दरबार तें चपेट हाड़ो,
काढ़ी हरि ठेठ ज्यूँ अघासुर के पेट तें॥

पिंड छुड़वाने के लिये उसको मरवा डाला और मुसलमान विधि से उसको दफ़नवा दिया[1]।

**मोचियों का बलवा**—एक दिन छोटे दर्जे के मुसलमान कोई त्योहार मना रहे थे। मुसलमान मोचियों ने अपने मोहल्लों में रोशनी कर रक्खी थी और आतिशबाजी छुड़ाई जा रही थी। शाम को शुभकरण नामक जौहरी शाही महल से लौट कर अपने घर जा रहा था। जब शुभकरण पालकी में बैठा हुआ जा रहा था तो आतिशबाजी का एक गुब्बारा उसके ऊपर जा पड़ा। उस पर शुभकरण के अनुचरों में और मोचियों में झगड़ा हो गया। शुभकरण बहुत क्रुद्ध होकर घर पहुँचा और अपने आदमियों को हुक्म दिया कि मोचियों के मोहल्ले पर हमला किया जावे। सिपाहियों ने वापिस जाकर एक मोची के लड़के को पकड़ लिया और इतना मारा कि वह मर गया। प्रातः काल हजारों मोची लड़के के शव को लेकर शुभकरण के दरवाजे पर पहुँचे, और बड़े आवेश में शोर मचाने लगे। शुभकरण ने शाही खानसामा के यहाँ शरण ली। तब मोचियों ने बादशाह से प्रार्थना की। उसने अपने वजीर को हुक्म दिया कि शुभकरण को गिरफ्तार कर लिया जावे परन्तु वजीर कुछ नहीं कर सका। तब जुम्मा मसजिद में दो पहर के समय हजारों मुसलमानों की भीड़ एकत्र होगई। अरब, हबशी, तुर्क सब अपने अपने सरदारों के नेतृत्व में एकत्र होकर उपद्रव करने लगे, नमाज नहीं पढ़ने दी और काजी तथा उसके लड़के को लातों और घूँसों से इतना मारा कि वे अधमरे होगये। मुफ्ती को घसीट कर जमीन पर डाल दिया और लातें मार मार कर अचेत कर डाला।

---

(१) इरविन: लेटर मुगल्स, जिल्द २, पृष्ठ १२६-२७।

जब बादशाह को खबर मिली तो उसने वजीर और एक दूसरे अमीर रौशनउद्दौला को सेना के साथ उपद्रव को शान्त करने के लिये रवाना किया। उधर से खानसामा भी कुछ सिपाहियों के साथ घटनास्थल पर आपहुँचा। सिपाही जो खुर्जा, सिकन्दरा, शाहजहाँपुर और फर्रुखाबाद के अफगान थे, रोके नहीं रुके। मोची लोगों के पास शस्त्र नहीं थे–केवल जूते थे। उन्होंने वजीर और खानसामा दोनों के ऊपर जूतों की वर्षा की। खानसामा लड़ता हुआ घायल हुआ और तलवार उसके हाथ से छूट गई। सैंकड़ों जूते उसकी पगड़ी पर पड़े तब शाही सैनिकों ने बागियों पर हमला किया। मोचियों ने भी खूब सामना किया। एक शाही अफसर इतना मोटा था कि भाग भी नहीं सकता था। अतः उसके सिपाही उसे कन्धों पर उठाकर लेगये। कितने ही शाही सैनिक इधर उधर गलियों में जा दुबके। आजमखाँ नामक एक अफसर कुम्हार के घर में जा घुसा। उसके घुसने से कुम्हार के कई बर्तन फूट गये जिससे क्रुद्ध होकर कुम्हार ने उसे इतना मारा कि वह कई दिन तक खाट पर पड़ा रहा। मोचियों ने शुभकरण के घर को जला डाला। वहीं लड़के के शव को दफनाया और उस स्थान पर एक मसजिद बना दी। बहुत दिन बाद तक इस घटना की बहुत चर्चा रही और यह मामला फारसी और हिन्दी की अनेक कविताओं का विषय बन गया।

तो भी बादशाह समझता था कि वजीर ने बड़ी वीरता का काम किया। उसने दरबार में अपनी पगड़ी उसके माथे पर रखदी और बड़ा सम्मान किया।

**मुगलों का ह्रास और सवाई जयसिंहजी का उत्कर्ष––** राजपूताने पर अब मुहम्मदशाह का कुछ प्रभाव नहीं था। यही कारण

था कि कुशस्थल के रणक्षेत्र में हारकर बुद्धसिंहजी मुहम्मदशाह के पास नहीं किन्तु उदयपुर के महाराणा के पास गये । उदयपुर के महाराणा ने सलाह करने के लिये निर्भीक रूप से महाराव दुर्जनशालजी को आमन्त्रित किया। यदि इस समय मुहम्मदशाह की शक्ति क्षीण प्रायः नहीं होगई होती तो महाराव दुर्जनशालजी सवाई जयसिंहजी के विरुद्ध महाराणा उदयपुर से मन्त्रणा करते हुये हिचकते और डरते । मुहम्मदशाह को वास्तव में यह पताही नहीं होगा कि बुद्धसिंहजी कुशस्थल के मैदान में हार गये और सहायता माँगने के लिये उदयपुर गये । सवाई जयसिंहजी मुहम्मदशाह के दरबार में बड़ा सम्मान प्राप्त कर चुके थे और मुहम्मदशाह उनको अपना परम सहायक समझता था। परन्तु सवाई जयसिंहजी इस बात को अनुभव करते थे कि मुगल-साम्राज्य का अन्त निकट है और मुहम्मदशाह में कुछ दम नहीं है। इसलिये यह जानते हुये भी कि उदयपुर, बूँदी और कोटा तीनों राज्य मिलकर उनके विरुद्ध तैयारियाँ कर रहे हैं उन्होंने मुहम्मदशाह से सहायता के लिये कोई प्रार्थना नहीं की। अपने जमाई दलेलसिंह को बूँदी की गद्दी पर बिठाने के बाद सवाई जयसिंहजी ने उसके लिये बादशाह मुहम्मदशाह से फरमान अवश्य हासिल किया था, परन्तु न उनको फरमान हासिल करने में कोई कठिनता हुई और न फरमान जारी करने में मुहम्मदशाह ने अपने उत्तरदायित्व का अनुभव किया। वास्तव में उस समय शाही फरमान केवल विडम्बना मात्र थी। सवाई जयसिंहजी ने दलेलसिंह की गद्दी नशीनी को कानूनी स्वरूप देने के लिये यह फरमान हासिल किया था ।

महाराव दुर्जनशालजी और उदयपुर नरेश ही नहीं बुद्धसिंहजी की राणी भी समझती थीं कि शाही फरमान केवल कागज का टुकड़ा

है, उसके पीछे शक्ति कुछ नहीं। जब सवाई जयसिंहजी ने बूँदी पर पुनः अपना अधिकार स्थापित कर लिया तो और भी स्पष्ट हो गया कि राजपूताने में यदि कोई प्रबल शक्ति है तो मुगलों की नहीं किन्तु सवाई जयसिंहजी की है।

**मुगल सेना में कोटा नरेश की अन्तिम नौकरी**—इस समय मराठे लोग दो ओर से उत्तर भारत में प्रवेश कर रहे थे। बुन्देलखण्ड में पिलाजी जादव लूटमार कर रहा था और मालवा तथा राजपूताने में मल्हारराव होल्कर और राणोजी सिन्धिया उत्पात मचाते हुये आगे बढ़ते जाते थे। जब मुहम्मदशाह ने देखा कि जयसिंहजी से मराठे नहीं रुकते हैं तो सम्वत् १७९१ में मराठों के खिलाफ संग्राम करने की बहुत भारी तैयारी की गई। बहुत बड़ी शाही सेनाओं के साथ वजीर कमरुद्दीन को बुन्देलखण्ड की तरफ और बख्शी खानदौराँ को राजपूताना और मालवे की तरफ रवाना किया गया[1]। खानदौराँ ने अजमेर की ओर कूँच किया। रास्ते में सवाई जयसिंहजी, और कोटा नरेश महाराव दुर्जनशालजी अपनी अपनी सेनाओं के साथ शाही लश्कर में सम्मिलित हुये। इनकी सेनाओं के मिलने से शाही लश्कर एक विस्तृत समुद्र सा दिखाई देने लगा। उसमें लगभग दो लाख आदमी थे। तोपों और शस्त्र तथा गोली बारूद से भरी हुई गाड़ियों की तो कोई गिनती ही नहीं थी। कूँच करता हुआ लश्कर कोटा राज्य में घुसा। महाराव दुर्जनशालजी अपनी राजधानी में ठहर गये और अपनी सेना शाही लश्कर के साथ रवाना करदी। लश्कर मुकन्दरे की घाटी को पार करता हुआ रामपुरे में पहुँचा। यहाँ पर खानदौराँ को पता लगा कि मल्हारराव होल्कर और राणोजी सिन्धिया अपनी सेनाओं के साथ

(१) एस. पी. डी., जिल्द १४, लेटर्स २१ और २२।

नजदीक ही पड़े हुये हैं। शाही लश्कर इतना बड़ा था कि खानदौराँ उस पर शासन नहीं कर सकता था और न विभिन्न दलों को वह काबू में रख सकता था। मराठों के तेज और हल्के सवारों का मुकाबला करने में शाही लश्कर समर्थ नहीं था। इसके अतिरिक्त मल्हारराव होल्कर और राणोजी सिन्धिया बड़े निपुण सेनानायक थे। मुगलों और राजपूतों की निर्बलताओं का उन्होंने खूब अध्ययन कर रक्खा था। शाही सेना के स्वरूप या आकार से उनको भय नहीं किन्तु उत्साह होता था। आठ दिन तक मराठे लोग खानदौराँ की सेना को घेरे रहे। उनका इधर उधर हिलना तक बन्द होगया। रसद और चारा आना बन्द हो गया। कितने ही घोड़े और ऊँट मराठों ने लूट लिये। शाही सेना को इस घोर विपत्ति से बचाने के लिये महाराव दुर्जनशालजी कुछ सेना अपने साथ लेकर रवाना हुये परन्तु मल्हारराव होल्कर और जसवन्तराव पँवार ने उनको शाही लश्कर तक नहीं पहुँचने दिया। मार्ग में ही उनको रोक कर हरा दिया और वे वापिस होगये[1]।

**राजपूताने में मराठों की लूटमार**—इस प्रकार खानदौराँ को परेशान करके मराठों ने उसको तो भोपाल के पास छोड़ा और स्वयम् हाड़ौती में घुसे। तदनन्तर उन्होंने जयपुर और जोधपुर के राज्यों में प्रवेश किया। सवाई जयसिंहजी और महाराजा अभयसिंहजी इस समय शाही लशकर के साथ थे। अतः राज्यों की रक्षा करने वाला कोई नहीं था। मराठों ने दोनों राज्यों में खूब लूटमार की और फिर साँभर में जा घुसे। उस समय साँभर सीधा मुगलों के अधिकार में था और फखरू नामक वहाँ का फौजदार था। मराठे सब से पहले फखरू पर ही झपटे। उसकी लगभग तीन लाख रुपये की सम्पत्ति, कितने ही

(१) इरविन : लेटर मुगल्स, जिल्द २, पृष्ठ ३०४।

घोड़े और चार हाथी उन्होंने लूट लिये और उसको लँगोटी लगा कर छोड़ा। साँभर के शहर काजी ने अधिक वीरता से सामना किया। हिन्दुओं की भाँति जौहर करके उस की स्त्रियों ने तो प्राणोत्सर्ग कर दिया और वह स्वयं उन्मत्त होकर लडने लगा और अन्त में कई घाव लगजाने पर धराशायी हुआ। शाही लशकर की विपत्ति उधर दिन दिन बढ़ती गई और अन्त में जयसिंहजी के कहने पर खानदौराँ ने मराठों को बाईस लाख रुपये चौथ के देना स्वीकार करके अपना पिण्ड छुड़ाया। जब सन्धि की बातचीत हो रही थी तो खानदौराँ कोटे में ठहरा हुआ था और मराठे बूँदी में[1]।

**अन्तिम झलक**—सम्वत् १७९१ में राजपूताने में शाही लशकर की कूँच मुगलों के वैभव की अन्तिम झलक थी। इस लशकर में जो राजपूत नरेश सम्मिलित हुये थे वह भी अन्तिम दृश्य था। हार मानकर और चौथ देना स्वीकार करके खानदौराँ का वापिस लौटना इस बात का ज्वलन्त प्रमाण था कि मुगलशक्ति का अन्त हो चला था। कहने को अब भी मुहम्मदशाह दिल्ली के तख्त पर बैठा हुआ था, खिलअत और इनाम दिया करता था तथा फरमान जारी किया करता था। परन्तु वास्तव में उसकी शक्ति और सम्पदा कूँच कर गई थी। राजपूतों ने सम्वत् १७९१ के बाद मुहम्मदशाह की कुछ परवाह नहीं की। उनके हृदय में मुगलसम्राट् के प्रति जो सम्मान बचा हुआ था, वह भी खानदौराँ की हार और सन्धि से नष्ट होगया। इस घटना के बाद कोटा राज्य का मुगलों से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। थोड़े दिन बाद स्वयम मुहम्मदशाह ने बाजीराव पेशवा को इजाजत देदी कि

(१) i सियर-उल-मुताखिरीन, जिल्द २, पृष्ठ ८३।
ii एस. पी. डी., जिल्द १४, लेटर्स नं० २१ और २३।

चम्बल के दक्षिण में अर्थात् कोटा से भधावर तक, सब राजपूत रियासतों से मराठे चौथ ले सकते हैं और उन पर अपना अधिकार स्थापित कर सकते हैं ।



परिशिष्ट संख्या १

# बल मौखरी के यूपों पर खुदे लेख

## अ—बलवर्धन का यूप

सिद्धं कृतेहि २९५ फाल्गुण शुक्लस्य पाँचे दी श्री महासेनापतेः मौखरेः बलपुत्रस्य बलवर्धनस्य यूपः त्रिरात्रिसवनस्य दक्षिणा गावो सहस्रो ।

## ब—सोमदेव का यूप

सिद्धं कृतेहि २९५ फाल्गुण शुक्लस्य पाँचे दी श्री महासेनापतेः मौखरेः बलपुत्रस्य सोमदेवस्य यूपः त्रिरात्रिसवनस्य दक्षिणा गावो सहस्रो ।

## स—बलसिंह का यूप

सिद्धं कृतेहि २९५ फाल्गुण शुक्लस्य पाँचे दी श्री महासेनापतेः मौखरेः बलपुत्रस्य बलसिंहस्य यूपः त्रिरात्रिसवनस्य दक्षिणा गावो सहस्रो ।

---

## परिशिष्ट संख्या २

# चारचौमा के शिव मन्दिर के लेख

## मन्दिर के बाहर दरवाजे पर उत्कीर्ण लेख

कल्लिनीकपि मलयसमाः शतपुष्पापादिकाः सुतनु कार्या ।
कटु हिंगु सितो धूपो देवेपु अपि दुर्लभो बकुलः ॥१॥
जलनाग प्रियंगूलां चागा बाधिर साधिकः ।
प्रत्यगो तुल गन्धोऽयं वरणाढयो जल दात्यये ॥२॥

## मन्दिर के भीतर का लेख

१ मुक्ता..............मयीं भवप्रतिकृतिर्लिंगं जगत्यद्भुतं
२ प्रासादं...............सयदायद्दशिलं प्राप्यन्ध.........
३ धत्ते ................गुणान्वितांच वसुधां...........
८ प्रभावात् सर्वस्य कृत दुरित वृत्तेः भमवता
९ नमः स्वान्यस्थीनि मरुत्वते प्रणथिने प्रीतो दधीचो ।
१० गाधेयाः स..........................................
११ ..............कर्तुद्विजातेः प्रियं, दातुः प्रार्थयितुश्च सारमहति तुल्येत दानं ।
१२ ..................अर्थयते धनं लघुमनाः तस्याभ्यदाता पुरा ।

परिशिष्ट संख्या ३

# कोषवर्धन में नागवंशी राजा का शिलालेख

ओं नमों रत्नत्रयाय ।। जयन्ति वादाः सुगतस्य निर्म्मलाः समस्त सन्देह निरासभासुराः ।

कुतर्कसम्पातनिपातहेतवो युगान्तवाता इव विश्वसन्तते : ।। [१]

यो रूपवानपि बिभर्त्ति सदैव रूपमेकोप्यनेक इव भातिचयो निकामं ।

आरादगात्परधियः प्रतिमर्त्त्य वेद्यो यो निर्ज्जितारि रजितश्च जिनः सवोन्यात् ।। [२]

भिनत्ति यो नृणाम्मोहं तमो वेश्मनि दीपवत् ।
सोव्याद्वः सौगतो धर्म्मो भक्तमुक्तिफल प्रदः ।। [३]

आर्यसंघस्य विमलाः शरच्छसि (शी) जितश्रियः ।
जर्यान्ति जयिनः पादाः सुरासुरशिरोर्च्चिताः ।। [४]

आसीदम्भोधिधीरः शशिधवलयशा विन्दुनागाभिधान–
स्तत्सूनुः पद्मनागोभवदसमगुणैर्भूषिताशेषवंशः ।
तस्या प्यानन्दकारी करनिकर इवानुष्णरश्मेस्तनूजो
जातःसामन्तचक्रप्रकटतरगुणः सर्व्वणागो जितारिः । (।।) [५]

तस्याभूद्दयिता विशुद्धयशसः श्रीरित्युरः शायिनी
कृष्णस्येव महोदया च शशिनो ज्योत्स्नेव विश्वम्भरा ।
गौरीवाद्रिदशोसमा शमवतः प्रज्ञेव वातायिनो
गम्भीरा यदि वा महोर्म्मिवलया वेलेव वेलाभृतः ।। [६]

ताभ्यामभूद्गुणाम्भोधिर्व्वशीकृतमनोमलः [।]
देवदत्त इति ख्यातः सामन्तः कृतिनां कृती ।। [७]

येषान्नतिर्जिनगुरौ गुरुता गुणेषु संगोर्थिभिः सततदाननिबद्धगर्द्धैः ।
भीतिः प्रकाममघतो जगदेकशत्रोस्तेषामयं कृतविशेषगुणोन्ववाये ।। [८]

येषां भूतिरियं परेति न परै रालोक्यतेऽर्थार्थिभि–
र्येषाम्मुद्भिवः परः परमुदः स्वप्नेपि नाभूत्तनौ।

येषामात्महितोदयाय दयितं नासीद्गुणासादनं
तेषामेव वशी शशाङ्कधवले ( लो ) जातः कुलाम्भोनिधौ ॥ [९]

सम्पादितजनानन्दः समासादितसन्ततिः ।
कल्प शाखीव जगतामेष भूदो गुणाकरः ॥ [१०]

विश्वाश्वासविधौ तृणीकृतसितज्योत्स्नोदयो देहिना-
मन्तः शुद्धिविचारणे सुरगुरोरप्याहिताल्पोदयः ।
गाम्भीर्याकलने निकाम कलितः क्षीरोदसारस्स्वयं
यत्तन्नूनमहो गुणा गुणितनुव्यासंगिनः संगताः ॥ [११]

तावन्मानधना यशस्ततिभृतस्तावच्च तावद्बुधा-
स्तावत्तायिसुतानुकारकरणास्तावत्कृपाम्भोधयः ।
तावन्नयस्त परोपकार तनवस्तावत्कृतज्ञाः परे
यावन्नास्य गुणेक्षणे क्षणमपि प्राप्तावधानो जनः ॥ [१२]

यस्योद्वीक्ष्य गुणानशेषगुणिनामप्याप्यव [शा] त्मनि
निर्व्वाणा खिल मान सन्ततिपतच्चेतो विकासा समा ।
भानौ ध्वस्त समस्त नैशतमसि स्वैरं करालीकृति
प्रातर्येन कलावलोपि विगलच्छायः शशाङ्को न किम् ॥ [१३]

यस्यान्वयेप्यगुणजन्म नदृष्टपूर्व्वमासादिता न च गुणैर्गणन
व्यवस्था ।
याता मुहुर्त्तमपि नो कलिदोषलेशास्सोयन्निरस्तसमतो भुवि
कोप्यपूर्व्वः ॥ [१४]

यस्य दानमतिरिक्षतदाना भाषितान्यफलवन्ति न सन्ति ।
प्राणदानविहितावधि सख्यं तस्य को गुणनिधेरिहतुल्यः ॥ [१५]

नाना सन्ति दिनानि सन्ति विविधाश्चन्द्रांशुशीता निशा-
स्सन्त्यन्याः शतशोबला जितजगन्नारीसमस्तश्रियः ।
तन्नानन्दि जगत्त्रयेपि सुदिनं सावा निशा सावला
यज्जन्मन्यगमन्निमित्त पदवीमस्या परैर्दु [ र्गे ] माम् ॥ [१६]

कोशवर्द्धनगिरेरनुपूर्व्व सोयमुन्मिषितधीः सुगतस्य ।
ध्वस्तमारनिकरैकगरिम्णो मन्दिरं स्म विदधाति यथार्थम् ॥ [१७]

सुखान्यस्वन्तानि प्रकृतिचपलं [ जी ] वितमिदं
प्रिया: प्राणप्रख्यास्तडिदुदयकल्पाश्च विभवा: [।]
प्रियोदर्काश्चालं क्षणसुखकृतौ दु:खबहुला
विहारस्तेनायं भवविभवभीतेन रचित: ॥ [१८]

सान्द्रध्वानशर [ द्र ]–लाक निवहत्यक्तार्क बिम्बोज्ज्वलं
संसाराङ्कुर संगभंग चतुरं यत्पुण्यमात्तम्मया ।
जैनावासविधेरतोयमखिलो लोकत्रयानन्दनीं
तेनारं सुगतश्रियं जितजगद्दो [ षां ] जन: प्राप्नुयात् ॥ [१९]

प्रशस्तिमेनामकरोज्जात: शाक्यकुलोदधौ ।
जज्जक: कियदर्थांश निवेश विहितस्थितिम् ॥ [२०]

सम्वत् शराङ्क ( संवत्सराङ्क ) ७ माघ सुदी ६ ।
उत्कीर्णा चणकेन [॥]

# शेरगढ में पँवार राजा के शिलालेख

१ ॐ स्वस्ति [।] ज[योभ्युदयश्च । जयति] व्योमकेशोसौ [यः
सर्गाय बिभर्ति ताम् । ऐ]न्दवीं सि(शि)रसा लेखां जग-

२ [द्वी]जांकुराकृतिम् । [।१॥] तन्वतु(न्तु) वः स्मराराते: कल्याणम-
निशं जटाः । कल्पान्सतमयोद्दाम[तडि]-

३ द्वलयपिङ्गलाः ॥ [२॥] परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वर
श्रीवाक्पतिराजदेवपा[दानु]-

४ ध्यातपरमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीसिन्धुराजदेवपा
[दानुध्यातपर]-

५ मभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवपादानुध्यातपर
[मभट्टारकम]-

६ हाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीउदयादित्यदेव [:] कुशली ॥ चच्चु-
रोणीमंड [लान्तपाति...॥]-

७ रद्रहद्वादशके श्रीकोशवर्द्धनदुर्गीयश्रीसोमनाथदेव[भु]क्तेरनु......

८ विलाप्रद्रकग्रामे समुपगतान् समस्तराजपुरुषान् ब्रा(ब्रा)ह्मणोत्तरान्
प्रति[निवासिपट्टकिलज]-

९ नपदादींश्च बो (बो)धयत्यस्तु वः संविदितं ॥ यथा कर्प्पासिकाग्रामा-
वस्थितैरस्मा[भि..............धि]-

१० कशतैकादशकसंवत्सरे चैत्रसुदि(शुद्ध)चतुर्द्दश्यां दमनकपर्व्वणि
स्नात्वा चराचरगु-[रुं भगवन्तं भ]-

११ वानीपतिं समभ्यर्च्च्य संसारस्यासारतां दृष्ट्वा । तथाहि [।]
वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिप[त्यमापात]-

१२ मात्रमधुरो विषयोपभोगः । प्राणास्तृणाग्रजलबि(बि)न्दुसमा नराणां
धर्म्मः सखा परम[हो पर]-

१३ लोकयाने। [ । ३ ॥ ] भ्रमत्संसारचक्राग्रधाराधारामिमां श्रियं(यम्)। प्राप्य ये न ददुस्तेषां पश्चात्तापः परं फलं(लम्) [ ॥ ४ ॥ ]

१४ इति जगतो विनश्वरं स्वरूपमाकलय्यादृष्टफलमंगीकृत्य चन्द्रार्कार्णव-क्षितिसमकालं या-

१५ वत्परया भक्त्या श्रीकोशवर्द्धनदुर्गीयश्रीसोमनाथदेवायैवोपरि-लिखितग्रामः स(स्व)सीमातृणयू-

१६ तिगोचरपर्यंन्तः सवृक्षमालाकुलः सहिरण्यभागभोगोपरिकरसर्व्वा-दायसमेतश्च मातृ (ता)पित्रोरात्म-

१७ नश्च पुण्ययशोभिवृद्धये । शाशनेनोदकपूर्व्वकतया प्रदत्त इति । तन्मत्वा तन्निवासिजनपदैर्यथा[प्र]-

१८ दीयमानभागभोगकरहिरण्यादिकं देवब्रा(ब्रा) ह्मणभुक्तिवर्ज्जमा-ज्ञाश्रवणविधेयैर्भूत्वासर्व्वममुष्मै

१९ समुपनेतव्यं । सामान्यं चैतत्पुण्यफलं बुद्ध्वा अस्मद्वंशजैरण्यै(न्यै) रपि भाविभोक्तृभिरस्मत्प्रदत्तधर्म्मा(र्म्म)-

२० दायोयमनुमंतव्यः पालनीयश्च ॥ उक्तं च [ । ] व(ब)हुभिर्व्वसुधा भुक्ताराजभिः सगरादिभिः । यस्य य-

२१ स्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं(लम्) । [ । ५ ॥ ] यानीह दत्तानि पुरा नरेन्द्रैर्द्दानानि धर्म्मार्थयशस्कराणि । नि-

२२ र्माल्यवान्तिप्रतिमानि तानि को नाम साधुः पुनराददीत । [ । ६ ॥ ] अस्मत्कुलक्रममुदारमुदाहरद्भिरण्यै(न्यै)-

२३ श्च दानमिदमभ्यनुमोदनीयं (यम्) । लक्ष्म्यास्तडिद्वलयवुद्‌वु(बुद्‌बु)-दचंचलाया दानं फलं परयशःपरिपाल-

२४ नं च । [ । ७ ॥ ] सर्व्वानेतान् भाविनः पार्थिवेंद्रान् भूयो भूयो याचते रामभद्रः । सामान्योयं धर्म्मसेतुर्नृ-

## दूसरा लेख

१ ओं ॥ संवत् १०७४ वैसा(शा)खसुदि ३ अक्षयतृतीयायां मंडपिका-दाया [ त् ] स्त्र (श्रे)ष्ठिनरसिंहगोवृषथीरा-

२ दित्यै भट्टारकश्रीनग्नकस्य पादाभ्यंगाय दिनं प्रति घृतकर्षमे[कं]१ प्रदत्तं । आचन्द्रा[र्कं] यावत् ।

३ संवत् १०७५ वैसा(शा)खसुदि ३ श्रीसोमनाथदेवाय चंदनधूपनिमित्तं मार्ग्गादायेकौम्रिक-

४ वरंगेन(ण) मार्ग्गादायात्(द्) दत्त वृषभ ५ आचंद्रार्कं यावत् ॥ छ ॥ संवत् १०८४ माघसुदि १३

५ श्रीसोमनाथदेवस्य दीपतैलनिमित्तं ठक्कुरदेवस्वामिना तैलिकराजथाइयाकघाण(णौ)

६ द्वौ प्रदत्तौ आचंद्रार्कं यावत् ॥ तथा पन्नसालयां धूपनिमत्तं कपर्दकवोडी(ड्री) १ दिनं प्र-

७ ति दातव्या आचंद्रार्कं यावत् ॥ तथा मासवारके संक्रांतौ वराह(हौ) द्वौ प्रदत्तौ आचंद्रार्कं

८ यावत् । [।] यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलमिति ॥ श्रीसोमनाथदेवस्य वणि

९ इंदामहिंदका(भ्यां) सत्का वासनिका प्रदत्ता ॥ तैलिकथाइयाकेन सत्का वासनिका प्र-

१० दत्ता । [।] तथा वणि[क्] सोढाकेन सत्का वासनिका प्रदत्ता ॥ तथा वणिक(क्) साइयाकेन स-

११ त्का वासनिका प्रदत्ता ॥ तथा वणिक(क्) श्रीहरजसोमाभ्यां स्वकीया(यौ) वासनिकौ द्वौ २ प्र-

१२ दत्तौ ॥ तथा वणिक (ग्)महल्लकेन सत्का वासनिका प्रदत्ता ॥ तथा सं(शं)खिकलक्ष्मीधरेण

१३ सत्का वासनिका प्रदत्ता ॥ श्रीसोमनाथदेवपल्लिका पूर्वतः देवमर्यादा । पश्चिमतः

१४ [ठ]कुरकुडणक[स्य] वासनिका मर्यादा । उत्तरत: मार्ग्गमा(म)र्यादा । दक्षिणतः नदी मर्या-

१५ दा । चतुराघाटसाधिता श्रीसोमनाथदेवपल्लिका ॥ छ ॥ मंगलं महाश्रीः ॥ ॥

## परिशिष्ट संख्या ५

### किला शेरगढ़ के बोरखेड़ी दरवाजे का शिलालेख—

संवत् १८६७ महारावजी श्री उमेदसिंहजी फोजदार मामाजी राज श्री जालमसिंहजी बरसाणा का प्रधान पचोली गोरधनजी क मारफत............ कोट...................

## परिशिष्ट संख्या ६

भंड देवरा रामगढ़ के अन्दर पीछे से लगे हुए एक स्तम्भ पर लेख—

संवत् १२१९.........त्रिशासवर्मा............मेडवंशीय.......... महाराज श्रीमतिसिंहस्य

---

## परिशिष्ट संख्या ७

भंड देवरा– रामगढ़ का एक आंशिक शिलालेख जो इंजिनियरी के दफ्तर में है। समय दशमी शताब्दी।

..............................श्रीमलयदेववर्मणः..............................विजयोल्लास
विनम्रस्य सहस्रावधिपरास्तपरस्य..............................भक्तिकीर्तिमूर्तिः।

---

## परिशिष्ट संख्या ८

### गेपरनाथ का शिलालेख

संवत् १६३६..........आदितवार बाबाजी श्री दामोदरपुरी गेपरण्यानि धरमसाला कुदाई अमल कोट महाराज कँवर श्री भोजजी राज कु बधाई......

## परिशिष्ट संख्या ९

## जहाँगीर का फरमान कानूगोई

## अल्लाहो अकबर

---

तुग़रा

| |
|---|
| फरमाने आली अबुल मुजफ्फर जहाँगीरशाह मुहम्मद नूरुद्दीन बाबदी |

| | |
|---|---|
| या मोईन | या नासिर |
| अमीर तेमूर<br>साहब क़िराँ<br>इब्न मीरांशाह<br>इब्न सुल्तान मोहम्मद मिरज़ा<br>इब्न सुल्तान अबूसईद<br>इब्न उमरशेख मिर्ज़ा<br>इब्न बाबरशाह<br>इब्न हुमायूँ बादशाह<br>इब्न अकबरशाह | |
| या फत्ता | या हाफ़िज़ |

नुरुद्दीन मोहम्मद जहाँगीर बादशाह गाज़ी

चूँ पियागदास व परसराम व गंगाराम क़ानूँगोयान् परगने कोटा सरकार रनथंभोर बनजरे मुबारक गुजश्तन्द। व दरबाबे खिदमत कानूंगोई इल्तमास फ़रमान जहाँगीरी नमूदन्द। हुक्म जहांमुता गर्दू इतिफ़ा शर्फ़ इस्तदार व इज्जे ईराद याफ्त। कि खिदमत क़ानूँगोई परगने मजकूर बदस्तूर साबिक़ बमोअमा इलेहिम मुफव्वज व मुताल्लक़ बाशद। कि कमा यम्बगी बलवाज़िम अम्र मजकूर क़याम व इक़दाम नमूदा दर तक़सीर ज़िराअत व इमारत व अफ़ज़ूनी मामूदी व आबादानी दक़ीक़ा अज शरायत दौलत ख्वाही ना मरई न गुजारन्द। व दरमि-यान रिआया सवीयत बर वजहे कमाल रिआयत नमूदा सितम शरीकी जायज न दारन्द। व अगर जागीरदारे बगुफ्तए आंहा अमल न नुमायद। हक़ीक़त बदरगाह अर्ज़दाश्त नुमायन्द। व चूँ साल बा आखिर रसद नुसखा मुनक़्क़ह बर जमा व खर्च आँ परगना दाश्त

ब दफ़्तर खानए आला फ़रस्तन्द । मीं बायद कि हुक्काम व उम्माल व जागीरदारान हाल व इस्तक़बाल परगनए मज़कूर मुशारइलेहिमरा कानूँगोय आं जा दानिस्ता सुखन व सवाबदीद हिसाबी आं हारा दर उमूरे मुताल्लिक़ा आं ख़िदमत मोतबर दानन्द । सबील चौधरियान व मुक़द्दमान वरिआया व मुज़ारेआन परगन-ए-मस्तूर आं कि मोअमा इलेहिमरा क़ानूँगोय ख़ुद दानिस्ता ब सलाह व इस्तिस्वाब आंहा मुहम्मात रा सूरत दादा ब हक़ूक़ व शऊरे एशां तौजीह तख़सीस नुमायन्द हर साला हुक्म व फ़रमान मुजद्दद न तलबन्द अज़ फ़रमूदा तख़ल्लुफ़ व इनहिराफ़ न वरज़न्द दर ओहदा शिनासन्द–तहरीर तारीख़.........

बसबाब दीदे आंहा कारकरदा दर ईंबाब

---

# परिशिष्ट संख्या १०

## रावमाधोसिंहजी का ताम्बा पत्र

### सम्वत् १६७४ का

महाराजी धराजी महाराजी श्री माधोसिंहजी देव वचनाथ जोगी नन्दा-नाथ चेला रुघनाथ है धरती बीघा ७२) अंके बीघा बेहतर गाव १ माल मौजा बीनोद खुर्द की आला घाटा का में लूड़ी मे धरती बीवा ३१) अंके बीवा अकतीस बीगा ४१) स प्र: पलायेत्ता को सदामत दी छ सो सदामय पाया जाई सी महाराव जी श्री जी रावरतनै नै ताम्बा पत्र कर दियो छ सो ताम्बा पत्र है देख मह भी वाहाल करी दिजो हुकम हुजूर हुये माने दीयो सदा से दरखवास चोदरी रामहत छ धरती नकटी के आसन चड़ाई छो सदामदे पाया जासी मी: वेशाख वुद १४ सम्बत १६७४ ।

## परिशिष्ट संख्या ११

### चाँद खेडी निजामत खानपुर के जैन मन्दिर का शिलालेख—

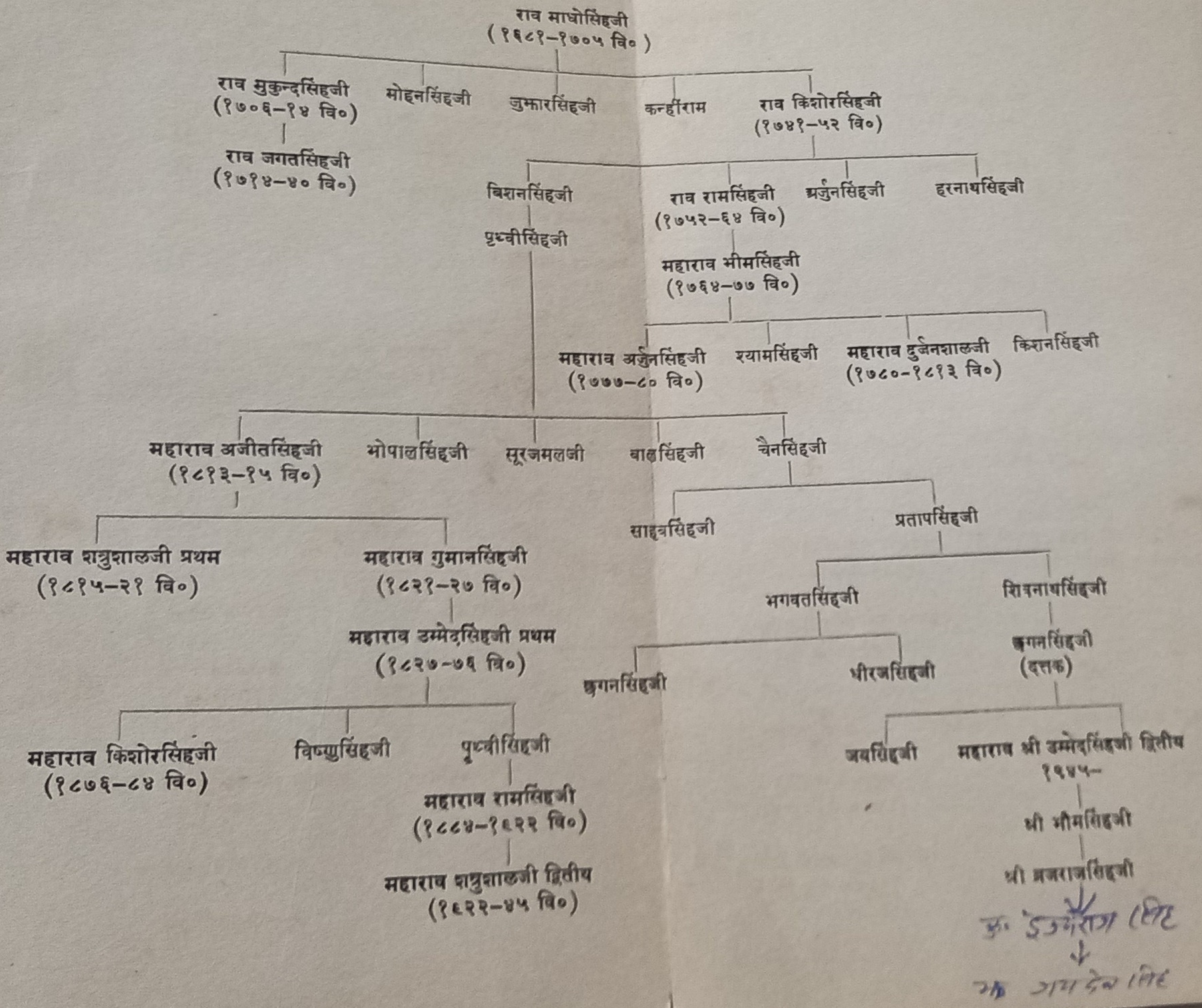
संवत् १७४६ वर्षे महामांगल्यप्रद मासोत्तममाघ मासे शुक्लपक्षे........ ........तिथौ सोमवारे उत्तराभाद्रपद नक्षत्रे.................................. खींचीवाड़देशः.............नगर चाँदखेड़ी बादशाह श्री अवरंग शाहि राज्य प्रवर्तमाने तत्सामन्त चौहाणवंश हाडा महाराजाधिराज महाराज श्रीमाधोसिंहजी तत्पुत्र महाराजाधिराज श्रीकिशोरसिंहजी तत्पुत्र महाराज कुमार श्रीरामसिंहजी तथा महाराजाधिराज श्रीकिशोरसिंहजी राज्यप्रवर्तमाने बघेरवाल साह श्रीभोपति स्तद्भार्या भक्तादे तत्पुत्रौ द्वौ प्रथम पुत्र साह नानू तद्भार्या नौलादे द्वीतीय पुत्रः श्री जिन साह..............................भक्तिसाधुजनदानवितरणसफलीकृत निजमनुष्यजन्मा साह श्री नेतसी तद्भार्या नारंग दे तत्पुत्र संगही जी श्री कृष्णदास तद्भार्या द्वे प्रथमभार्या कलावती दे द्वितीय भार्या लाडी प्रथम भार्या याः पुत्रः चिरंजीव श्री टोडरमल एतत् सर्व परिवार श्री जिनेन्द्र प्रतिष्ठा चतुः प्रकारसंघभारधुरंधरः तथाविनयचातुर्यवदान्यगुणाल्पोकृतकल्पपादपः संगहीजी श्रीकृष्णदासजी कारन्यस्तेन समहोत्साह श्रीजिनेन्द्रबिंबप्रतिष्ठा—लिखिंत आचार्य कनकमणिः

# शुद्धि पत्र

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ५ | २१ | जाहाँगीरी | जहाँगीरी |
| ३४ | १६ | प्राथि | प्राथी |
| ३७ | २३ | प्राथितने | प्राथितेन |
| ,, | ,, | दैत्ययौः | दैत्ययोः |
| ,, | २४ | कुण्डलात्चत्र | कुण्डात्चत्र |
| ३८ | ४ | वे | ये |
| ,, | १७ | परमारोपं | परमारोयं |
| ३६ | ८ | कलयुग | कलियुग |
| ,, | २२ | प्रमाणिक | प्रामाणिक |
| ,, | २४ | वापहिं | वायहिं |
| ,, | २५ | नाहिं | नहिं |
| ४१ | ३ नोट | Chearest | Clearest |
| ४३ | ८ | राजयान्तर्गत | राज्यान्तर्गत |
| ५२ | २४ | सिताजिब्णुना | सिताजिष्णुना |
| ६२ | १४ | (१२७४ ई०) | (१२६४ ई०) |
| ६४ | १० | १३६१ | १३३१ |
| ७४ | १३ | १४६१ | १५४६ |
| ७६ | १६ | सात | दश |
| ८३ | ५ | परमवतगत | परम्परागत |
| ,, | २४ | (२) राजस्थान | (२) टॉड: राजस्थान |
| ६१ | ८ | माधोसिंजी | माधोसिंहजी |
| ६६ | २१ | ह्लान | म्लान |
| १०७ | २० | २५०० सवारों | २००० सवारों |
| ११२ | ६ | नीमोला | नीमोदा |
| १३५ | २ | धर्मानिष्ठ | धर्मनिष्ठ |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १३७ | १ | आलिम | आमिल |
| १४३ | ३५ | करवार | करवर |
| १५२ | १४ | ३० | २५ |
| १५५ | ११ | ३७ परगने | ४८ परगने |
| १५८ | ६ | मुन्कदरा | मुकन्दरा |
| १५६ | ७ | सम्वत् १७१७ | सम्वत् १७१४ |
| १६६ | १ | चट्रानों | चट्टानों |
| १६८ | १६ | रावों | शवों |
| १७२ | २ | १७१५ | १७१४ |
| १८० | २२ | किया, | किया, तो |
| १६४ | १६ | ४ थान १५०) के रुपये | ४ थान १५०) रुपये के । |
| १६५ | ३ | समपन्न | सम्पन्न |
| २३१ | २२, २४ | इरवन | इरविन |
| २३४ | १८ | अजीम | मुअज्जम |
| २४० | १५ | केशव | के शव |
| २५२ | २४ | फर्रुअसियर | फर्रुखसियर |
| ३११ | ३ | खिलअत को | को खिलअत |
| ३२४ | फुट नोट | १६८० | १३२१ |
| ३२८ | १८ | रद्दू | दूर |
| ३३२ | १६ | डलना | डालना |
| ३३६ | ३ | सूबेदार | जागीरदार |
| ३३८ | २५ | राजिस्थान | राजस्थान |

# कोटा राज वंश



राव माधोसिंहजी
(१६८१–१७०५ वि०)
राव मुकुन्दसिंहजी
(१७०६–१४ वि०)
मोहनसिंहजी
जुझारसिंहजी
कन्हीराम
राव किशोरसिंहजी
(१७४१–५२ वि०)
राव जगतसिंहजी
(१७१४–४० वि०)
बिशनसिंहजी
राव रामसिंहजी
(१७५२–६४ वि०)
अर्जुनसिंहजी
हरनाथसिंहजी
पृथ्वीसिंहजी
महाराव भीमसिंहजी
(१७६४–७७ वि०)
महाराव अर्जुनसिंहजी
(१७७७–८० वि०)
श्यामसिंहजी
महाराव दुर्जनशालजी
(१७८०–१८१३ वि०)
किशनसिंहजी
महाराव अजीतसिंहजी
(१८१३–१५ वि०)
भोपालसिंहजी
सूरजमलजी
बाहसिंहजी
चैनसिंहजी
साहबसिंहजी
प्रतापसिंहजी
महाराव शत्रुशालजी प्रथम
(१८१५–२१ वि०)
महाराव गुमानसिंहजी
(१८२१–२७ वि०)
भगवतसिंहजी
शिवनाथसिंहजी
महाराव उम्मेदसिंहजी प्रथम
(१८२७–७६ वि०)
छगनसिंहजी
धीरजसिंहजी
छगनसिंहजी
(दत्तक)
महाराव किशोरसिंहजी
(१८७६–८४ वि०)
विष्णुसिंहजी
पृथ्वीसिंहजी
जयसिंहजी
महाराव श्री उम्मेदसिंहजी द्वितीय
१९४५–
महाराव रामसिंहजी
(१८८४–१९२२ वि०)
श्री भीमसिंहजी
महाराव शत्रुशालजी द्वितीय
(१९२२–४५ वि०)
श्री बृजराजसिंहजी
कु. इज्येराज सिंह
म. जयदेव सिंह